

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178814

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—391—29-4-72—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83 / Accession No. G.H. 3364
Author P 925 ✓ सिंह
Title सेवासदन

This book should be returned on or before the date last marked below.

संक्षिप्त सेवासदन

प्रेमचंद

शरद्वती प्रेस

सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद—१

वर्तमान संस्करण, १९६३

मूल्य : चार रुपये मात्र

मुद्रक—यू० पी० प्रिन्टिङ्ग प्रेस, ४२, एडमॉन्स्टन रोड, इलाहाबाद ।

दारोगा कृष्णचंद्र का छोटा - सा परिवार था — सती - साध्वी पत्नी गंगाजली ; सुंदर, चंचल तथा अभिमानिनी बड़ी लड़की सुमन तथा भोली, गम्भीर, सुशील छोटी लड़की शांता । सुमन को सोलहवाँ वर्ष लगा तो उसके विवाह के लिए दहेज जुटाने के लिए कृष्णचंद्र ने अपनी पच्चीस वर्ष की दारोगागिरी में पहली बार रिश्वत ली, जो छिप न सकी । वह पकड़े गये तो गंगाजली के भाई उमानाथ आकर अपनी बहन और भानजियों को अपने साथ लिवा ले गये । गंगाजली ने मुकदमे में दिल खोल कर खर्च किया तो कृष्णचंद्र की सजा पाँच से चार वर्ष रह गयी । साल भर की दौड़ - धूप के बाद उमानाथ ने सुमन का विवाह बनारस में एक तीस वर्षीय दुआह से कर दिया, जो एक कारखाने में १५ रु० का बाबू था ।

फागुन में सुमन का विवाह हो गया । गंगाजली दामाद को देख कर बहुत रोयी । उसे ऐसा दुःख हुआ, मानो किसी ने सुमन को कुएँ में डाल दिया ।

सुमन ससुराल आयी तो यहाँ की अवस्था उससे भी बुरी पायी जिसकी उसने कल्पना की थी । मकान में केवल दो कोठरियाँ थीं और एक सायबान । दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थी । बाहर से नालियों की दुर्गंध आती रहती थी । धूप और प्रकाश का कहीं गुजर नहीं । इस घर का किराया ३ रु० महीना देना पड़ता था ।

सुमन के दो महीने आराम से कटे । गजाधर की एक बूढ़ी फुआ घर का सारा काम - काज करती थी । लेकिन गर्मियों में शहर में हैजा फैला और बुढ़िया चल बसी । अब वह बड़े फेर में पड़ी । चौका - बर्तन करने के लिए महरियाँ ३ रुपया से कम पर राजी न होती थीं । दो दिन घर में चूल्हा नहीं जला । गजाधर सुमन से कुछ न कह सकता था । दोनों दिन बाजार से पूरियाँ लाया, वह सुमन को प्रसन्न रखना चाहता था । उसके रूप - लावण्य पर मुग्ध हो गया था । तीसरे दिन वह घड़ी रात रहे उठा और सारे बरतन माँज डाले, चौका लगा दिया, ~~झल~~ से पानी भर लाया । सुमन जब सो कर उठी तो यह कौतुक देख कर दंग रह गयी । समझ गयी कि इन्होंने सारा काम किया । लज्जा के मारे उसने कुछ न पूछा ।

संध्या को उसने आप ही सारा काम किया। वरतन माँजती थी और रोती जाती थी।

पर थोड़े ही दिनों में उसे इन कामों की आदत पड़ गयी। उसे अपने जीवन में आनंद - सा अनुभव होने लगा। गजावर को ऐसा मालूम होता था मानो जग जीत लिया है। अपने मित्रों से सुमन की प्रशंसा करना फिरता। स्त्री नहीं है, देवी है। इतने बड़े घर की लड़की, घर का छोटे - से - छोटा काम भी अपने हाथ से करती है। भोजन तो ऐसा बनाती है कि दाल - रोटी में पकवान का स्वाद आ जाता है। दूसरे महीने में उसने वेन पाया तो सब - का - सब सुमन के हाथों में रख दिया। सुमन को आज स्वच्छंदता का आनन्द प्राप्त हुआ। अब उसे एक - एक पैसे के लिए किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़ेगा। वह इन रूप्यों को जैसे चाहे खर्च कर सकती है। जो चाहे खा-पी सकती है।

पर गृह - प्रबंध में कुशल न होने के कारण वह आवश्यक और अनावश्यक खर्च का ज्ञान न रखती थी। परिणाम यह हुआ कि महीने में दस दिन बाकी थे और सुमन ने सब रूपये खर्च कर डाले थे। उसने गृहिणी बनने की नहीं, इंद्रियों के आनंद - भोग की शिक्षा पायी थी। गजावर ने सुना तो सन्नाटे में आ गया। अब महीना कैसे कटेगा ? उसके सिर पर एक पहाड़ - सा टूट पड़ा। इसकी शंका उसे कुछ पल्ले ही हो रही थी। सुमन से तो कुछ न बोला, पर सारे दिन उस पर चिंता सवार रही, अब बीच में रूपये कहाँ से आवें ?

गजावर ने सुमन को घर की स्वामिनी बना तो दिया था, पर वह स्वभाव से कृपण था। जलपान की जलेबियाँ उसे विष के समान लगती थी। दाल में घी देख कर उसके हृदय में शून्य होने लगता। वह भोजन करता तो बटुली की ओर देखता कि कहीं अधिक तो नहीं बना है। दरवाजे पर दान - चावल फेंका देख कर शरीर में ज्वाला - सी लग जाती थी, पर सुमन की मोहनी सूरत ने उसे वशीभूत कर लिया था। मुँह से कुछ न कह सकता।

पर आज जब कई आदमियों से उधार माँगने पर रूपये न मिले तो वह अधीर हो गया। घर में आ कर बोला, रूपये तो तुमने खर्च कर दिये, अब बताओ कहाँ से आवें ?

सुमन — मैंने कुछ उड़ा तो नहीं दिये।

गजावर — उड़ाये नहीं, पर यह तो तुम्हें मालूम था कि इसी में महीने भर चाना है। उसी हिमाब से खर्च करना था।

सुमन — उतने रूप्यों में बरकत थोड़े ही हो जायगी।

गजावर — तो मैं डाका तो नहीं मार सकता।

बातों - बातों में झगड़ा हो गया। गजावर ने कुछ कठोर बातें कहीं। अंत

को सुमन ने अपनी हँसुली गिरवी रखने को दी और गजाधर भुन - भुनाता हुआ ले कर चला गया ।

लेकिन सुमन का जीवन सुख में कटा था । उसे अच्छा खाने, अच्छा पहिने की आदत थी । अपने द्वार पर खोमचे वालों की आवाज सुन कर उससे रहा न जाता । अब तक वह गजाधर को भी खिलाती थी । अब से अकेली ही खा जानी । जिह्वास भोगने के लिए पति से कपट करने लगी ।

धीरे - धीरे सुमन के सौंदर्य की चर्चा मुहल्ले में फैली । पास - पड़ोस की स्त्रियाँ आने लगी । सुमन उन्हें नीचे दृष्टि से देखती; उनसे खुल कर न मिलती । पर उसके रीति - व्यवहार में वह गुण था जो ऊँचे कुलों में स्वाभाविक होता है । पड़ोसियों ने शीघ्र ही उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया । सुमन उनके बीच में रानी मालूम होती थी । उसकी सगर्वा प्रकृति को इसमें अत्यंत आनंद प्राप्त होता था । वह उन स्त्रियों के सामने अपने गुणों को बढ़ा कर दिखाती । वे अपने भाग्य को रोती, सुमन अपने भाग्य को सराहती । वे किसी की निंदा करती तो सुमन उन्हें समझाती । वह उनके सामने रेशमी साड़ी पहन कर बैठती, जो वह मँके से लायी थी । रेशमी जाकिट खूँटी पर लटका देती । उन पर इस प्रदर्शन का प्रभाव सुमन की बातचीत से अधिक होता था । वे वस्त्राभूषण के विषय में उसकी सम्मति को बड़ा महत्व देती । नये गहने बनवाती तो सुमन से सलाह लेती, साड़ियाँ लेतीं तो पहले सुमन को अवश्य दिखा लेती । सुमन ऊपर से उन्हें निष्काम भाव से सलाह देती, पर उसे मन में बड़ा दुःख होता । वह सोचती, यह सब नये - नये गहने बनवाती है, नये - नये कपड़े लेती है और यहाँ रोटियों के लाले हैं । क्या समार में मैं ही सबसे अभागिनी हूँ ! उसने अपने घर यही सीखा था कि मनुष्य को जीवन में सुख भोग करना चाहिए । उसने कभी वह धर्म - चर्चा न सुनी थी, वह धर्म - शिक्षा न पायी थी, जो मन में संतोष का बीजारोपण करती है । उसका हृदय असंतोष से व्याकुल रहने लगा ।

गजाधर इन दिनों बड़ी मेहनत करता । कारखाने से लौटते ही एक दूसरी दुकान पर हिमाब - किताब लिखने चला जाता था । वहाँ से ष बजे रात को लौटता । इस काम के लिए उसे ५ रु० और मिलते थे । पर उसे अपनी आर्थिक दशा में कोई अंतर न दिखायी देता था । उसकी सारी कमाई खाने - पीने में उड जाती थी । उसका संचयशील हृदय इस 'खा - पी बराबर' दशा से बहुत दुःखी रहता था । उस पर सुमन उसके सामने अपने फूटे कर्म का रोना रो - रो कर उसे और भी हताश कर देती थी । उसे स्पष्ट दिखायी देता था कि सुमन का हृदय मेरी ओर से शिथिल होता जाता है । उसे यह न मालूम था कि सुमन मेरी प्रेम - रसपूर्ण बातों से मिठाई के दोनों को अधिक आनंदप्रद समझती है । अतएव वह अपने प्रेम और परिश्रम से फल

न पा कर, उसे अपने शासनाधिकार से प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा । इस प्रकार रस्सी में दोनों ओर से तनाव होने लगा ।

हमारा चरित्र कितना ही दृढ़ हो, पर उस पर संगति का असर अवश्य होता है । सुमन अपने पड़ोसियों को जितनी शिक्षा देती थी उससे अधिक उनसे ग्रहण करती थी । हम अपने गार्हस्थ्य - जीवन की ओर से कितने बेसुध हैं, उसके लिए किसी तैयारी, किसी शिक्षा की जरूरत नहीं समझते । गुड़ियाँ खेलने वाली बालिका, सहेलियों के साथ बिहार करने वाली युवती, गृहिणी बनने के योग्य समझी जाती है । अल्हड़ बछड़े के कंधे पर भारी जुआ रख दिया जाता है । ऐसी दशा में यदि हमारा गार्हस्थ्य जीवन आनंदमय न हो तो कोई आश्चर्य नहीं । जिन महिलाओं के साथ सुमन उठती - बैठती थी, वे अपने पतियों को इंद्रिय सुख का यंत्र समझती थीं । पति, चाहे जैसे हो, अपनी स्त्री को सुंदर आभूषणों से, उत्तम वस्त्रों से सजावे, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलावे । यदि उसमें वह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखटू है, अपाहिज है, उसे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था, वह आदर और प्रेम के योग्य नहीं । सुमन ने भी यही शिक्षा प्राप्त की और गजाधर प्रसाद जब कभी उसके किसी काम से नाराज होते तो उन्हें पुरुषों के कर्तव्य पर एक लम्बा उपदेश सुनना पड़ता था ।

उस मुहल्ले में रसिक युवकों तथा शोहदों की कमी न थी । स्कूल से आते हुए युवक सुमन के द्वार की ओर टकटकी लगाते हुए चले जाते । शोहदे उधर से निकलते तो राधा और कान्हा के गीत गाने लगते । सुमन कोई काम भी करती हो, पर उन्हें चिक् की आड़ से एक झलक दिखा देती । उसके चंचल हृदय को इस ताक-झाँक में असीम आनंद प्राप्त होता था । किसी कुवासना से नहीं, केवल अपनी यौवन की छटा दिखाने के लिए, केवल दूसरों के हृदय पर विजय पाने के लिए वह यह खेल खेलती थी ।

२

सुमन के घर के सामने भोली नाम की एक वेश्या का मकान था । भोली नित नये सिंगार करके अपने कोठे के छज्जे पर बैठती । पहर रात तक उसके कमरे से मधुर गान की ध्वनि आया करती । कभी - कभी वह फिटन पर हवा खाने जाया करती । सुमन उसे घृणा की दृष्टि से देखती थी ।

सुमन ने सुन रखा था कि वेश्याएँ अत्यंत दुश्चरित्र और कुलटा होती हैं । वह अपने जीवन से नवयुवकों को अपने मायाजाल में फँसा लिया करती हैं । कोई भला - मानुस उनसे बातचीत नहीं करता, केवल शोहदे रात को छिप कर उनके

यहाँ जाया करते हैं। भोली ने कई बार उसे चिक की आड़ में खड़े देख कर इशारे से बुलाया था, पर सुमन उससे बोलने में अपना अपमान समझती। वह अपने को उससे बहुत श्रेष्ठ समझती थी। मैं दरिद्र सही, दीन सही पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूँ, किसी भले - मानुस के घर में मेरी रोक तो नहीं, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता। वह कितना ही भोग विलास करे पर उसका कहीं आदर तो नहीं होता। बस अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अवयम का फल भोगा करे। लेकिन सुमन को शीघ्र ही मालूम हुआ कि मैं इसे जितना नीच समझती हूँ, उससे वह कहीं ऊँची है।

आषाढ के दिन थे। गरमी के मारे सुमन का दम फूल रहा था; संध्या को उससे किसी तरह न रहा गया। उसने चिक उठा दी और द्वार पर बैठी पंखा झल रही थी। देखती क्या है कि भोली बाई के दरवाजे पर किसी उत्सव की तैयारियाँ हो रही हैं। भिस्ती पानी का छिड़काव कर रहे थे। आँगन में एक शामियाना ताना जा रहा था। उसे सजाने के लिए बहुत से फूल - पत्ते रखे हुए थे। शीशे के सामान ठेकों पर लदे चले आते थे। फर्श बिछाया जा रहा था। बीसों आदमी इधर से उधर दौड़ते फिरते थे, इतने में भोली की निगाह उस पर गयी। सुमन के समीप आ कर बोली, आज मेरे यहाँ मौलूद है। देखना चाहो तो परदा करा दूँ।

सुमन ने बेपरवाही से कहा, मैं यही बैठे - बैठे देख लूंगी।

भोली — देख तो लोगी, पर सुन न सकोगी। हज़ं क्या है, ऊपर परदा करा दूँ ?

सुमन — मुझे सुनने की उतनी इच्छा नहीं।

भोली ने उसकी ओर एक करुणा सूचक दृष्टि से देखा और मन में कहा, यह गर्वारिन अपने मन में न जाने क्या समझे बैठी है। अच्छा, आज तू देख ले कि मैं कौन हूँ ? वह बिना कुछ कहे चली गयी।

रात हो रही थी। सुमन का चूल्हे के समाने जाने को जी न चाहता था। बदन में यों ही आग लगी हुई है। आँच कैसे सही जायगी, पर सोच - विचार कर उठी। चूल्हा जलाया, खिचड़ी डाली और फिर आ कर वहाँ तमाशा देखने लगी। आठ बजते - बजते शामियाना गैस के प्रकाश से जगमगा उठा। फूल - पत्तों की सजावट उसकी शोभा को और भी बढ़ा रही थी। चारों ओर से दर्शक आने लगे। कोई बाइसिकिल पर आता था, कोई टमटम पर, कोई पैदल, थोड़ी देर में दो - तीन फिटनें भी आ पहुँचीं और उनमें से कई बाबू लोग उतर पड़े। एक घंटे में सारा आँगन भर गया। कई सौ मनुष्यों का जमाव हो गया। फिर मौलाना साहब की सवारी आयी। उनके चेहरे से प्रतिभा झलक रही थी। वह सजे हुए सिंहासन पर मसनद लगा कर बैठ गये और मौलूद होने लगा। कई आदमी मेहमानों का स्वागत-

सत्कार कर रहे थे। कोई गुलाब छिड़क रहा था, कोई खसदान पेश करता था। सम्य पुरुषों का ऐसा समूह सुमन ने कभी न देखा था।

नौ बजे गजाधर प्रसाद आये। सुमन ने उन्हें भोजन कराया। भोजन करके गजाधर भी जा कर उसी मंडली में बैठे। सुमन को तो खाने की भी सुध न रही। बारह बजे रात तक वह वही बैठी रही — यहाँ तक कि मौलूद समाप्त हो गया। फिर मिठाई बँटी और बारह बजे सभा विसर्जित हुई। गजाधर घर में आये तो सुमन ने कहा, यह सब कौन लोग बैठे हुए थे ?

गजाधर — मैं सबको पहचानता थोड़े ही हूँ। पर भले - बुरे सभी थे। शहर के कई रईस भी थे।

सुमन — क्या यह लोग वेश्या के घर आने में अपना अपमान नहीं समझते ?

गजाधर — अपमान समझते तो आते ही क्यों ?

सुमन — तुम्हें तो वहाँ जाते हुए संकोच हुआ होगा ?

गजाधर — जब इतने भलेमानुस बैठे हुए थे तो मुझे क्यों संकोच होने लगा। वह सेठ जी भी आये हुए थे जिनके यहाँ मैं शाम को काम करने जाया करता हूँ।

सुमन ने विचारपूर्ण भाव से कहा, मैं समझती थी कि वेश्याओं को लोग बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

गजाधर — हाँ, ऐसे मनुष्य भी हैं, गिने गिनाये। पर अँगरेजी शिक्षा ने लोगों को उदार बना दिया है। वेश्याओं का अब उतना तिरस्कार नहीं किया जाता। फिर भोली बाई का शहर में बड़ा मान है।

आकाश में बादल छा रहे थे। हवा बंद थी। एक पत्ती भी न हिलती थी। गजाधर प्रसाद दिन - भर के थके हुए थे। चारपाई पर जाते ही निद्रा में निमग्न हो गये, पर सुमन को बहुत देर तक नींद न आयी।

दूसरे दिन संध्या को जब फिर चिक उठा कर बैठी तो उसने भोली को छज्जे पर बैठे देखा। उसने बरामदे में से निकल कर भोली से कहा, रात तो आपके यहाँ बड़ी घूम थी।

भोली समझ गयी कि मेरी जीत हुई। मुस्करा कर बोली, तुम्हारे लिए शीरीनी भेज दूँ ? हलवाई की बनायी हुई है। ब्राह्मण लाया है।

सुमन ने संकोच से कहा, भिजवा देना।

सुमन को ससुराल आये डेढ़ साल के लगभग हो चुका था, पर उसे मैके जाने का सौभाग्य न हुआ था। वहाँ से चिट्ठियाँ आती थीं। सुमन उत्तर में अपनी

माँ को समझाया करती, मेरी चिंता मत करना, मैं बहुत आनंद से हूँ, पर अब उसके उत्तर अपनी विपत्ति की कथाओं से भरे होते थे। मेरे जीवन के दिन रो-रो कर कट रहे हैं। मैंने आप लोगों का क्या बिगाड़ा था कि मुझे इस अंधे कुएँ में ढकेल दिया। यहाँ न रहने को घर है, न पहिने को वस्त्र, न खाने को अन्न। पशुओं की भाँति रहती हूँ।

उसने अपनी पड़ोसियों से मैके का बखान करना छोड़ दिया। कहाँ तो उनसे अपने पति की सराहना किया करती थी, कहाँ अब उसकी निंदा करने लगी। मेरा कोई पूछनेवाला नहीं है। घरवालों ने समझ लिया कि मर गयी। घर में सब कुछ है; पर मेरे किस काम का? वह समझते होंगे, यहाँ मे फूलों की सेज पर सो रही हूँ और मेरे ऊपर जो बीत रही है वह मैं ही जानती हूँ।

गजाधर प्रसाद के साथ उसका बर्ताव पहले से कहीं रूखा हो गया। वह उन्हीं को अपनी इस दशा का उत्तरदाता समझती थी। वह देर में सो कर उठती, कई दिन घर में झाड़ू नहीं देती। कभी-कभी गजाधर को बिना भोजन किये काम पर जाना पड़ता। उसकी समझ में न आता कि यह क्या मामला है, यह काया-पलट क्यों हो गयी है।

सुमन को अपना घर अच्छा न लगता। चित्त हर घड़ी उचटा रहता। दिन-दिन भर पड़ोसियों के घर बैठी रहती।

एक दिन गजाधर आठ बजे लौटे तो घर का दरवाजा बंद पाया। अँधेरा छाया हुआ था। सोचने लगे, रात को वह कहाँ गयी है? अब यहाँ तक नौबत पहुँच गयी? किवाड़ खटखटाने लगे कि कहीं पड़ोस में होगी तो सुन कर चली आवेगी। मन में निश्चय कर लिया था कि आज उसकी खबर लूँगा। सुमन उस समय भोली बाई के कोठे पर बैठी हुई बातें कर रही थी। भोली ने आज उसे बहुत आग्रह करके बुलाया था। सुमन इनकार कैसे करती? उसने अपने दरवाजे का खटखटाना सुना तो घबड़ा कर उठ खड़ी हुई और भागी हुई अपने घर आयी। बातों में उसे मालूम ही न हुआ कि कितनी रात चली गयी। उसने जल्दी से किवाड़ खोले, चटपट दीया जलाया और झूलहे में आग जलाने लगी। उसका मन अपना अपराध स्वीकार कर रहा था। एकाएक गजाधर ने क्रुद्ध भाव से कहा, तुम इतनी रात तक वहाँ बैठी क्या कर रही थीं? क्या लाज-शर्म बिलकुल धोल कर पी ली है?

सुमन ने दीन भाव से उत्तर दिया — उसने कई बार बुलाया तो चली गयी। कपड़े उतारो, अभी खाना तैयार हुआ जाता है। आज तुम और दिनों से जल्दी आये हो।

गजाधर — खाना पीछे बनाना, मैं ऐसा भूखा नहीं हूँ। पहले यह बताओ

कि तुम वहाँ मुझसे पूछे बिना गयीं क्यों। क्या तुमने मुझे बिलकुल मिट्टी का लोँदा ही समझ लिया है ?

सुमन — सारे दिन अकेले इस कुप्पी में बैठे भी तो नहीं रहा जाता।

गजाधर — तो इसलिए अब वेश्याओं से मेल - जोल करोगी ? तुम्हें अपनी इज्जत - आबरू का भी कुछ विचार है ?

सुमन — क्यों, भोली के घर जाने में कोई हानि है ? उसके घर तो बड़े - बड़े लोग आते हैं, मेरी क्या गिनती है।

गजाधर — बड़े - बड़े भले ही आवें, लेकिन तुम्हारा वहाँ जाना बड़ी लज्जा की बात है। मैं अपनी स्त्री को वेश्या से मेल - जोल करते नहीं देख सकता। तुम क्या जानती हो कि जो बड़े - बड़े लोग उसके घर आते हैं यह कौन लोग हैं ? केवल धन से कोई बड़ा थोड़े ही हो जाता है ? धर्म का महत्त्व धन से कहीं बढ़ कर है। तुम उस मौलूद के दिन जमाव देख कर धोखे में आ गयी होगी, पर यह समझ लो कि उनमें से एक भी सज्जन पुरुष नहीं था। मेरे सेठ जी लाख धनी हों पर उन्हें मैं अपनी चौखट न लॉघने दूँगा। यह लोग धन के घमंड में धर्म की परवाह नहीं करते। उनके आने से भोली पवित्र नहीं हो गयी है। मैं तुम्हें सचेत कर देता हूँ कि आज से फिर कभी उधर मत जाना, नहीं तो अच्छा न होगा।

सुमन के मन में बात आ गयी। ठीक ही है, मैं क्या जानती हूँ कि वह कौन लोग थे। धनी लोग तो वेश्याओं के दास हुआ ही करते हैं। यह बात रामभोली भी कह रही थी। मुझे बड़ा धोखा हो गया था।

सुमन को इस विचार से बड़ा संतोष हुआ। उसे विश्वास हो गया कि वे लोग प्रकृति के विषय - वासनावाले मनुष्य थे। उसे अपनी दशा अब उतनी दुःख-दायी न प्रतीत होती थी। उसे भोली से अपने को ऊँचा समझने के लिए एक आधार मिल गया था।

सुमन की धर्मनिष्ठा जागृत हो गयी। वह भोली पर अपनी धार्मिकता का सिका जमाने के लिए नित्य गंगास्नान करने लगी। एक रामायण मँगवायी और कभी - कभी अपनी सहेलियों को उसकी कथाएँ सुनाती। कभी अपने - आप उच्च स्वर में पढ़ती। इससे उसकी आत्मा को तो क्या शांति होती, पर मन को बहुत संतोष होता था। चैत का महीना था। रामनौमी के दिन सुमन कई सहेलियों के साथ एक बड़े मंदिर में जन्मोत्सव देखने गयी। मंदिर खूब सजाया हुआ था। बिजली की बत्तियों से दिन का-सा प्रकाश हो रहा था, बड़ी भीड़ थी। मंदिर के आँगन में तिल धरने की भी जगह न थी। संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी। सुमन ने खिड़की से आँगन में झाँका तो क्या देखती है कि वही उसकी पड़ोसिन भोली बैठी हुई गा रही है। सभा में एक - से - एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वेष्णव तिलक लगाये, कोई भस्म

रमाये, कोई गले में कंठी - माला डाले और राम नाम की चादर ओढ़े, कोई गेरुए बख पहने। उनमें से कितनों ही को सुमन नित्य गंगास्नान करते देखती थी। वह उन्हें धर्मात्मा, विद्वान् समझती थी। वही लोग यहाँ इस भाँति तन्मय हो रहे थे, मानों स्वर्गलोक में पहुँच गये हैं ! भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती थी वह मुग्ध हो जाता था, मानो साक्षात् राधाकृष्ण के दर्शन हो गये। इस दृश्य ने सुमन के हृदय पर वज्र का - सा आघात किया। उसका अभिमान चूर - चूर हो गया। वह आधार जिस पर वह पैर जमाये खड़ी थी पैरों के नीचे से सरक गया। सुमन वहाँ एक क्षण भी खड़ी न रह सकी। भोली के सामने केवल धन ही सिर नहीं झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है। धर्मात्मा लोग भी उसका आदर करते हैं। वही वेश्या — जिसे मैं अपने धर्म-पाखंड से परास्त करना चाहती हूँ — यहाँ महात्माओं की सभा में, ठाकुर जी के पवित्र निवास - स्थान में आदर और सम्मान का पात्र बनी हुई है और मेरे लिए कहीं खड़े होने की जगह नहीं।

सुमन ने अपने घर आ कर रामायण बस्ते में बाँध कर रख दी। गंगा स्नान तथा व्रत से उसका मन फिर गया। कर्णधार - रहित नौका के समान उसका जीवन फिर डूँबाडोने होने लगा।

४

गजाधर प्रसाद की दशा उस मनुष्य की - सी थी, जो चोरों के बीच में अशर्फियों की थैली लिये बैठा हो। सुमन का वह मुख - कमल जिस पर वह कभी भौरे की भाँति मँडराया करता था, अब उसकी आँखों में जलती हुई आग के समान था। वह उससे दूर - दूर रहता, उसे भय था कि वह मुझे जला न दे। (स्त्रियों का सौन्दर्य उनका पति - प्रेम है) इसके बिना उनकी सुदरता इन्द्रायण का फल है, विषमय और दग्ध करने वाला।

गजाधर ने सुमन को सुख से रखने के लिए, अपने से जो कुछ हो सकता था सब करके देख लिया और अपनी स्त्री के लिए आकाश के तारे तोड़ लाना उसकी सामर्थ्य से बाहर था।

इन दिनों उसे सबसे बड़ी चिंता अपना घर बदलने की थी। इस घर में आँगन नहीं था, इसलिए जब कभी वह सुमन से कहता कि चिक के पास मत खड़ी हुआ करो, तो वह चट उत्तर देती, क्या इसी कालकोठरी में पड़े - पड़े मर जायें ? घर में आँगन होगा तब तो वह यह बहाना न कर सकेगी। इसके अतिरिक्त वह यह भी चाहता था कि सुमन का इन स्त्रियों से साथ छूट जाय। उसे यह निश्चय हो गया था कि उन्हीं की कुसंगति से सुमन का यह हाल हो गया है। वह दूसरे मकान

की खोज में चारों ओर जाता पर किराया सुनते ही निराश हो कर लौट आता है ।

एक दिन वह सेठ जी के यहाँ से ८ बजे रात को लौटा तो क्या देखता है कि भोली बाई उसकी चारपाई पर बैठी सुमन से हँस-हँस कर बातें कर रही है । क्रोध के मारे गजाधर के ओंठ फड़कने लगे । भोली ने उसे देखा तो जल्दी से बाहर निकल आयी और बोली, अगर मुझे मालूम होता कि आप सेठ जी के यहाँ नौकर हैं तो अब तक कभी आप की तरक्की हो जाती । यह आज बहू जी से मालूम हुआ । सेठ जी मेरे ऊपर बड़ी निगाह रखते हैं ।

इन शब्दों ने गजाधर के धाव पर नमक छिड़क दिया । यह मुझे इतना नीच समझती है कि मैं इसकी सिफारिश से अपनी तरक्की कराऊँगा । ऐसी तरक्की पर लात मारता हूँ । उसने भोली को कुछ जवाब न दिया ।

सुमन ने उसके तेवर देखे तो समझ गयी कि आग भड़का ही चाहती है, पर वह उसके लिए तैयार बैठी हुई थी । गजाधर ने भी अपने क्रोध को छिपाया नहीं । चारपाई पर बैठते ही बोला, तुमने फिर भोली से नाता जोड़ा ? मैंने उस दिन मना नहीं किया था ?

सुमन ने सावधान हो कर उत्तर दिया, उसमें कोई छूत तो नहीं लगी है । शील - स्वभाव में वह किसी से घट कर नहीं, मान - मर्यादा में किसी से कम नहीं, फिर उससे बात - चीत करने में मेरी क्या हेठी हुई जाती है ? वह चाहे तो हम जैसों को नौकर रख ले ।

गजाधर — फिर तुमने वही बेसिर - पैर की बातें कीं । मान - मर्यादा धन से नहीं होती ।

सुमन — पर धर्म से तो होती है ?

गजाधर — तो वह बड़ी धर्मात्मा है ?

सुमन — यह भगवान् जानें, पर धर्मात्मा लोग उसका आदर करते हैं । अभी रामनौमी के उत्सव में मैंने उसे बड़े - बड़े पंडितों और धर्मात्माओं की मंडली में गाते देखा । कोई उससे घृणा नहीं करता था । सब उसका मुँह देख रहे थे । लोग उसका आदर - सत्कार ही नहीं करते थे, बल्कि उससे बातचीत करने में अपना अहोभाग्य समझते थे । मन में वह उससे घृणा करते थे या नहीं, यह ईश्वर जाने, पर देखने में तो उस समय भोली - ही - भोली दिखाई देती थी । संसार तो व्यवहारों को ही देखता है, मन की बात कौन किसकी जानता है ।

गजाधर — तो तुमने उन लोगों के बड़े - बड़े तिलक - छापे देख कर ही उन्हें धर्मात्मा समझ लिया ? आजकल धर्म तो धूतों का अड्डा बना हुआ है । इस निर्मल सागर में एक - से - एक मगर - मच्छ पड़े हुए हैं । भोले - भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है । लम्बी - लम्बी जटाएँ लम्बे - लम्बे तिलक - छापे और लम्बी

लम्बी दाढ़ियाँ देख कर लोग धोखे में आ जाते हैं, पर वह सबके सब महापाखंडी, धर्म के उज्ज्वल नाम को कलंकित करनेवाले, धर्म के नाम पर टका कमानेवाले, भोग-विलास करनेवाले, पापी हैं। भोली का आदर-सम्मान उनके यहाँ न होगा तो किसके यहाँ होगा ?

सुमन ने सरल भाव से पूछा, फुसलौ रहे हो या सच कह रहे हो ?

गजाधर ने उसकी ओर करुण दृष्टि से देख कर कहा, नहीं सुमन, वास्तव में यही बात है। हमारे देश में सज्जन मनुष्य बहुत कम हैं, पर अभी देश उनसे खाली नहीं है। वह दयावान् होते हैं, सदाचारी होते हैं, सदा परोपकार में तत्पर रहते हैं। भोली यदि अप्सरा बन कर आवे तो वह उसकी ओर आँख उठा कर भी न देखेंगे। सुमन चुप हो गयी। वह गजाधर की बातों पर विचार कर रही थी।

५

दूसरे दिन से सुमन ने चिक के पास खड़ा होना छोड़ दिया। खोंचेवाले आते और पुकार कर चले जाते। छैले गजल गाते हुए निकल जाते। चिक की आड़ में अब उन्हें कोई न दिखायी देता था। भोली ने कई बार बुलाया, लेकिन सुमन ने बहाना कर दिया कि मेरा जी अच्छा नहीं है। दो-तीन बार वह स्वयं आयी, पर सुमन उससे खुल कर न मिली।

सुमन को यहाँ आये अब दो साल हो गये थे। उसकी रेशमी साड़ियाँ फट चली थीं। रेशमी जाकटें अब तार-तार हो गयी थी। सुमन अब अपनी मंडली की रानी न थी। उसकी बातें उतने आदर से न सुनी जाती थी। उसका प्रभुत्व मिटा जाता था। उत्तम-वस्त्र-विहीन हो कर वह अपने उच्चासन से गिर गयी थी। इसलिए वह पड़ोसिनो के घर भी न जाती। पड़ोसिनों का आना-जाना भी कम हो गया था। सारे दिन अपनी कोठरी में पड़ी रहती। कभी कुछ पढ़ती, कभी सोती।

बंद कोठरी में पड़े-पड़े उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। पिर में पीड़ा हुआ करती। कभी बुखार आ जाता, कभी दिल में घड़कन होने लगती। मंदाम्नि के लक्षण दिखायी देने लगे। साधारण कामों से भी जो घबराता। शरीर क्षीण हो गया और कमल का-सा बदन मुरझा गया।

गजाधर को चिंता होने लगी। कभी-कभी वह सुमन पर झुंझ नाता और कहता, जब देखो तब पड़ी रहती हो। जब तुम्हारे रहने से मुझे इतना भी सुख नहीं कि ठीक समय पर भोजन मिल जाय तो तुम्हारा रहना न रहना दोनों बराबर हैं। पर शीघ्र ही उसे सुमन पर दया आ जाती। अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित होता।

उसे धीरे-धीरे ज्ञान होने लगा कि सुमन के सारे रोग अपवित्र वायु के कारण हैं। कहीं तो उसे चिक के पास खड़े होने से मना किया करता था, मेलों में जाने और गंगास्नान करने से रोकता था, कहीं अब स्वयं चिक उठा देता और सुमन को गंगा-स्नान करने के लिए ताकीद करता। उसके आग्रह से सुमन कई दिन लगातार स्नान करने गयी और उसे अनुभव हुआ कि मेरा जी कुछ हल्का हो रहा है। फिर तो वह नियमित रूप से नहाने लगी। मुरझाया हुआ पीया पानी पा कर फिर लहलहाने लगा।

माघ का महीना था। एक दिन सुमन की कई पड़ोसिनें भी उसके साथ नहाने चलीं। मार्ग में वेनी-बाग पड़ता था। उसमें नाना प्रकार के जीव-जंतु पले हुए थे। पक्षियों के लिए लोहे के पतले तारों से एक विशाल गुम्बद बनाया गया था। लौटती बार सबकी सलाह हुई कि बाग की सैर करनी चाहिए। सुमन तत्काल ही लौट आया करती थी, पर आज सहेलियों के आग्रह से उसे भी बाग में जाना पड़ा। सुमन बहुत देर तक वहाँ के अद्भुत जीवधारियों को देखती रही। अंत को वह थक कर एक बेंच पर बैठ गयी। सहसा उसके कान में आवाज आयी, अरे! यह कौन औरत बेंच पर बैठी है? उठ वहाँ से। क्या सरकार ने तेरे ही लिए बेंच रख दी है?

सुमन ने पीछे फिर कर कातर नेत्रों से देखा। बाग का रक्षक खड़ा डाँट बता रहा था।

सुमन लज्जित हो कर बेंच पर से उठ गयी और इस अपमान को भुलाने के लिए चिड़ियों को देखने लगी। मन में पछता रही थी कि कहीं-से-कहीं मैं इस बेंच पर बैठी। इतने में एक किराये की गाड़ी आ कर चिड़ियाघर के सामने रुकी। बाग के रक्षक ने दौड़ कर गाड़ी के पट खोले। दो महिलाएँ उतर पड़ीं। उनमें से एक वही सुमन की पड़ोसिन भोली थी। सुमन एक पेड़ की आड़ में छिप गयी और वह दोनों स्त्रियाँ बाग की सैर करने लगी। उन्होंने बंदरों को चने खिलाये, चिड़ियों को दाने चुगाये, कछुए की पीठ पर खड़ी हुईं; फिर सरोवर में मछलियों को देखने चली गयीं। रक्षक उनके पीछे-पीछे सेवकों की भाँति चल रहा था। वे सरोवर के किनारे मछलियों की क्रीड़ा देख रही थीं, तब तक रक्षक ने दौड़ कर दो गुलदस्ते बनाये और उन महिलाओं को भेंट किये। थोड़ी देर बाद वह दोनों आ कर बेंच पर बैठ गयीं, जिस पर से सुमन उठा दी गयी थी। रक्षक एक किनारे अदब से खड़ा था। यह दशा देख कर सुमन की आँखों से क्रोध के मारे चिनगारियाँ निकलने लगी। उसके एक-एक रोम से पसीना निकल आया। देह तृण के समान काँपने लगी। हृदय में अग्नि की एक प्रचंड ज्वाला दहक उठी। वह अंचल में मुँह छिपा कर रोने लगी। ज्यों ही दोनों वेश्याएँ वहाँ से चली गयीं, सुमन सिंहनी की भाँति

लपक कर रक्षक के सम्मुख आ खड़ी हुई और क्रोध से काँपती हुई बोली, क्यों जी, तुमने मुझे तो बेंच पर से उठा दिया जैसे तुम्हारे बाप ही की है, पर उन दोनों रांडों से कुछ न बोले ?

रक्षक ने अपमान सूचक भाव से कहा, वह और तुम बराबर ! आग पर घी जो कुछ करता है वह इस वाक्य ने सुमन के हृदय पर किया। ओठ चबा कर बोली, चुप रह मूर्ख ! टके के लिए वेश्याओं की जूतियाँ उठाता है, उस पर लज्जा नहीं आती। ले देख तेरे सामने फिर इस बेंच पर बैठी हूँ, देखूँ तू मुझे कैसे उठाता है।

रक्षक पहले तो कुछ डरा, किंतु सुमन के बेंच पर बैठते ही उसकी ओर लपका कि उसका हाथ पकड़ कर उठा दे। सुमन सिंहनी की भौंति आग्नेय नेत्रों से ताकती हुई उठ खड़ी हुई। उसकी एड़ियाँ उछली पड़ती थी। सिसकियों के आवेग को बल - पूर्वक रोकने के कारण मुँह से शब्द न निकलते थे। उसकी सहेलियाँ जो इस समय चारों ओर से घूमघाम कर चिड़ियाघर के पास आ गयी थी, दूर से खड़ी यह तमाशा देख रही थी। किसी को बोलने की हिम्मत न पड़ती थी।

इतने में फिर एक गाड़ी सामने से आ पहुँची। रक्षक अभी सुमन से हाथापाई कर ही रहा था कि गाड़ी में से एक भलेमानस उतर कर चौकीदार के पास झपटे हुए आये और उसे जोर से धक्का दे कर बोले, क्यों बे, इनका हाथ क्यों पकड़ता है ? दूर हट।

चौकीदार हकबका कर पीछे हट गया। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। बोला, सरकार, क्या यह आपके घर की है ?

भद्र पुरुष ने क्रोध में कहा, हमारे घर की हो या न हो, तू इनसे हाथापाई क्यों कर रहा था ? अभी रिपोर्ट कर दूँ तो नौकरी से हाथ धो बैठेगा।

चौकीदार हाथ - पैर जोड़ने लगा। इतने में गाड़ी में बैठी हुई महिला ने सुमन को इशारे से बुलाया और पूछा, यह तुमसे क्या कह रहा था ?

सुमन - कुछ नहीं, मैं इस बेंच पर बैठी थी, वह मुझे उठाना चाहता था। अभी दो वेश्याएँ इसी बेंच पर बैठी थीं। क्या मैं ऐसी गयी - बीती हूँ कि यह मुझे वेश्याओं से भी नीच समझे ?

रमणी ने उसे समझाया कि यह छोटे आदमी जिससे चार पैसे पाते हैं उसी की गुलामी करते हैं। इनके मुँह लगना अच्छा नहीं।

दोनों स्त्रियों में परिचय हुआ। रमणी का नाम सुभद्रा था। वह भी सुमन के मुहल्ले में पर उसके मकान से जरा दूर रहती थी। उसके पति वकील थे। स्त्री - पुरुष गंगा स्नान करके घर जा रहे थे। यहाँ पहुँच कर उसके पति ने देखा कि चौकीदार एक भले घर की स्त्री से झगड़ा कर रहा है तो गाड़ी से उतर पड़े।

सुभद्रा सुमन के रंग-रूप, बातचीत पर ऐसी मोहित हुई कि उसे अपनी गाड़ी में बैठा लिया। वकील साहब कोचबक्स पर जा बैठे। गाड़ी चली। सुमन को ऐसा मालूम हो रहा था कि मे विमान पर बैठी स्वर्ग को जा रही हूँ। सुभद्रा यद्यपि बहुत रूपवती न थी और उसके वस्त्राभूषण भी साधारण ही थे, पर उसका स्वभाव ऐसा नम्र, व्यवहार ऐसा सरल तथा विनयपूर्ण था कि सुमन का हृदय पुलकित हो गया। रास्ते में उसने अपनी सहेलियों को जाते देख खिड़की खोल कर उनकी ओर गर्व से देखा, मानो कह रही थी, तुम्हें भी कभी यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है? पर इस गर्व के साथ ही उसे यह भय भी था कि कहीं मेरा मकान देख कर सुभद्रा मेरा तिरस्कार न करने लगे। जरूर यही होगा। यह क्या जानती है कि मैं ऐसे फटे हालाँ रहती हूँ। यह कैसी भाग्यवान् स्त्री है! कैसा देवरूप पुरुष है! यह न आ जाते तो वह निर्दयी चौकीदार न जाने मेरी क्या दुर्गति करता। कितनी सज्जनता है कि मुझे भीतर बिठा दिया और आप कोचवान के साथ जा बैठे! वह इन्हीं विचारों में मग्न थी कि उसका घर आ गया। उसने सकुचाते हुए सुभद्रा से कहा, गाड़ी रुकवा दीजिए, मेरा घर आ गया।

सुभद्रा ने गाड़ी रुकवा दी। सुमन ने एक बार भोली बाई के मकान की ओर ताका। वह अपने छज्जे पर टहल रही थी। दोनों की आँखें मिलीं, भोली ने मानो कहा, अच्छा यह ठाट है। सुमन ने जैसे उत्तर दिया, अच्छी तरह देख लो यह कौन लोग हैं। तुम मर भी जाओ तो इस देवी के साथ बैठना नसीब न हो।

सुमन उठ उड़ी हुई और सुभद्रा की ओर सजल नेत्रों से देखती हुई बोली — इतना प्रेम लगा कर बिसार मत देना। मेरा मन लगा रहेगा।

सुभद्रा ने कहा — नहीं बहिन, अभी तो तुमसे कुछ बातें भी न करने पायी। मैं तुम्हें कल बुलाऊँगी।

सुमन उतर पड़ी। गाड़ी चली गयी। सुमन अपने घर में गयी तो उसे ऐसा मालूम हुआ मानो कोई आनंदमय स्वप्न देख कर जागी है।

गजाधर ने पूछा, यह गाड़ी किसकी थी?

सुमन — यहीं के कोई वकील है। बेनीबाग में उनकी स्त्री से भेंट हो गयी। जिद करके गाड़ी पर बैठा लिया। मानती ही न थी।

गजाधर — तो क्या तुम वकील के साथ बैठी थीं?

सुमन — कैसी बातें करते हो? वह बेचारे तो कोचवान के साथ बैठे थे।

गजाधर — तभी इतनी देर हुई।

सुमन — दोनों सज्जनता के अवतार हैं।

गजाधर — अच्छा, चलके चूल्हा जलाओ, बहुत बखान हो चुका।

सुमन — तुम वकील साहब को जानते तो होगे?

गजाधर — इस मुहल्ले में तो यही एक पद्मसिंह वकील हैं ? वही रहे होंगे ।

सुमन — गोरे - गोरे लम्बे आदमी हैं । ऐनक लगाते हैं ।

गजाधर — हाँ, हाँ, वही हैं, यह क्या पूरब की ओर रहते है ।

सुमन — कोई बड़े वकील हैं ?

गजाधर — मैं उनका जमाखचं थोड़े ही लिखता हूँ । आते - जाते कभी - कभी देख लेता हूँ । आदमी अच्छे है ।

सुमन ताड़ गयी कि वकील साहब की चर्चा गजाधर को अच्छी नहीं मालूम होती । उसने कपड़े बदले और भोजन बनाने लगी ।

६

दूसरे दिन सुमन नहाने न गयी । सबेरे ही से अपनी एक रेशमी साड़ी की मरम्मत करने लगी !

दोहर को सुभद्रा की एक महरी उसे लेने आयी । सुमन ने मन में सोचा था, गाड़ी आवेगी । उसका जी छोटा हो गया । वही हुआ जिसका उसे भय था ।

वह महरी के साथ सुभद्रा के घर गयी और दो - तीन घंटे तक बैठी रही । उसका वहाँ से उठने को जी न चाहता था । उसने अपने मैके का रत्ती - रत्ती हाल कह सुनाया पर सुभद्रा अपनी ससुराल की ही बातें करती रही ।

दोनों स्त्रियों में मेल - मिलाप बढ़ने लगा । सुभद्रा जब गंगा नहाने जाती तो सुमन को साथ ले लेती । सुमन को भी नित्य एक बार सुभद्रा के घर गये बिना कल न पड़ती थी ।

जैसे बालू पर तड़पती हुई मछली जल - धारा में पहुँच कर किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार सुमन भी सुभद्रा की स्नेह रूपी जलधारा में अपनी विपत्ति को भूल कर आमोद-प्रमोद में मग्न हो गयी ।

सुभद्रा कोई काम करती होती तो सुमन स्वयं उसे करने लगती । कभी - कभी पंडित पद्मसिंह के लिए जलपान बना देती, कभी पान लगा कर भेज देती । इन कामों में उसे जरा भी आलस्य न होता था । उसकी दृष्टि में सुभद्रा - सी सुशीला स्त्री और पद्मसिंह सरीखे सज्जन मनुष्य संसार में और न थे ।

एक बार सुभद्रा को ज्वर आने लगा । सुमन कभी उसके पास से न टलती । अपने घर एक क्षण के लिए जाती और कच्चा - पक्का खाना बना कर फिर भाग आती, पर गजाधर उसकी इन बातों से जलता था । उसे सुमन पर विश्वास न था । वह उसे सुभद्रा के यहाँ जाने से रोकता था, पर सुमन उसका कहना न मानती थी ।

फागुन के दिन थे। सुमन को यह चिंता हो रही थी कि होली के लिए कपड़ों का क्या प्रबंध करे ? गजाघर को इधर एक महीने से सेठ जी ने जवाब दे दिया था। उसे अब केवल १५ रुपये का ही आधार था। वह एक तंजेब की साड़ी और रेशमी मलमल की जाकेट के लिए गजाघर से कई बार कह चुकी थी, पर गजाघर हूँ - हाँ करके टाल जाता था। वह सोचती, यह पुराने कपड़े पहन कर सुभद्रा के घर होली खेलने कैसे जाऊँगी ?

इसी बीच में सुमन को अपनी माता के स्वर्गवास होने का शोक समाचार मिला। सुमन को इसका उतना शोक न हुआ जितना होना चाहिए था, क्योंकि उसका हृदय अपनी माता की ओर से फट गया था। लेकिन होली के लिए नये और उत्तम वस्त्रों की चिंता से निवृत्ति हो गयी। उसने सुभद्रा से कहा — बहू जी, अब मैं अनाथ हो गयी। अब गहने कपड़े की तरफ ताकने को जी नहीं चाहता। बहुत पहन चुकी। इस दुःख ने सिंगार - पटार की अभिलाषा ही नहीं रहने दी। जी अधम है, शरीर से निकलता नहीं, लेकिन हृदय पर जो कुछ बीत रही है वह मैं ही जानती हूँ। अपनी सहचरियों से भी उसने ऐसी ही शोक पूर्ण बातें की। सब - की - सब उसकी मातृभक्ति की प्रशंसा करने लगीं।

एक दिन वह सुभद्रा के साथ बैठी हुई रामायण पढ़ रही थी कि पद्मसिंह प्रसन्नचित्त घर में आ कर बोले, आज बाजी मार ली।

सुभद्रा ने उत्सुक हो कर कहा — सच ?

पद्मसिंह — अरे क्या अब की भी संदेह था ?

सुभद्रा — अच्छा तो लाइये मेरे रुपये दिलवाइए, वहाँ आपकी बाजी थी, यहाँ मेरी बाजी है।

पद्म — हाँ, हाँ तुम्हारे रुपये मिलेंगे, जरा सब्र करो। मित्र लोग आग्रह कर रहे हैं कि धूमधाम से आनंदोत्सव किया जाय।

सुभद्रा — हाँ, कुछ - न - कुछ तो करना ही पड़ेगा और यह उचित भी है।

पद्म — मेने प्रीतिभोज का प्रस्ताव किया, किंतु इसे कोई स्वीकार नहीं करता। लोग भोली बाई का मुजरा कराने के लिए अनुरोध कर रहे हैं।

सुभद्रा — अच्छा तो उन्हीं की मान लो, कौन हज़ारों का खर्च है। होली भी आ गयी है, बस होली ही के दिन रखो। 'एक पंथ दो काज' हो जायगा।

पद्म — खर्च की बात नहीं, सिद्धांत की बात है।

सुभद्रा — भला, अब की बार सिद्धांत के विरुद्ध ही सही।

पद्म — विट्ठलदास किसी तरह राजी नहीं होते। पीछे पड़ जायेंगे।

सुभद्रा — उन्हें बकने दो। संसार के सभी आदमी उनकी तरह थोड़े ही हो जायेंगे।

पंडित पद्मसिंह आज कई वर्षों के विफल उद्योग के बाद म्युनिसिपैलिटी के मेम्बर बनने में सफल हुए थे। इसी के आनंदोत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। वे प्रीतिभोज करना चाहते थे, किंतु मित्र लोग मुजरे पर जोर देते थे। यद्यपि वे स्वयं बड़े आचारवान मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। कुछ तो मुरीबत से, कुछ अपने सरल स्वभाव से और कुछ मित्रों की वृंगोक्ति के भय से वह अपने पक्ष पर अड़ न सकते थे। बाबू विट्ठलदास उनके परम मित्र थे। वह वेश्याओं के नाच-गाने के कट्टर शत्रु थे। इस कुप्रथा को मिटाने के लिए उन्होंने एक सुधारक संस्था स्थापित की थी। पंडित पद्मसिंह उनके इने-गिने अनुयायियों में थे। पंडित जी इसी लिए विट्ठलदास से डरते थे। लेकिन सुभद्रा के बढ़ावा देने से उनका संकोच दूर हो गया।

वह अपने वेश्याभक्त मित्रों से सहमत हो गये। भोली बाई का मुजरा होगा यह बात निश्चित हो गयी।

इसके चार दिन पीछे होली आयी। उसी रात को पद्मसिंह की बैठक ने नृत्यशाला का रूप धारण किया। सुंदर रंगीन कालीनों पर मित्रवृंद बैठे हुए थे और भोली बाई अपने समाजियों के साथ मध्य में बैठी हुई भाव बता-बता कर मधुर स्वर में गा रही थीं। कमरा बिजली की दिव्य बत्तियों से ज्योतिर्मय हो रहा था। इत्र और गुलाब की सुगंधि उड़ रही थी। हास्य-परिहास, आमोद-प्रमोद का बाजार गर्म था।

सुमन और सुभद्रा दोनों झरोखे में चिक की आड़ से यह जलसा देख रही थीं। सुभद्रा को भोली का गाना नीरस, फीका मालूम होता था। उसको आश्चर्य मालूम होता था कि लोग इतने एकाग्रचित्त हो कर क्या सुन रहे हैं? बहुत देर के बाद गीत के शब्द उसकी समझ में आये। शब्द अलंकारों से दब गये थे। सुमन अधिक रसज्ञा थी। वह गाने को समझती थी और ताल स्वर का ज्ञान रखती थी। गीत कान में आते ही उसके स्मरण पट पर अंकित हो जाते थे। भोली बाई ने गाया :—

ऐसी होली में आग लगे
पिया विदेश, मैं द्वारे ठाढ़ी, धीरज कैसे रहे ?
ऐसी होली में आग लगे ।

सुमन ने भी इस पद को धीरे-धीरे गुनगुना कर गाया और अपनी सफलता पर मुग्ध हो गयी। केवल गिटकिरी न भर सकी। लेकिन उसका सारा ध्यान गान पर ही था। वह देखती थी कि सैकड़ों आँखें भोली बाई की ओर लगी हुई हैं। उन नेत्रों में कितनी तृष्णा थी ! कितनी विनम्रता, कितनी उत्सुकता ! उनकी पुत्लियाँ भोली के एक-एक इशारे पर एक-एक भाव पर नाचती थीं, चमकती थीं। जिस

पर उसकी दृष्टि पड़ जाती थी वह आनंद से गद्गद हो जाता और जिससे वह हँस कर दो - एक बातें कर लेती उसे तो मानो कुबेर का धन मिल जाता था। उस भाग्यशाली पुरुष पर सारी सभा की सम्मान दृष्टि पड़ने लगती। उस सभा में एक - से - एक धनवान्, एक - से - एक विद्वान्, एक - से - एक रूपवान् सज्जन उपस्थित थे, किंतु सब - के - सब इस वेश्या के हाव - भाव पर मिटे जाते थे। प्रत्येक मुख इच्छा और लालसा का चित्र बना हुआ था।

सुमन सोचने लगी, इस स्त्री में कौन - सा जादू है !

सौंदर्य ? हाँ, हाँ, वह रूपवती है, इसमें संदेह नहीं। मगर मैं भी तो ऐसी बुरी नहीं हूँ। वह साँवली है, मैं गोरी हूँ। वह मोटी है, मैं दुबली हूँ।

पंडित जी के कमरे में एक बड़ा शीशा था। सुमन इस शीशे के सामने जा कर खड़ी हो गयी और उसमें अपना रूप नख से शीख तक देखा। भोली बाई के अपने हृदयांकित चित्र से अपने एक - एक अंग की तुलना की। तब उसने आ कर सुभद्रा से कहा, बहू जी, एक बात पूछूँ, बुरा न मानना। यह इंद्र की परी क्या मुझसे बहुत सुंदर है ?

सुभद्रा ने उसकी ओर कौतूहल से देखा और मुस्करा कर पूछा, यह क्यों पूछती हो ?

सुमन ने शर्म से सिर झुका कर कहा, कुछ नहीं, यो ही। बतलाओ ?

सुभद्रा ने कहा, उसका सुख का शरीर है, इसलिए कोमल है, लेकिन रंग - रूप में वह तुम्हारे बराबर नहीं।

सुमन ने फिर सोचा, तो क्या उसके बनाव - सिंगार पर, गहने - कपड़े पर लोग इतने रीझे हुए हैं ? मैं भी यदि वैसा बनाव - चुनाव करूँ, वैसे गहने - कपड़े पहनूँ, तो मेरा रंग - रूप और न निखर जायगा, मेरा यौवन और न चमक जायगा ? लेकिन कहाँ मिलेंगे ?

क्या लोग उसके स्वर - लालित्य पर इतने मुग्ध हो रहे हैं ? उसके गले में लोच नहीं, मेरी आवाज उससे बहुत अच्छी है। अगर कोई महीने - भर भी सिखा दे तो मैं उससे अच्छा गाने लगूँ। मैं भी वक्र नेत्रों से देख सकती हूँ। मुझे भी लज्जा से आँखें नीची करके मुस्कराना आता है।

सुमन बहुत देर तक वहाँ बैठी काम से कारण का अनुसंधान करती रही। अंत में वह इस परिणाम पर पहुँची कि वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं। उसकी दूकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड़ है; मेरी दूकान बंद है, इसलिए कोई खड़ा नहीं होता। वह कुत्तों के भूकने की परवाह नहीं करती, मैं लोक - निंदा से डरती हूँ। वह परदे के बाहर है, मैं परदे के अंदर हूँ। वह डालियों पर स्वच्छंदता से चहकती है, मैं उसे पकड़े हुए हूँ। इसी लज्जा ने, इसी उपहास के भय ने मुझे

दूसरे की चेरी बना रक्खा है ।

आधी रात बीत चुकी थी । सभा विसर्जित हुई । लोग अपने - अपने घर गये । सुमन भी अपने घर की ओर चली । चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था । सुमन के हृदय में भी नैराश्य का कुछ ऐसा ही अंधकार था । वह घर जाती तो थी पर बहुत धीरे - धीरे जैसे घोड़ा वम की तरफ जाता है । अभिमान जिस प्रकार नीचता से दूर भागता है उसी प्रकार उसका हृदय उस घर से दूर भागता था ।

गजाधर नियमानुसार नौ बजे घर आया । किवाड़ बंद थे । चकराया कि इस समय सुमन कहाँ गयी ? पड़ोस में एक विधवा दर्जिन रहती थी, जा कर उससे पूछा । मालूम हुआ कि सुभद्रा के घर किसी काम से गयी है । कुंजी मिल गयी, आ कर किवाड़ खोले, खाना तैयार था । वह द्वार पर बैठ कर सुमन की राह देखने लगा । जब दस बज गये तो उसने खाना परोसा लेकिन क्रोध में कुछ खाया न गया । उसने सारी रसोई उठा कर बाहर फेंक दी और भीतर से किवाड़ बंद करके सो रहा । मन में यह निश्चय कर लिया कि आज कितना ही सिर पटके किवाड़ न खोलूंगा, देखे कहाँ जाती है । किंतु उसे बहुत देर तक नींद न आयी । जरा - सी आहट होती तो डंडा लिये किवाड़ के पास आ जाता । उस समय यदि सुमन उसे मिल जाती तो उसकी कुशल न थी । ग्यारह बजने के बाद निद्रा का देव उसे दबा बैठा ।

सुमन जब अपने द्वार पर पहुँची तो उसके कान में एक बजने की आवाज आयी । वह आवाज उसके नस - नस में गूँज उठी । वह अभी तक दस - ग्यारह के घोखे में थी । प्राण सूख गये । उसने किवाड़ की दरारों से झाँका, डेबरी जल रही थी, उसके धुँए से कोठरी भरी हुई थी और गजाधर हाथ में डंडा लिये चित्त पड़ा जोर से खर्राटे ले रहा था । सुमन का हृदय काँप उठा, किवाड़ खटखटाने का साहस न हुआ ।

पर इस समय जाऊँ कहाँ ? पद्मसिंह के घर का दरवाजा भी बंद हो गया होगा, कहाँ सो गये होंगे । बहुत चीखने चिल्लाने पर किवाड़ तो खुल जायेंगे, लेकिन वकील साहब अपने मन में न जाने क्या समझें । नहीं, वहाँ जाना उचित नहीं, क्यों न यहीं बैठी रहूँ । एक बज ही गया है, तीन - चार घंटे में सबेरा हो जायगा । यह सोच कर वह बैठ गयी, किंतु यह धड़का लगा हुआ था कि कोई मुझे इस तरह यहाँ बैठे देख ले तो क्या हो ? समझेगा कि चोर है, घात में बैठा है । सुमन वास्तव में अपने ही घर में चोर बनी हुई थी ।

फागुन में रात को ठंडी हवा चलती है । सुमन की देह पर एक फटी हुई रेशमी कुरती थी । हवा तीर के समान उसकी हड्डियों में चुभो जाती थी । हाथ-पाँव अकड़ रहे थे । उस पर नीचे की नाली से ऐसी दुर्गंध उठ रही थी कि साँस लेना

कठिन था। चारों ओर तिमिर मेघ छाया हुआ था। केवल भोली बाई के कोठे पर से प्रकाश की रेखाएँ अंधेरी गली की तरफ दया की स्नेह-रहित दृष्टि से ताक रही थीं।

सुमन ने सोचा, मैं कैसी हतभागिनी हूँ। एक वह स्त्रियाँ हैं जो आराम से तकिये लगाये सो रही हैं, लौड़ियाँ पेर दबाती हैं। एक मैं हूँ कि यहाँ बैठी हुई अपने नसीब को रो रही हूँ। मैं यह सब दुःख क्यों झेलती हूँ? एक भोपड़ी में टूटी खाट पर सोती हूँ, रूखी रोटियाँ खाती हूँ, नित्य घुड़कियाँ सुनती हूँ, क्यों? मर्यादा-पालन के लिए ही न? लेकिन संसार मेरे इस मर्यादा-पालन को क्या समझता है? उसकी दृष्टि में इसका क्या मूल्य है? क्या यह मुझसे छिपा हुआ है? दशहरे के मेले में, मोहरम के मेले में, फूल बाग में, मंदिरों में, सभी जगह तो देख रही हूँ। आज तक मैं समझती थी कि कुचरित्र लोग ही इन रमणियों पर जान देते हैं, किंतु आज मालूम हुआ कि उनकी पहुँच सुचरित्र और सदाचारशील पुरुषों में भी कम नहीं है। वकील साहब कितने सज्जन आदमी हैं लेकिन आज वह भोली बाई पर कैसे लट्टू हो रहे थे।

इस तरह सोचने हुए वह उठी कि किवाड़ खटखटाऊँ, जो कुछ होना है हो जाय। ऐसा कौन-सा सुख भोग रही हूँ जिसके लिए यह आपत्ति सहूँ? यह मुझे कौन सोने के कौर खिला देते हैं, कौन फूलों की सेज पर सुला देते हैं? दिन-भर छाती फाड़ कर काम करती हूँ, तब रोटी खाती हूँ। उस पर यह बौंस! लेकिन गजाघर के डबे को देखते ही फिर छाती दहल गयी। पशुबल ने मनुष्य को परास्त कर दिया। अकस्मात् सुमन ने दो कान्स्टेबलो को कंधे पर लट्टू रखे आते देखा। अबकाश में वह बहुत भ्रमंकर देख पड़ते थे। सुमन का रक्त सूख गया, कहीं छिपने की जगह न थी। सोचने लगी कि यदि बैठी रहूँ तो यह सब अवश्य ही कुछ पूछेंगे, तो क्या उत्तर दूँगी। वह झपट कर उठी और किवाड़ खटखटाया। चिल्ला कर बोली, दो घड़ी से चिल्ला रही हूँ, सुनते ही नहीं।

गजाघर चौंका। पहली नींद पूरी हो चुकी थी। उठ कर किवाड़ खोल दिये। आवाज में कुछ भय था, कुछ घबराहट। सुमन ने कृत्रिम क्रोध के स्वर में कहा, बाहुरे सोनेवाले। घोड़े बेच कर सोये हो क्या? दो घड़ी से खड़ी चिल्ला रही हूँ, मिनकते ही नहीं। ठंड के मारे हाथ-पाँव अकड़ गये।

गजाघर निःशंक हो कर बोला, मुझसे उड़ो मत, बताओ सारी रात कहाँ रहें?

सुमन निभंय हो कर बोली, कैसी रात; नौ बजे सुभद्रा देवी के घर गयी थी। दावत थी, बुलावा आया था। दस बजे उनके यहाँ से लौट आयी। दो घंटे से तुम्हारे द्वार पर खड़ी चिल्ला रही हूँ। बारह बजे होंगे, तुम्हें अपनी नींद में कुछ

सुध भी रहती है ।

गजाधर — तुम दस बजे आयी थी ?

सुमन ने दृढता से कहा, हाँ - हाँ, दस बजे ।

गजाधर — बिल्कुल झूठ है, बारह का घंटा अपने कानों से सुन कर सोया हूँ ।

सुमन — सुना होगा, नींद में सिर - पैर की खबर ही नहीं रहती, घंटे गिनने बैठे थे !

गजाधर — अब यह धोंधली एक न चलेगी, साफ - साफ बताओ, तुम अब तक कहाँ रहों ? मैं तुम्हारा रंग आजकल देख रहा हूँ । अंधा नहीं हूँ । मैंने भी त्रियाचरित्र पढ़ा है । ठीक - ठीक बता दो, नहीं तो आज जो कुछ होना है हो जायगा ।

सुमन — एक बार तो कह दिया कि मैं दस - ग्यारह बजे यहाँ आ गयी । अगर तुम्हें विश्वास नहीं आता, न आवे । जो गहने गढ़ाते हो मत गड़ाना । रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी । जब देखो म्यान में तलवार बाहर ही रहती है, न जाने किस बिरते पर ।

यह कहते - कहते सुमन चौक गयी । उसे ज्ञात हुआ कि मैं सीमा से बाहर हुई जाती हूँ । अभी द्वार पर बैठी हुई उसने जो - जो बातें सँची थीं और मन में जो बातें स्थिर की थी, वह सब उसे विस्मृत हो गयीं । लोकाचार और हृदय में जमे हुए विचार हमारे जीवन में आकस्मिक परिवर्तन नहीं होने देते ।

गजाधर सुमन की यह कठोर बातें सुन कर सन्नाटे में आ गया । यह पहला ही अवसर था कि सुमन यों उसके मुँह आयी थी । क्रोधोन्मत्त हो कर बोला, क्या तू चाहती है कि जो कुछ तेरा जी चाहे किया करे और मैं चूँ न करूँ । तू सारी रात न जाने कहाँ रही, अब जो पूछता हूँ तो कहती है, मुझे तुम्हारी परवा नहीं है, तुम मुझे क्या कर देते हो ? मुझे मालूम हो गया है कि शहर का पानी तुझे भी लगा, तूने भी अपनी सहेलियों का रंग पकड़ा । बस, अब मेरे साथ तेरा निर्वाह न होगा । कितना समझाता रहा कि इन चुड़ैलों के साथ न बैठ, मेले - ठेले मत जा, लेकिन तूने न सुना — न सुना । मुझे तू जब तक बता न देगी कि तू सारी रात कहाँ रही, तब तक मैं तुझे घर में पैठने न दूँगा । न बतायेगी तो समझ ले कि आज से तू मेरी कोई नहीं, तेरा जहाँ जी चाहे जा, जो मन में आवे कर ।

सुमन ने कातर भाव से कहा, वकील साहब के घर को छोड़ कर मैं और कहीं नहीं गयी ; तुम्हें विश्वास न हो तो आप जा कर पूछ लो । वहीं चाहे जितनी देर लगी हो । गाना हो रहा था, सुभद्रा देवी ने आने नहीं दिया ।

गजाधर ने लांछनायुक्त शब्दों में कहा, अच्छा, तो अब वकील साहब से मन

मिला है, यह कहो, फिर भला मजूर की परवाह क्यों होने लगी ?

इस लाञ्छना ने सुमन के हृदय पर कुठाराघात का काम किया। झूठा इल-जाम कभी नहीं सहा जाता। वह सरोष हो कर बोली, कैसी बातें मुंह से निकालते हो, हकनाहक एक भलेमानस को बदनाम करते हो। मुझे आज देर हो गयी है। मुझे जो चाहो कहो, मारो, पीटो; वकील साहब को क्यों बीच में घसीटते हो ? वह बेचारे तो जब तक मैं घर में रहती हूँ, अंदर कदम नहीं रखते।

गजाधर बोला, चल छोकरी, मुझे न चरा, ऐसे-ऐसे कितने भले आदमियों को देख चुका हूँ। वह देवता हैं, उन्हीं के पास जा। यह झोपड़ी तेरे रहने योग्य नहीं है। तेरे हीसले बढ़ रहे हैं। अब तेरा गुजर यहाँ न होगा।

सुमन देखती थी कि बात बढ़ती जाती है। यदि उसकी बातें किसी तरह लौट सकतीं तो उन्हें लौटा लेती, किन्तु निकला हुआ तीर कहाँ लौटता है ? सुमन रोने लगी और बोली — मेरी आँखें फूट जायँ, अगर मैंने उनकी तरफ ताका भी हो। मेरी जीभ गिर जाय, अगर मैंने उनसे एक बात की हो। जरा मन बहलाने सुभद्रा के पास चनी जाती हूँ। अब मना करते हो न जाऊँगी।

मन में जब एक बार भ्रम का प्रवेश हो जाता है तो उसका निकलना कठिन हो जाता है। गजाधर ने समझा कि सुमन इस समय केवल मेरा क्रोध शांत करने के लिए यह नम्रता दिखा रही है। कटुतापूर्ण स्वर से बोला, नहीं, जाओगी क्यों नहीं। वहाँ ऊँची अटारी सेर को मिलेगी, पक्वान खाने को मिलेंगे, फूनों की सेज पर सोओगी, नित्य राग-रंग की धूम रहेगी।

व्यंग और क्रोध में आग और तेल का संबंध है। व्यंग हृदय को इस प्रकार विदीर्ण कर देता है जैसे छेनी बर्फ के टुकड़े को। सुमन क्रोध से विह्वल हो कर बोली, अच्छा तो जबान सँभालो, बहुत हो चुका। घटे-भर से मुंह में जो अनाप-शनाप आता है बकते जाते हो। मैं तरह देनी जाती हूँ, उसका यह फल है। मुझे कोई कुलटा समझ लिया है ?

गजाधर — मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।

सुमन — तुम मुझे मिथ्या पाप लगाते हो, ईश्वर तुमसे समझेंगे।

गजाधर — चली जा मेरे घर से राँड़, कोसती है।

सुमन — हाँ, यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते। मेरे सिर पाप क्यों लगाते हो ? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो ? जहाँ मजूरी कलेंगी वहाँ पेट पाल लूँगी।

गजाधर — जाती है कि खड़ी गालियाँ देती है ?

सुमन जैसी सगर्वा स्त्री इस अपमान को सह न सकी। घर से निकालने की धमकी भर्मेकर इरादों को पूरा कर देती है।

सुमन बोली, अच्छा लो, जाती हूँ।

यह कह कर उसने दरवाजे की तरफ एक कदम बढ़ाया, किंतु अभी उसने जाने का निश्चय नहीं किया था ।

गजाधर एक मिनट तक कुछ सोचता रहा, फिर बोला, अपने गहने - कपड़े लेती जा, यहाँ कोई काम नहीं है ।

इस वाक्य ने टिमटिमाते हुए आशारूपी दीपक को बुझा दिया । सुमन को विश्वास हो गया कि अब यह घर हमसे छूटा । रोती हुई बोली, मैं ले कर क्या करूँगी ।

सुमन ने संदूकची उठा ली और द्वार से निकल आयी, अभी तक उसकी आस नहीं टूटी थी । वह समझती थी कि गजाधर अब भी मनाने आवेगा इसलिए वह दरवाजे के सामने सड़क पर चुपचाप खड़ी रही । रोते - रोते उसका आँचल भीग गया था । एकाएक गजाधर ने दोनों किबाड़ जोर से बंद कर लिये । वह मानो सुमन की आशा का द्वार था जो सदैव के लिए उसकी ओर से बंद हो गया । सोचने लगी, कहाँ जाऊँ ? उसे अब ग्लानि और पश्चात्ताप के बदले गजाधर पर क्रोध आ रहा था । उसने अपनी समझ में ऐसा कोई काम नहीं किया था, जिसका ऐसा कठोर दंड मिलना चाहिए था । उसे घर आने में देर हो गयी थी इसके लिए दो - चार घुड़-कियाँ बहुत थी । यह निर्वासन उसे घोर अन्याय प्रतीत होता था । उसने गजाधर को मनाने के लिए क्या नहीं किया ? विनती की, खुशामद की, रोयी, किंतु उसने सुमन का अपमान ही नहीं किया, उसपर मिथ्या दोषारोपण भी किया । इस समय यदि गजाधर मनाने भी आता तो सुमन राजी न होती । उसने चलते - चलते कहा था, जाओ अब मुँह मत दिखाना । यह शब्द उसके कलेजे में चुभ गये थे । मैं ऐसी गयी बीती हूँ कि अब वह मेरा मुँह भी देखना नहीं चाहते, तो फिर क्यों उन्हें मुँह दिखाऊँ ? क्या संसार में सब स्त्रियों के पति होते हैं ? क्या अनाथाएँ नहीं हैं ? मैं भी अब अनाथ हूँ । वसंत के समीर और ग्रीष्म की लू में कितना अंतर है । एक सुखद और प्राण - पोषक, दूसरी अग्निमय और विनाशिनी । प्रेम वसंत - समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू । जिस पुष्प को वसंत - समीर महीनों में खिलाती है, उसे लू का एक झोंका जला कर राख कर देता है । सुमन के घर से थोड़ी दूर पर एक खाली बरामदा था । वहाँ जा कर उसने संदूकची सिरहाने रखी और लेट गयी । तीन बज चुके थे । दो घंटे उसने यह सोचने में काटे कि कहाँ जाऊँ ? उसकी सहचरियों में हिरिया नाम की एक दुष्ट स्त्री थी, वहाँ आश्रय मिल सकता था, किंतु सुमन उधर नहीं गयी । आत्म - सम्मान का कुछ अंश अभी बाकी था । अब वह एक प्रकार से स्वच्छंद थी और उन दुष्कामनाओं को पूर्ण कर सकती थी जिनके लिए उसका मन बरसों से लाला - यित हो रहा था । अब उस सुखमय जीवन के मार्ग में कोई बाधा न थी । लेकिन जिस प्रकार बालक किसी गाय या बकरी को दूर से देख कर प्रसन्न होता है, पर

उसके निकट आते ही भय से मुँह छिपा लेता है, उसी प्रकार सुमन अभिलाषाओं के द्वार पर पहुँच कर भी भीतर प्रवेश न कर सकी। लज्जा, खेद, घृणा, अपमान ने मिल कर उसके पैरों में वेड़ी - सी डाल दी। उसने निश्चय किया, कि सुभद्रा के घर चली, वहीं खाना पका दिया कलूंगी, सेवा टहल कलूंगी और पड़ी रहूंगी। आगे ईश्वर मालिक है।

उसने संदूकची आँचल में छिपा ली और पंडित पद्मसिंह के घर आ पहुँची। कई मुक्किल हाथ - मुँह धो रहे थे। कोई आसन बिछाये ध्यान करता था और सोचता था, कहीं मेरे गवाह न बिगड़ जायें। कोई माला फेरता था, मगर उसके दानों से उन रुपयों का हिसाब लगा रहा था जो आज उसे व्यय करने पड़ेंगे। मेहतर खड़ा रात की पूड़ियाँ समेट रहा था। सुमन को भीतर जाते हुए कुछ संकोच हुआ लेकिन जीतन कहार को आते देख कर वह शीघ्रता से अंदर चली गयी। सुभद्रा ने आश्चर्य से पूछा — घर से इतने सबेरे कैसे चलीं ?

सुमन ने कुंठित स्वर से कहा, घर से निकाल दी गयी हूँ।

सुभद्रा — अरे ! यह किस बात पर ?

सुमन — यही कि रात मुझे यहाँ से जाने में देर हो गयी।

सुभद्रा — इस जरा - सी बात का इतना बतंगड़। देखो, मैं उन्हें बुलवाती हूँ। विचित्र मनुष्य हैं।

सुमन — नहीं, नहीं, उन्हें न बुलाना, मैं रो-धो कर हार गयी। लेकिन उस निर्दयी को तनिक भी दया न आयी। मेरा हाथ पकड़ कर घर से निकाल दिया। उसे घमंड है कि मैं ही इसे पालता हूँ। मैं उसका यह घमंड तोड़ दूंगी।

सुभद्रा — चलो, ऐसी बातें न करो, मैं उन्हें बुलवाती हूँ।

सुमन — मैं अब उसका मुँह नहीं देखना चाहती।

सुभद्रा — तो क्या ऐसा बिगाड़ हो गया है !

सुमन — हाँ, अब ऐसा ही है। अब उससे मेरा कोई नाता नहीं।

सुभद्रा ने सोचा, अभी क्रोध में कुछ न सूझेगा, दो - एक रोज में शांत हो जायगी। बोली, अच्छा मुँह - हाथ तो धो डालो, आँखें चंदी हुई हैं, मालूम होता है, रात - भर सोयी नहीं हो। कुछ देर सो लो, फिर बातें होंगी।

सुमन — आराम से सोना ही लिखा होता तो क्या ऐसे कुपात्र से पाला पड़ता। अब तो तुम्हारी शरण आयी हूँ। शरण दोगी तो रहूंगी, नहीं, कहीं मुँह में कालिख लगा कर डूब मलूंगी। मुझे एक कोने में थोड़ी - सी जगह दे दो, वहीं पड़ी रहूंगी। अपने से जो कुछ हो सकेगा, तुम्हारी सेवा - टहल कर दिया कलूंगी।

जब पंडित जी भीतर आये तो सुभद्रा ने सारी कथा उनसे कही। पंडित जी बड़ी चिंता में पड़े। एक अपरिचित स्त्री को उसके पति से पूछे बिना अपने घर

मे रखना अनुचित मालूम हुआ। निश्चय किया कि चल कर गजाधर को बुलवाऊँ और समझा कर उसका क्रोध शांत कर दूँ। इस स्त्री का यहाँ से चला जाना ही अच्छा है।

उन्होंने बाहर आ कर तुरंत गजाधर के बुलाने को आदमी भेजा, लेकिन वह घर पर न मिला। कचहरी से आ कर पंडित जी ने फिर गजाधर को बुलवाया, लेकिन फिर वही हाल हुआ।

उधर गजाधर को ज्यों ही मालूम हुआ कि सुमन पद्मसिंह के घर गयी है, उसका संदेह पूरा हो गया। वह घूम - घूम कर शर्मा जी को बदनाम करने लगा। पहले विठ्ठलदास के पास गया। उन्होंने उसकी कथा को वेद - वाक्य समझा। यह देश का सेवक और सामाजिक अत्याचारों का शत्रु — उदारता और अनुदारता का विलक्षण संयोग था। उसके विश्वासोद्दय मे सारे जगत् के प्रति सहानुभूति थी, किंतु अपने वादी के प्रति लेशमात्र भी सहानुभूति न थी। वैमनस्य में अथ - विश्वास की चेष्टा होती है। जब से पद्मसिंह ने मुजरे का प्रस्ताव किया था विठ्ठलदास को उनसे द्वेष हो गया था। वे यह समाचार सुनते ही फूले न समाये। शर्मा जी के मित्र और सहयोगियों के पास जा - जा कर इनकी सूचना दे आये। लोगों से कहते, देखा आपने ! मे कहता न था कि यह जलसा अवश्य रंग लायेगा। एक ब्राह्मणी को उसके घर से निकाल कर अपने घर में रख लिया। वेचारा पति चारों ओर रोता फिरता है। यह है उच्च शिक्षा का आदर्श ! मे तो ब्राह्मणी को उनके यहाँ देखते ही भाँप गया था कि दाल मे कुछ काला है। लेकिन यह न समझता था कि अंदर - ही - अंदर यह खिचड़ी पक रही है।

आश्चर्य तो यह था कि जो लोग शर्मा जी के स्वभाव से भली - भाँति परिचित थे उन्होंने भी इस पर विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीतन किसी काम से बाजार गया। चारों तरफ यही चर्चा सुनी। दूकानदार पूछते थे, क्यों जीतन, नयी मालकिन के क्या रँग - ढँग है ? जीतन यह आलोचनापूर्ण बातें सुन कर घबराया हुआ आया और बोला, भैया, बहू जी ने जो गजाधर की दुलहिन को घर मे ठहरा लिया है, इस पर बाजार मे बड़ी बदनामी हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि यह गजाधर से लड़ कर आयी है।

वकील साहब ने यह हाल सुना तो सन्नाटे में आ गये। कचहरी जाने के लिए अचकन पहन रहे थे, एक हाथ आस्तीन मे था, दूसरा बाहर। कपड़े पहनने की भी सृधि न रही। उन्हें जिस बात का भय था वह हो ही गयी। अब उन्हें गजाधर की लापरवाही का मर्म ज्ञात हुआ। मूर्तिवत् खड़े सोचते रहे कि क्या करूँ ? इसके सिवा और कौन - सा उपाय है कि उसे घर से निकाल दूँ। उस पर जो बीतनी हो बीते, मेरा क्या बश है ? किसी तरह बदनामी से तो बचूँ। सुभद्रा पर जी में झुंझलाये। इसे क्या

पड़ी थी कि उसे अपने घर में ठहराया। मुझसे पूछा तक नहीं। उसे तो घर में बैठे रहना है, दूसरों के सामने आँखें तो मेरी नीची होंगी। मगर यहाँ से निकाल दूँगा तो बेचारी जायगी कहाँ ? यहाँ तो उसका कोई ठिकाना नहीं मालूम होता। गजाधर अब उसे शायद अपने घर में न रखेगा। आज दूसरा दिन है, उसने खबर तक नहीं ली। इससे तो यह विदित होता है कि उसने उसे छोड़ने का निश्चय कर लिया। दिल में मुझे दयाहीन और क्रूर समझेगी। लेकिन बदनामी से बचने का यही एकमात्र उपाय है। इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। यह विवेचना करके वह जीतन से बोले, तुमने अब तक मुझसे क्यों नहीं कहा ?

जीतन — सरकार, मुझे आज ही तो मालूम हुआ है, नहीं तो जान लो भैया, मैं बिना कहे नहीं रहता।

शर्मा जी — अच्छा, तो घर में जाओ और सुमन से कहो कि तुम्हारे यहाँ रहने से उनकी बदनामी हो रही है। जिस तरह बन पड़े आज ही यहाँ से चली जाय। जरा आदमी की तरह बोलना, लाठी मत मारना। खूब समझा कर कहना कि उनका कोई वश नहीं है।

जीतन बहुत प्रसन्न हुआ। उसे सुमन से बड़ी चिढ़ थी, जो नौकरों को उन छोटे मनुष्यों से होती है, जो उनके स्वामी के मुँह लगे होते हैं। सुमन की चाल उसे अच्छी नहीं लगती थी। बुढ़े लोग साधारण बनाव - सिंगार को भी संदेह की दृष्टि से देखते हैं। वह गँवार था। काले को काला कहता था, उजले को उजला, काले को उजला कहने का ढंग उसे न आता था। यद्यपि शर्मा जी ने समझा दिया था कि सावधानी से बातचीत करना, किंतु उसने जाते - ही - जाते सुमन का नाम ले कर जोर से पुकारा। सुमन शर्मा जी के लिए पान लगा रही थी। जीतन की आवाज सुन कर चौक पड़ी और कातर नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगी।

जीतन ने कहा, ताकती क्या हो, वकील साहब का हुक्म है कि आज ही यहाँ से चली जाओ। सारे देश - भर में बदनाम कर दिया। तुमको लाज नहीं है, उनको तो नाम की लाज है। बाँड़ा आप गये, चार हाथ की पगहिया भी लेते गये।

सुभद्रा के कान में भनक पड़ी, आ कर बोली, क्या है जीतन, क्या कह रहे हो ?

जीतन — कुछ नहीं, सरकार का हुक्म है कि यह अभी यहाँ से चली जायें। देश भर में बदनामी हो रही है।

सुभद्रा — तुम जा कर जरा उन्हीं को यहाँ भेज दो।

सुमन की आँखों में आँसू भरे थे। खड़ी हो कर बोली, नहीं बहू जी, उन्हें क्यों बुलाती हो ? कोई किसी के घर में जबदस्ती थोड़े ही रहता है। मैं अभी चली जाती हूँ। अब इस चौखट के भीतर फिर पाँव न रखूँगी। विपत्ति में हमारी मनो - वृत्तियाँ बड़ी प्रबल हो जाती हैं। उस समय बेमुरौती घोर अन्याय प्रतीत होती है

और सहानुभूति असीम कृपा । सुमन को शर्मा जी से ऐसी आशा न थी । उस स्वा-
धीनता के साथ जो आपत्तिकाल में हृदय पर अधिकार पा जाती है उसने शर्मा जी
को दुरात्मा, भीरु, दयाशून्य तथा नीच ठहराया । तुम आज अपनी बदनामी को
डरते हो, तुमको इज्जत बड़ी प्यारी है । अभी कल एक वेश्या के साथ बैठे हुए
फूले न समाते थे, उसके पैरों तले आंख बिछाते थे, तब इज्जत न जाती थी ! आज
तुम्हारी इज्जत में बढ़ा लगा जाता है ।

उसने सावधानी से संदूकची उठा ली और सुभद्रा को प्रणाम करके घर से
चली गयी ।

७

दरवाजे पर आ कर सुमन सोचने लगी कि अब कहाँ जाऊँ । गजावर की
निर्दयता से भी उसे इतना दुःख न हुआ था जितना इस समय हो रहा था । उसे
अब मालूम हुआ कि मैने अपने घर से निकल कर बड़ी भूल की । मैं सुभद्रा के वल
पर क्रुद्ध रही थी । मैं इन पंडित जी को कितना भला आदमी समझती थी । पर अब
मालूम हुआ कि यह भी रेंगे हुए सियार है । अपने घर के सिवा अब मेरा कहीं
ठिकाना नहीं है । मुझे दूसरों की चिरौरी करने की जरूरत ही क्या ? क्या मेरा घर
नहीं था ? क्या मैं इनके घर जन्म काटने आयी थी ? दो - चार दिन में जब उनका
क्रोध शांत हो जाता, आप ही चली जाती । ओह ! नारायण, क्रोध में बुद्धि कैसी
भ्रष्ट हो जाती है । मुझे इनके घर में भूल कर भी न आना चाहिए था, मैने अपने
पाँव मे आप ही कुल्हाड़ी मारी । वह अपने मन में न जाने क्या समझते होंगे ।

यह सोचते हुए सुमन आगे चली, पर थोड़ी दूर चल कर उसके विचारो ने
फिर पलटा खाया । मैं कहाँ जा रही हूँ ? वह अब मुझे कदापि घर मे न घुसने
देगे । मैने कितनी बिनती की, पर उन्होंने एक न सुनी । जब केवल रात को कई
घटे की देर हो जाने से उन्हें इतना संदेह हो गया तो अब मुझे पूरे चौबीस घटे हो
चुके है और मैं शामत की मारी वहीं आयी जहाँ मुझे न आना चाहिए था । वह तो
अब मुझे दूर ही से दुत्कार देंगे । यह दुत्कार क्यों सही ? मुझे कहीं रहने का स्थान
चाहिए । खाने भर को किसी - न - किसी तरह कमा लूँगी । कपड़े भी सीऊँगी तो
खाने - भर को मिल जायगा, फिर किसी की घीस क्यों सही ? इनके यहाँ मुझे कौन -
सा सुख था ? व्यर्थ मे एक बेड़ी पैरों में पड़ी हुई थी । और लोक - लाज से वह मुझे
रख भी लें तो उठते - बैठते ताने दिया करेंगे । बस, चल कर एक मकान ठीक कर
लूँ । भोली क्या मेरे साथ इतना भी सलूक न करेगी ? वह मुझे अपने घर बार - बार
बुलाती थी, क्या इतनी भी दया न करेगी ?

अमोला चली जाऊँ तो कैसा हो ? लेकिन वहाँ पर कौन बैठा हुआ है । अम्माँ मर गयीं । शाता है । उसी का निर्वाह होना कठिन है, मुझे कौन पूछनेवाला है । मामी जीने न देंगी । छेद - छेद कर मार डालेंगी । चलूँ भोली से कहूँ, देखूँ क्या कहती है । कुछ न हुआ तो गंगा तो कहीं नहीं गयी है ? यह निश्चय करके सुमन भोली के घर चली । इधर - उधर ताकती जाती थी कि कहीं गजाधर न आता हो ।

भोली के द्वार पर पहुँच कर सुमन ने सोचा, इसके यहाँ क्यों जाऊँ ? किसी पड़ोसिन के घर जाने से काम न चलेगा ? इतने में भोली ने उसे देखा और इशारे से ऊपर बुलाया । सुमन ऊपर चली गयी ।

भोली का कमरा देख कर सुमन की आँखें खुल गयीं । एक वार वह पहले भी आयी थी, लेकिन नीचे के आँगन से ही लौट गयी थी । कमरा फर्श, मसनद, चित्रों और शीशे के सामानों से सजा हुआ था । एक छोटी - सी चौकी पर चाँदी का पानदान रखा हुआ था । दूसरी चौकी पर चाँदी की तश्तरी और चाँदी का एक ग्लास रखा हुआ था । सुमन यह सामान देख कर दंग रह गयी ।

भोली ने पूछा, आज यह संदूकची लिये इधर कहाँ से आ रही थी ?

सुमन — यह रामकहानी फिर कहूँगी, इस समय तुम मेरे ऊपर इतनी कृपा करो कि मेरे लिए कहीं अलग एक छोटा - सा मकान ठीक करा दो । मैं उसमें रहना चाहती हूँ ।

भोली ने विस्मित हो कर कहा, यह क्यों, क्या शौहर से लड़ाई हो गयी है ?

सुमन — नहीं, लड़ाई की क्या बात है ? अपना जी ही तो है ।

भोली — जरा मेरे सामने तो ताको । हाँ, चेहरा साफ कह रहा है । क्या बात हुई ?

सुमन — सच कहती हूँ कोई बात नहीं है । अगर अपने रहने से किसी को कोई तकलीफ हो तो क्यों रहे ।

भोली — अरे तो मुझसे साफ - साफ कहती क्यों नहीं, किस बात पर बिगड़े है ?

सुमन — बिगड़ने की बात नहीं है । जब बिगड़ ही गये तो क्या रह गया ?

भोली — तुम लाख छिपाओ, मैं ताड़ गयी सुमन, बुरा न मानो तो कह दूँ । मैं जानती थी कि कभी - न - कभी तुमसे खटकेगी जरूर । एक गाड़ी में कहीं अरबी घोड़ी और लहू टट्टू जुत सकते हैं ? तुम्हें तो किसी घर की रानी बनना चाहिए था । मगर पाले पड़ी एक खूसट के जो तुम्हारा पैर धोने लायक भी नहीं । तुम्हीं हो कि यों निबाह रही हो, दूसरी होती तो ऐसे मियाँ पर लात मार कर कभी की चली गयी होती । अगर अल्लाहताला ने तुम्हारी शक्ल - सूरत मुझे दी होती तो मैंने अब तक सोने की दीवार खड़ी कर ली होती, मगर मालूम नहीं, तुम्हारी तबीयत कैसी है । तुमने शायद अच्छी तालीम नहीं पायी ।

सुमन — मैं दो साल तक एक ईसाई लेडी से पढ़ चुकी हूँ ।

भोली — दो - तीन साल की और कसर रह गयी । इतने दिन और पढ़ लेती तो फिर यह ताक न लगी रहती । मालूम हो जाता कि हमारी जिंदगी का क्या मकसद है, हमें जिंदगी का लुत्फ कैसे उठाना चाहिए । हम कोई भेड़ - बकरी तो है नहीं कि माँ - बाप जिसके गले मढ़ दें बस उसी की हो रहे । अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता ? यह बेहूदा रिवाज यहीं के लोगों में है कि औरत को इतना जलील समझते हैं ; नहीं तो और सब मुल्कों में औरतें आजाद हैं, अपनी पसंद से शादी करती हैं और जब उससे रास नहीं आती तो तलाक दे देती हैं । लेकिन हम सब वही पुरानी लकीर पीटे चली जा रही हैं ।

सुमन ने सोच कर कहा, क्या करूँ बहन, लोक - लाज का डर है, नहीं तो आराम से रहना किसे बुरा मालूम होता है ?

भोली — यह सब उसी जिहालत का नतीजा है । मेरे माँ - बाप ने भी मुझे एक बूढ़े मियाँ के गले बाँध दिया था । उसके यहाँ दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी । मैंने किसी तरह छह महीने तो काटे, आखिर निकल खड़ी हुई । जिंदगी जैसी नियामत रो - रो कर दिन काटने के लिए नहीं दी गयी है । जिंदगी का कुछ मजा ही न मिला तो उससे फायदा ही क्या ? पहले मुझे भी डर लगता था कि बड़ी बदनामी होगी, लोग मुझे जलील समझेंगे, लेकिन घर से निकलने की देरी थी, फिर तो मेरा वह रंग जमा कि अच्छे - अच्छे खुशामदें करने लगे । गाना मैंने घर पर ही सीखा था, कुछ और सीख लिया, बस सारे शहर में धूम मच गयी । आज यहाँ कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पंडित ऐसा है जो मेरे तलुवे सहलाने में अपनी इज्जत न समझे ? मंदिरों में, ठाकुरद्वारे में मेरे मुजरे होते हैं । लोग मित्रों करके ले जाते हैं । इसे मैं अपनी बेइज्जती कैसे समझूँ ? अभी एक आदमी भेज दूँ तो तुम्हारे कृष्णमंदिर के महंत जी दौड़े चले आवें । अगर कोई इसे बेइज्जती समझे तो समझा करे ।

सुमन — भला यह गाना कितने दिन में आ जायगा ?

भोली — तुम्हें छह महीने में आ जायगा ! यहाँ गाने को कौन पूछता है, ध्रुपद और तिल्लाने की जरूरत ही नहीं । बस चलती हुई गजलों की धूम है, दो - चार ठुमरियाँ और कुछ थियेटर के गाने आ जायें और बस फिर तुम्हीं तुम हो । यहाँ तो अच्छी सूरत और मजेदार बातें चाहिए, सो खुदा ने यह दोनों बातें तुम में कूट - कूट कर भर दी है । मैं कसम खा कर कहती हूँ । सुमन, तुम एक बार इस लोहे की जंजीर को तोड़ दो, फिर देखो लोग कैसे दीवानों की तरह दौड़ते हैं ।

सुमन ने चिंतित भाव से कहा, यही बुरा मालूम होता है कि.....

भोली — हाँ - हाँ, कहो, यही कहना चाहती हो न कि ऐरे - गैरे सबसे बेशरमी करनी पड़ती है। शुरू मे मुझे भी यही झिझक होती थी। मगर बाद को मालूम हुआ कि यह ख्याल - ही - ख्याल है। यहाँ ऐरे - गैरों के आने की हिम्मत ही नहीं होती। यहाँ तो सिर्फ रईस लोग आते हैं। बस, उन्हें फँसाये रखना चाहिए। अगर शरीफ है तब तो तबियत आप - ही - आप उससे मिल जाती है। और बेशरमी का ध्यान भी नहीं होना, लेकिन अगर उससे अपनी तबीयत न मिले तो उसे बातों में लगाये रहो, जहाँ तक उसे नोचते - खसोटते बने, नोचो - खसोटो। आखिर को वह परेशान हो कर खुद ही चला जायगा, उसके दूसरे भाई और आ फँसेंगे। फिर पहले - पहल तो झिझक होती ही है, क्या शौहर से नहीं होती? जिस तरह धीरे - धीरे उसके साथ झिझक दूर होती है, उसी तरह यहाँ होता है।

सुमन ने मुस्करा कर कहा, तुम मेरे लिए एक मकान तो ठीक कर दो।

भोली ने ताड़ लिया कि मछली चारा कुतरने लगी, अब शिस्त को कड़ा करने की जरूरत है। बोली, तुम्हारे लिए यही घर हाजिर है। आराम से रहो।

सुमन — तुम्हारे साथ न रहूँगी।

भोली — बदनाम हो जाओगी, क्यों?

सुमन — (झेंप कर) नहीं, यह बात नहीं है।

भोली — खानदान की नाक कट जायगी?

सुमन — तुम तो हँसी उड़ाती हो।

भोली — फिर क्या, पंडित गजाधर प्रसाद पांडे नाराज हो जायेंगे?

सुमन — अब मे तुमसे क्या कहूँ?

सुमन के पास यद्यपि भोली को जवाब देने के लिए कोई दलील न थी, भोली ने उसकी शंकाओं का मनाक उड़ा कर उन्हें पहले से ही निबल कर दिया था। यद्यपि अधर्म और दुराचार से मनुष्य को जो स्वाभाविक घृणा होती है वह उसके हृदय को डारवाँडोल कर रही थी। वह इस समय अपने भावों को शब्दों में न कह सकती थी। उसकी दशा उस मनुष्य की - सी थी जो किसी बाग में पके फल देख कर ललचता है, पर माली के न रहते हुए भी उन्हें तोड़ नहीं सकता।

इतने मे भोली ने कहा, तो कितने किराये तक का मकान चाहती हो, मैं अभी अपनी मामा को बुला कर ताकीद कर दूँ।

सुमन — यहीं दो - तीन रुपये।

भोली — और क्या करोगी?

सुमन — सिलाई का काम कर सकती हूँ।

भोली — और अकेली ही रहोगी?

सुमन — हाँ और कौन है ?

भोली — कैसी बच्चों की - सी बातें कर रही हो । अरी पगली, आँखों से देख कर अंधी बनती है । भला अकेले घर में एक दिन तेरा निबाह होगा ? दिन - दहाड़े आबरू लुट जायगी । इससे तो हजार दर्जे यही अच्छा है कि अपने शौहर ही के पास चली जाओ ।

सुमन — उसकी तो सूरत देखने को जी नहीं चाहता । अब तुमसे क्या छिपाऊँ, अभी परसों वकील साहब के यहाँ तुम्हारा मुजरा हुआ था । उनकी स्त्री मुझसे प्रेम रखती हैं । उन्होंने मुझे मुजरा देखने को बुलाया और १२-१ बजे तक मुझे आने न दिया । तुम्हारा गाना हो चुका तो मैं घर आयी, बस, इतनी-सी बात पर वह-इतने बिगड़े कि जो कुछ मुँह से आया बकते रहे । यहाँ तक कि वकील साहब से पाप भी लगा दिया । कहने लगे, चली जा, अब सूरत न दिखाना । बहन, मैं ईश्वर को बीच देकर कहती हूँ, मैंने उन्हें मनाने का बड़ा यत्न किया । रोयी, पैर पड़ी, पर उन्होंने घर से निकाल ही दिया । अपने घर में कोई नहीं रखता तो क्या जबरदस्ती है ! वकील साहब के घर गयी कि दस - पाँच दिन रहूँगी फिर जैसा होगा देखा जायगा, पर इस निर्दयी ने वकील साहब को बदनाम कर डाला । उन्होंने मुझे कहला भेजा कि यहाँ से चली जाओ । बहन, और सब दुःख था, पर यह सतोष तो था कि नारायण इज्जत से निबाहे जाते हैं; पर कलंक की कालिख मुँह में लग ही गयी । अब चाहे सिर पर जो कुछ पड़े मगर उस घर में न जाऊँगी ।

यह कहते - कहते सुमन की आँखें भर आयीं । भोली ने दिलासा दे कर कहा, अच्छा, पहले हाथ - मुँह तो धो डालो, कुछ नाश्ता कर लो, फिर सलाह होगी । मालूम होता है कि तुम्हें रात - भर नींद नहीं आयी ।

सुमन — यहाँ पानी मिल जायगा ?

भोली ने मुस्करा कर कहा, सब इंतजाम हो जायगा । मेरा कहार हिंदू है । यहाँ कितने ही हिंदू आया करते हैं । उनके लिए हिंदू कहार रख लिया है ।

भोली की बूढ़ी मामा सुमन को गुसनखाने में ले गयी । वहाँ उसने साबुन से स्नान किया । तब मामा ने उसके बाल गूँथे । एक नयी रेशमी साड़ी पहिनने के लिए लायी । सुमन जब ऊपर आयी और भोली ने उसे देखा तो मुस्करा कर बोली, जरा जाकर आईने में मुँह देख लो ।

सुमन शीशे के सामने गयी । उसे मालूम हुआ कि सौंदर्य की मूर्ति सामने खड़ी है । सुमन अपने को कभी इतना सुंदर न समझती थी । लजायुक्त अभिमान से मुख - कमल खिल उठा और आँखों में नशा छा गया । वह एक कोच पर लेट गयी ।

भोली ने अपनी मामा से कहा — क्यों जहूरन, अब तो सेठ जी आ जायेंगे पंजे में ? जहूरन बोली, तलुबे सहलायेंगे — तलुबे ।

थोड़ी देर में कहार मिठाइयाँ लाया। सुमन ने जलपान किया, पान खाया और फिर आईने के सामने खड़ी हो गयी। उसने अपने मन में कहा, यह सुख छोड़ कर अँधेरी कोठरी में क्यों रहूँ ?

भोली ने पूछा, गजाधर शायद मुझसे तुम्हारे बारे में कुछ पूछें तो क्या कह दूँगी ?

सुमन ने कहा, कहला देना कि यहाँ नहीं है।

भोली का मनोरथ पूरा हो गया। उसे निश्चय हो गया कि सेठ बलभद्रास जो अब तक मुझसे कभी काटते फिरते थे, इस लावण्यमयी सुदरी पर भ्रमर की भाँति बँडरायेंगे।

सुमन की दशा उस लोभी डाक्टर की - सी थी जो अपने किसी रोगी मित्र को देखने जाता है और फीम के रुपये अपने हाथों से नहीं लेना। संकोचवश कहता है, इसकी क्या जरूरत है, लेकिन जब रुपये उसकी जेब में डाल दिये जाते हैं तो हर्ष से मुस्कराता हुआ घर की राह लेता है।

८

सुमन के चले जाने के बाद पद्मसिंह के हृदय में एक आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। मैंने अच्छा नहीं किया। न मालूम वह कहाँ गयी। अपने घर चली गयी तो पूछना ही क्या, किंतु वहाँ वह कदापि न गयी होगी। मरता क्या न करता, कभी कुली डिपोवालों के जाल में फँस गयी तो फिर छूटना मुश्किल है। यह दुष्ट ऐसे ही अवसर पर अपना बाण चलाते हैं; कौन जाने कभी उनसे भीघोरतर दुष्टाचारियों के हाथ में न पड़ जाय। साहसी पुरुष को कोई सहारा नहीं होना तो वह चोरी करता है, कायर पुरुष को कोई सहारा नहीं होता तो वह भीख माँगता है, लेकिन स्त्री को कोई सहारा नहीं होता तो वह लज्जाहीन हो जाती है। युवती का घर से निकलना मुँह से बात का निकलना है। मुझसे बड़ी भूल हुई, अब इस मर्यादापालन से काम न चलेगा। वह डूब रही होगी, उसे बचाना चाहिये।

वह गजाधर के घर जाने के लिए कपड़े पहनने लगे। तैयार हो कर घर से निकले। किंतु यह संशय लगा हुआ था कि कोई मुझे उसके दरवाजे पर देख न ले। मालूम नहीं, गजाधर अपने मन में क्या समझे। कहीं उलझ पड़ा तो मुश्किल होगी। घर से बाहर निकल चुके थे, लौट पड़े और कपड़े उतार दिये।

जब वह दस बजे भोजन करने गये तो सुभद्रा ने तेवरियाँ बदल कर कहा, यह आज सबेरे सुमन के पीछे क्यों पड़ गये ? निकालना ही था तो एक ढग से निकालते।

उस बुद्ध जीतन को भेज दिया; उसने उल्टी-सीधी जो कुछ मुँह में आयी कही। बेचारी ने जीभ तक नहीं हिनायी, चुपचाप चली गयी। मारे लाज के मैने सिर नहीं उठाया। मुझसे आ कर कहते, मैं समझा देती। कोई गँवारिन तो थी नहीं, अपना सुभीता करके चली जाती। यह सब तो कुछ न हुआ; बस, नादिरशाही हुक्म दे दिया। बदनामी का इतना डर ! वह अगर लौट कर घर न गयी तो क्या कुछ कम बदनामी होगी ? कौन जाने कहाँ जायगी, इसका दोष किस पर होगा ?

सुभद्रा भरी बैठी थी, उबल पड़ी। पर्याप्त अपना अपराध स्वीकार करनेवाले अपराधी की भाँति सिर झुकाये सुनते रहे। जो विचार उनके मन में थे, वे सुभद्रा की जीभ पर थे। चुपचाप भोजन किया और कचहरी चले गये। आज उस जलसे के बाद तीसरा दिन था। पहले शर्मा जी को कचहरी के लोग एक चरित्रवान् मनुष्य समझते थे और उनका आदर करते थे। किंतु इधर तीन-चार दिनों से जब अन्य वकीलो को अवकाश मिलता तो वह शर्मा जी के पास आ कर बैठ जाते और उनसे राग-रग की चर्चा करने लगते—शर्मा जी, सुना है आज लखनऊ से कोई बाई जी आयी है, उनके गाने की बड़ी प्रशंसा है, उनका मुजरा न कराइएगा ? अजी शर्मा जी, कुछ सुना आपने ? आपकी भोली बाई पर सेठ चिम्मनलाल बेतरह रीझे हुए हैं। कोई कहता, भाई साहब, कल गंगास्नान है, घाट पर बड़ी बहार रहेगी, क्यों न एक पार्टी कर दीजिए ? सरस्वती को बुला लीजिएगा, गाना तो बहुत अच्छा नहीं, मगर यौवन में अद्वितीय है। शर्मा जी को इन चर्चाओं से घृणा होती। वह सोचते, क्या मैं वेश्याओं का दलाल हूँ जो मुझसे लोग इस प्रकार बातें करते हैं ?

कचहरी के कर्मचारियों के व्यवहार में भी शर्मा जी को एक विशेष अंतर दिखायी देता था। उन्हें जब छुट्टी मिलती सिगरेट पीते हुए आ कर शर्मा जी के पास बैठ जाते और इसी प्रकार चर्चा करने लगते। यहाँ तक कि शर्मा जी किसी बहाने से उठ जाते और उनसे पीछा छुड़ाने के लिए घटों किसी वृक्ष के नीचे छिप कर बैठे रहते। वह उस अशुभ मुहूर्त को कोसते जब उन्होंने जलसा किया था।

आज भी वह कचहरी में ज्यादा न ठहर सके। इन्हीं घृणित चर्चाओं से उकता कर दो ही बजे लौट आये। ज्यों ही द्वार पर पहुँचे उनके भतीजे सदन ने आ कर उनके चरण स्पर्श किये।

शर्मा जी आश्चर्य से बोले — अरे सदन, तुम कब आये ?

सदन — इसी गाड़ी से आया हूँ।

पद्म — घर पर तो सब कुशल है ?

सदन — जी हाँ, सब लोग अच्छी तरह है।

पद्म — कब चले थे ? इसी एक बजेवाली गाड़ी से ?

सदन — जी नहीं, चना तो था नौ बजे रात को, किंतु गाड़ी में सो गया और

मुगलसराय पहुँच गया। उधर से बारह बजेवाली ढाक से आया हूँ।

पद्म — बाह अच्छे रहे, कुछ भोजन किया ?

सदन — जी हाँ, कर चुका।

पद्म — मैं तो अबकी होली में न जा सका, भाभी कुछ कहती थीं ?

सदन — आपकी राह लोग दो दिन तक देखते रहे। दादा दो दिन पालकी ले कर गये। अम्माँ रोती थीं, मेरा जी न लगता था, रात को उठ कर चला आया।

शर्मा — तो क्या घर पर पूछा नहीं ?

सदन — पूछा क्यों नहीं, लेकिन आप तो उन लोगों को जानते हैं, अम्माँ राजी न हुईं।

शर्मा — तब तो वह लोग घबराते होंगे; ऐसा ही था, तो किसी को साथ ले लेते। खेर अच्छा हुआ; मेरा जी भी तुम्हें देखने को लगा था। अब आ गये तो किसी मंदरसे में नाम लिखाओ।

सदन — जी हाँ, यही तो मेरा भी विचार है।

शर्मा जी ने अपने बड़े भाई मदनसिंह के नाम तार दे दिया, घबराइए मत। सदन यहीं आ गया है, उसका नाम किसी स्कूल में लिखा दिया जायगा।

तार दे कर फिर सदन से गाँव - घर की बातें करने लगे। कोई कुर्मी, कहार, लोहार, चमार ऐसा न बचा जिसके संबंध में शर्मा जी ने कुछ - न - कुछ पूछा न हो। ग्रामीण जीवन में एक प्रकार की ममता होती है जो नागरिक जीवन में नहीं पायी जाती। एक प्रकार का स्नेह - बंधन होता है जो सब प्राणियों को, चाहे छोटे हों या बड़े, बाँधे रहता है।

संध्या हो गयी। शर्मा जी सदन के साथ सैर को निकले। किंतु बेनीबाग या कुइन्स पार्क की ओर न जा कर वह दुर्गाकुंड और कान्हू जी की धर्मशाला की ओर गये। उनका चित्त चिंताग्रस्त हो रहा था, आँखें इधर - उधर सुमन को खोजती फिरती थीं। मन में निश्चय कर लिया था कि अब की वह मिल जाय तो कदापि न जाने दूँ, चाहे कितनी ही बदनामी हो। यही न होगा कि उसका पति मुझपर दावा करेगा। सुमन की इच्छा होगी चली जायगी। चलूँ गजाधर के पास, संभव है, वह घर आ गयी हो। यह विचार आते ही वह घर लौटे। कई मुवक्किल उनकी बाट जोह रहे थे। उनके कागज - पत्र देखे, किंतु मन दूसरी ओर था। ज्यों ही इन्से छुट्टी हुई वह गजाधर के घर चले, किंतु इधर - उधर ताकते जाते थे कि कहीं कोई देख न रहा हो, कोई साथ न आता हो। इस ढंग से जाते थे मानो कोई प्रयोजन नहीं है। गजाधर के द्वार पर पहुँचे। वह अभी दूकान से लौटा था। आज उसे दोपहर ही को खबर मिली थी कि शर्मा जी ने सुमन को घर से निकाल दिया। तिस पर भी उसको यह संदेह हो रहा था कि कहीं इस बहाने से उसे छिपा न दिया हो। लेकिन

इस समय शर्मा जी को अपने द्वार पर देख कर वह उनका सत्कार करने के लिए विवश हो गया। खाट पर से उठ कर उन्हें नमस्कार किया। शर्मा जी रुक गये और निश्चेष्ट भाव से बोले, क्यों पांडे जी, महाराजिन घर आ गयी न ?

गजाधर का संदेह कुछ हटा, बोला, जी नहीं, जब से आपके घर से गयी तब से उसका कुछ पता नहीं।

शर्मा — आपने कुछ इधर - उधर पूछताछ नहीं की ? आखिर यह बात क्या हुई जो आप उनसे इतने नाराज हो गये ?

गजाधर — महाशय, मेरे निकालने का तो एक बहाना था, असल में वह निकलना चाहती ही थी। पास - पड़ोस की दुष्टाओं ने उसे बिगाड़ दिया था। इधर महीनों से वह अनमनी - सी रहती थी। होली के दिन एक बजे रात को घर आयी, मुझे संदेह हुआ। मेने डांट - डपट की। घर से निकल खड़ी हुई।

शर्मा — लेकिन आप उसे घर लाना चाहते तो मेरे यहाँ से ला सकते थे। इसके बदले आपने मुझे बदनाम करना शुरू किया। तो भाई, अपनी बदनामी कौन चाहता है ? मेने उसे अपने घर से अलग कर दिया। बताओ, और मैं क्या करता ? अपनी इज्जत तो सभी को प्यारी होती है। इस मुआमले में मेरा इतना ही अपराध था कि वह होली वाले जलसे में मेरे यहाँ रही। यदि मुझे मालूम होता कि जलसे का यह परिणाम होगा तो या तो जलसा ही न करता या उसे अपने घर आने न देता। इतने ही अपराध के लिए आपने सारे शहर में मेरा नाम बँच डाला।

गजाधर रोने लगा। उसके मन का भ्रम दूर हो गया। रोते हुए बोना — महाशय, इस अपराध के लिए मुझे जो सजा चाहे दें, मैं गँवार मूख ठहरा, जिसने जो बात सुझा दी मान गया। वह जो बँकधर के बाबू हैं, भला - सा नाम है — विट्ठलदास है, मैं उन्हीं के चकमे में आ गया। होली के एक दिन पहले वह हमारी दूकान पर आये थे, कुछ कपड़ा लिया, और मुझे अलग ले जा कर आपके बारे में ... अब क्या कहूँ। उनकी बातें सुन कर मुझे भ्रम हो गया। मैं उन्हें भला आदमी समझता था। सारे शहर में दूसरों के साथ भलाई करने के लिए उपदेश करते - फिरते हैं। ऐसा धर्मात्मा आदमी कोई बात कहता है तो उस पर विश्वास आ जाता है। मालूम नहीं उन्हें आपसे क्या बेर था, और मेरा तो उन्होंने घर ही बिगाड़ दिया।

यह कह कर गजाधर फिर रोने लगा। उसके मन का भ्रम दूर हो गया। रोते हुए बोला, सरकार, इस अपराध के लिए मुझे जो सजा चाहें दें।

शर्मा जी को ऐसा जान पड़ा मानो किसी ने लोहे की छड़ लाल करके उनके हृदय में चुभा दी। माथे पर पसीना आ गया। वह सामने से तलवार का वार रोक सकते थे, किंतु पीछे से सूई की नोक भी उनकी सहन - शक्ति से बाहर थी। विट्ठलदास उनके परम मित्र थे। शर्मा जी उनकी इज्जत करते थे। आपस में बह्दा

मतभेद होने पर भी वह उनके पवित्र उद्देश्यों का आदर करते थे। ऐसा व्यक्ति जान-बूझ कर जब किसी पर कीचड़ फेंके तो इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि शुद्ध विचार रखते हुए भी वह क्रूर है। शर्मा जी समझ गये कि होली के जलसे के प्रस्ताव से नाराज हो कर विट्ठलदास ने यह आग लगायी। केवल मेरा अपमान करने के लिए, जनता की दृष्टि में गिराने के लिए मुझ पर यह दोषारोपण किया है। क्रोध से काँपते हुए बोले, तुम उनके मुँह पर कहोगे ?

गजाधर — हाँ, साँच को क्या आँच ? चलिए, अभी मैं उनके सामने कह दूँ। मजाल है कि वह इन्कार कर जायें ?

क्रोध के आवेग में शर्मा जी चलने को प्रस्तुत हो गये। किंतु इतनी देर में आँधी का वेग कुछ कम हो चला था। सँभल गये। इस समय वहाँ जाने से बात बढ़ जायगी, यह सोच कर गजाधर से बोले, अच्छी बात है, जब बुलाऊँ तो चले आना। मगर निश्चित मत बैठो। महाराजिन की खोज में रहो, समय बुरा है। जो खर्च की जरूरत हो, वह मुझसे लो।

यह कह कर शर्मा जी घर चले आये। विट्ठलदास की गुप्त छुरी के आघात ने उन्हें निस्तेज बना दिया था। वह यही समझते थे कि विट्ठलदास ने केवल द्वेष के कारण यह षड्यंत्र रचा है। यह विचार शर्मा जी के ध्यान में भी न आया कि सम्भव है, उन्होंने जो कुछ कहा हो वह शुभ चिन्ताओं से प्रेरित हो कर कहा हो और उस पर विश्वास करते हों।

६

प्राचीन ऋषियों ने इंद्रियों को दमन करने के दो साधन बताये हैं — एक राग, दूसरा वैराग्य। पहला साधन अत्यंत कठिन और दुस्साध्य है। लेकिन हमारे नागरिक समाज ने अपने मुख्य स्थानों पर मीनाबाजार सजा कर इसी कठिन मार्ग को ग्रहण किया है। उसने गृहस्थी को कीचड़ का कमल बनाना चाहा है।

जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वासनाओं का प्राबल्य रहता है। बचपन मिठाइयों का समय है, बुढ़ापा लोभ का, यौवन प्रेम और लालसाओं का समय है, इस अवस्था में मीनाबाजार की सैर मन में विप्लव मचा देती है। जो सुदृढ़ हैं, लज्जाशील वा भाव-शून्य — वह सँभल जाते हैं। शेष फिसलते हैं और गिर पड़ते हैं।

शराब की दूकानों को हम बस्ती से दूर रखने का यत्न करते हैं, जुएखाने से भी हम घृणा करते हैं, लेकिन वेश्याओं की दूकानों को हम सुसज्जित कोठों पर, चौक बाजारों में ठाट से सजाते हैं। यह पापोत्तेजना नहीं तो और क्या है ?

बाजार की साधारण वस्तुओं में कितना आकर्षण है ! हम उन पर लट्टू हो जाते हैं और कोई आवश्यकता न होने पर भी उन्हें ले लेते हैं । तब वह कौन - सा हृदय है जो रूपगशि जैसे अमूल्य रत्न पर मर न मिटेगा ? क्या हम इतना भी नहीं जानते ?

विपक्षी कहता है, यह व्यर्थ की शंका है । सहस्रों युवक नित्य शहरों में घूमते रहते हैं, किन्तु उनमें से बिरला ही कोई बिगड़ता है । वह मानव - पतन का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहता है । किन्तु मालूम नहीं कि वायु की भाँति दुर्बलता भी एक अदृश्य वस्तु है, जिसका ज्ञान उसके कर्म से ही हो सकता है । हम इतने निर्लज्ज, इतने साहस - रहित क्यों हैं ? हममें आत्मगौरव का इतना अभाव क्यों है ? हमारी निर्जीवता का क्या कारण है ? वह मानसिक दुर्बलता के लक्षण हैं ।

इसलिए आवश्यक है कि इन विष - भरी नागिनों को आबादी से दूर किसी पृथक् स्थान में रखा जाय । तब उन निन्द्य स्थानों की ओर सैर करने को जाते हुए हमें संकोच होगा । यदि वह आबादी से दूर हों और वहाँ घूमने के लिए किसी बहाने की गुंजाइश न हो तो ऐसे बहुत कम बेहया आदमी होंगे जो इस मीनाबाजार में कदम रखने का साहस कर सकें ।

कई महीने बीत गये । वर्षाकाल आ पहुँचा । मेलों - ठेलों की धूम मच गयी । सदन बाँकी सजधज बनाये मनचले घोड़े पर चारों ओर घूमा करता है । उसके हृदय में प्रेमलालसा की एक आग - सी जलती रहती थी । अब वह इतना निःशंक हो गया था कि दालमंडी में घोड़े से उतर कर तम्बोलियों की दूकानों पर पान खाने बैठ जाता । वह समझते, यह कोई बिगड़ा हुआ रईसजादा है । उससे रूप - हाट की नयी - नयी घटनाओं का वर्णन करते । गाने में कौन अच्छी है और कौन सुंदरता में अद्वितीय है, इसकी चर्चा छिड़ जाती । इस बाजार में नित्य यह चर्चा रहती । सदन इन बातों को चाव से सुनता । अब तक वह कुछ रसज हो गया था । पहले जो गजलों निरर्थक मालूम होती थीं उन्हें सुन कर अब उसके हृदय का एक - एक तार सितार की भाँति गूँजने लगता था । संगीत के मधुर स्वर उसे उन्मत्त कर देते बड़ी कठिनता से वह अपने को कोठों पर चढ़ने से रोक सकता ।

पद्मसिंह सदन को फैशनेबुल बनाना चाहते थे, लेकिन उसका बाँकापन उनकी आँखों में खटकता था ! वह नित्य वायु - सेवन करने जाते, पर सदन उन्हें पार्क या मैदान में कभी नहीं मिलता । वह सोचते कि यह रोज कहाँ घूमने जाता है । कहीं उसे दालमंडी की हवा तो नहीं लगी ?

उन्होंने दो - तीन बार सदन को दालमंडी में खड़े देखा । उन्हें देखते ही सदन चट एक दूकान पर बैठ जाता और कुछ - न कुछ खरीदने लगता । शर्मा जी उसे देखते और सिर नीचा किये हुए निकल जाते । बहुत चाहते कि सदन को इधर आने

से रोकें, किन्तु लज्जावश कुछ न कह सकते।

एक दिन शर्मा जी सैर करने जा रहे थे कि रास्ते में दो सज्जनों से भेंट हो गयी। यह दोनों म्युनिसिपैलिटी के मेम्बर थे। एक का नाम था अबुलवफा, दूसरे का अब्दुल्लतीफ। ये दोनों फिटन पर सैर करने जा रहे थे। शर्मा जी को देखते ही रुक गये।

अबुलवफा बोले, आइए जनाब ! आप ही का जिक्र हो रहा था, आइए कुछ दूर साथ ही चलिए !

शर्मा जी ने उत्तर दिया, मैं इस समय घूमा करता हूँ, क्षमा कीजिए।

अबुलवफा — अजी आपसे एक खास बात कहनी है, हम तो आप के दौलत खाने पर हाजिर होनेवाले थे।

इस आग्रह से विवश हो कर शर्मा जी फिटन पर बैठे।

अबुलवफा — वह खबर सुनाएँ कि रुह फड़क उठे।

शर्मा जी — फरमाइए तो।

अबुलवफा — आप की महाराजिन 'सुमनबाई' हो गयीं।

अब्दुल्लतीफ — वल्लाह, हम आपके नजर इंतखाव के कायल हैं। अभी तीन-चार दिनों से ही उसने दालमंडी में बैठना शुरू किया है, लेकिन इतने में ही उसने सबका रंग मात कर दिया है। उसके सामने अब किसी का रंग ही नहीं जमता। उसके बालखाने के सामने रगीन मिजाजी का अबोह जमा रहता है। मुखड़ा गुलाब है और जिस्म तपाया हुआ कुदन। जनाब, मैं आपसे अजरूये ईमान कहता हूँ कि ऐसी दिनफरेबी सूरत मैंने न देखी थी।

अबुलवफा — भाई, उसे देख कर भी कोई पाकबाजी का दावा करे तो उसका मुरीद हो जाऊँ। ऐसे लाले बेबहा को गूदड़ से निकालना आप ही जैसे हुस्नशिनास का काम है।

अब्दुल्लतीफ — बला की जहीन मालूम होती है। अभी आपके यहाँ से निकले हुए उसे पाँच-छह महीने से ज्यादा नहीं हुए होंगे, लेकिन कल उसका गाना सुना तो दंग रह गये। इस शहर में उसका सानी नहीं। किसी के गले में वह लोच और नजाकत नहीं है।

अबुलवफा — अजी जहाँ जाता हूँ, उसी की चर्चा सुनता हूँ। लोगों पर जादू-सा हो गया है। सुनता हूँ सेठ बलभद्रदास जी की आमदरपत शुरू हो गयी। चलिए आज आप भी पुरानी मुलाकात ताजी कर आइए। आप की तुफैल में हम भी फ़ौज पा जायेंगे।

अब्दुल्लतीफ — हम आपको खीच ले चलेंगे, इस वक्त आपको हमारी खातिर करनी होगी।

पंडित जी इस समाचार को सुन कर खेद, लज्जा और ग्लानि के बोझ से इतने दब गये कि सिर भी न उठा सके। जिस बात का उन्हें भय था वह अंत में पूरी हो कर ही रही। उनका जी चाहता था कि कहीं एकांत में बैठ कर इस दुर्घटना की आलोचना करें और निश्चय करें कि इसका कितना भार उनके सिर पर है। इस दुराग्रह पर कुछ खिन्न हो कर बोले, मुझे क्षमा कीजिए। मैं न चल सकूंगा।

अबुलवफा — क्यों ?

शर्मा जी — इसलिए कि एक भले घर की स्त्री को इस दशा में देखना मैं सहन नहीं कर सकता। आप लोग मन में चाहे जो कुछ समझें किंतु उसका मुझसे केवल इतना ही संबंध है कि वह मेरी स्त्री के पास आती-जाती थी।

अबुल्लतीफ — जनाब, यह पारसाई की बातें किसी और वक्त के लिए उठा रखिए। हमने इसी कूचे में उम्र काट दी है, और इन रूमज को खूब समझते हैं। चलिए, आपकी सिफारिश से हमारा भला हो जायगा।

पंडित जी से अब सब्र न हो सका। अवीर हो कर बोले, मैं कह चुका कि मैं वहाँ न जाऊँगा। मुझे उतर जाने दीजिए।

अबुलवफा — और हम कह चुके कि जरूर ले चलेंगे। आपको हमारी खातिर से इतनी तकलीफ करनी पड़ेगी।

अबुल्लतीफ ने घोड़े को एक चाबुक और लगाया। वह हवा हो गया। शर्मा जी ने क्रोध से कहा, आप मेरा अपमान करना चाहते हैं ?

अबुलवफा — जनाब, आखिर वजह भी तो कुछ होनी चाहिए। जरा देर में पहुँच जाते हैं। यह लीजिए; सड़क घूम गयी।

शर्मा जी समझ गये कि यह लोग इस समय मेरी आरजू - मिन्नत पर ध्यान न देंगे। सुमन के पास जाने के बदले वह कुएँ में गिरना अच्छा समझते थे। अतएव उन्होंने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। वह उठे और वेग से चलती हुई गाड़ी पर से कूद पड़े। यद्यपि उन्होंने अपने को बहुत सँभाला, पर रुक न सके। पैर लड़खड़ा गये और वह उल्टे हुए पचास कदम तक चले गये। कई बार गिरते-गिरते बचे। पर अंत में ठोकर खा कर गिर ही पड़े। हाथ की कुहनियों में बड़ी चोट लगी, हाँफते-हाँफते बेदम हो गये। शरीर पानी में डूब गया, सिर चक्कर खाने लगा और आँखें तिलमिला गयी। जमीन पर बैठ गये। अबुल्लतीफ ने घोड़ा रोक दिया, दौड़े हुए दोनों आदमी उनके पास आये और रूमाल निकाल कर झलने लगे। कोई पंद्रह मिनट में शर्मा जी सचेत हुए। दोनों महाशय पछताने लगे, बहुत लजित हुए और शर्मा जी से क्षमा माँगने लगे। बहुत आग्रह किया कि गाड़ी पर बिठा कर आपको घर पहुँचा दें। किंतु शर्मा जी राजी न हुए। उन्हें वहीं छोड़ कर वह खड़े

हो गये और लँगड़ाते हुए घर की तरफ चले। लेकिन सावधान होने पर उन्हें विस्मय होता था कि मैं फिटन से कूद क्यों पड़ा ? यदि मैं एक बार झिड़क कर कह देता कि गाड़ी रोको तो किसकी मजाल थी कि न रोकता और अगर वह इतने पर भी न मानते तो मैं उनके हाथ से रास छीन सकता था। पर खैर, जो हुआ वह हुआ। कहीं वह दोनों मुझे बातों में बहला कर सुमन के दरवाजे पर जा पहुँचते तो मुश्किल होती। सुमन से मेरी आँखें कैसे मिलतीं ? कदाचित् मैं गाड़ी से उतरते ही भागता, पागलो की भाँति बाजार में दौड़ता। गऊ का वध होते तो चाहे देख सकूँ, पर सुमन को इस दशा में नहीं देख सकता। बड़े-से-बड़ा भय सदैव कल्पित हुआ करता है।

इस समय उनके मन में बारम्बार यह प्रश्न उठ रहा था कि इस दुर्घटना का उत्तर-दाता कौन है। उनकी विवेचना शक्ति पिछली बातों की आलोचना कर रही थी। यदि मैंने उसे घर से निकाल न दिया होता तो इस भाँति उसका पतन न होता। मेरे यहाँ से निकल कर उसे और कोई ठिकाना न रहा और क्रोध और कुछ नैराश्य की अवस्था में यह भीषण अभिनय करने पर बाध्य हुई। इसका सारा अपराध मेरे सिर है।

लेकिन गजाघर सुमन से इतना क्यों बिगड़ा ? वह कोई पर्दानशीन स्त्री न थी, मेले-ठेले में आती-जाती थी, केवल एक दिन जरा देर हो जाने से गजाघर उसे कठोर दंड कभी न देता। वह उसे डाँटता, संभव है, दो-चार घौन भी लगाता; सुमन रोने लगती, गजाघर का क्रोध ठंडा हो जाता; वह सुमन को मना लेता, बस झगड़ा तय हो जाता। पर ऐसा नहीं हुआ, केवल इसी लिए कि विट्ठलदास ने पहले ही से आग लगा दी थी। निस्संदेह सारा अपराध उन्हीं का है। मैंने भी सुमन को घर से निकाला तो उन्हीं के कारण। उन्होंने सारे शहर में बदनाम करके मुझे निर्दयी बनने पर विवश किया। इस भाँति विट्ठलदास पर दोषारोपण करके शर्मा जी को बहुत धैर्य हुआ। इस धारणा ने पश्चात्ताप की वह आग ठंडी की, जो महीनों से उनके हृदय में दहक रही थी। उन्हें विट्ठलदास को अपमानित करने का एक मौका मिला। घर पहुँचते ही विट्ठलदास को पत्र लिखने बैठ गये। कपड़े उतारने की भी सुध न रही।

‘प्रिय महाशय, नमस्ते !

‘आपको यह सुन कर असीम आनंद होगा कि सुमन अब दालमंडी में एक कोठे पर विराजमान है। आपको स्मरण होगा कि होली के दिन वह अपने पति के भय से मेरे घर चली आयी थी और मैंने सरल रीति से उतने दिनों तक आश्रय देना उचित समझा, जब तक उसके पति का क्रोध न शांत हो जाय। पर इसी बीच मेरे कई मित्रों ने, जो मेरे स्वभाव से सर्वथा अपरिचित नहीं थे, मेरी उपेक्षा

तथा निंदा करनी आरंभ की। यहाँ तक कि मैं उस अभागिनी अबला को अपने घर से निकालने पर विवश हुआ और अंत में वह उसी पापकुंड में गिरी जिसका मुझे भय था। अब आप को भली भाँति ज्ञात हो जायगा कि इस दुर्घटना का उत्तरदाता कौन है; और मेरा उसे आश्रय देना उचित था या अनुचित!

भवदीय — पद्मसिंह

बाबू विट्ठलदास शहर की सभी सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण थे। उनकी सहायता के बिना कोई कार्य सिद्ध न होता था। वह पुरुषार्थ का पुतला इस भारी बोझ को प्रसन्न चित्त से उठाता। दब जाता था, किंतु हिम्मत न हारता था। भोजन करने का अवकाश न मिलता, घर पर बैठना नसीब न होता, स्त्री उनके स्नेह-रहित व्यवहार की शिकायत किया करती। विट्ठलदास जाति-सेवा की धुन में अपने सुख और स्वार्थ को भूल गये थे। कहीं अनाथालय के लिए चंदा जमा करते फिरते हैं, कहीं दीन विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति का प्रबंध करने में दत्तचित्त हैं। जब जाति पर कोई संकट आ पड़ता तो उनका देश-प्रेम उमड़ पड़ता था। अकाल के समय सिर पर आटे का गट्ठर लादे गाँव-गाँव घूमते थे। हैजे और प्लेग के दिन में उनका आत्म-समर्पण और विलक्षण त्याग देख कर आश्चर्य होता था। अभी पिछले दिनों में जब गंगा में बाढ़ आ गयी थी तो महीनो घर की सूरत नहीं देखी; अपनी सारी संपत्ति देश पर अर्पण कर चुके थे, पर इसका तनिक भी अभिमान न था। उन्होंने उच्च शिक्षा नहीं पायी थी। वाक्-शक्ति भी साधारण थी। उनके विचार में बहुधा प्रौढता तथा दूरदर्शिता का अभाव होता था। वह विशेष नीतिकुशल, चतुर या बुद्धिमान न थे। पर उनमें देशानुराग का एक ऐसा गुण था जो उन्हें सारे नगर में सर्वसम्मान्य बनाये हुए था।

उन्होंने शर्मा जी का पत्र पढ़ा तो एक थप्पड़-सा मुँह पर लगा। उस पत्र में कितना वरंग था, इसकी ओर उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। अपने एक परम मित्र को भ्रम में पड़ कर कितना बदनाम किया, इसका भी उन्हें दुःख नहीं हुआ। वह बीती हुई बातों पर पछताना नहीं जानते थे। इस समय क्या करना चाहिए इसका निश्चय करना आवश्यक था और उन्होंने तुरंत यह निश्चय कर लिया। वह दुविधा में पड़ने वाले मनुष्य न थे। कपड़े पहने और दालमडी जा पहुँचे। सुमन बाई के मकान का पता लगाया, बेधड़क ऊपर गये और जा कर द्वार खटखटाया। हिरिया ने, जो सुमन की नायिका थी, द्वार खोल दिया।

नौ बज गये थे। सुमन का मुजरा अभी समाप्त हुआ था। वह सोने जा रही थी। विट्ठलदास को देख कर चौक पड़ी। उन्हें उसने कई बार शर्मा जी के मकान पर देखा था। झिझक कर खड़ी हो गयी, सिर झुका कर बोली, महाशय आप इधर कैसे भूल पड़े?

विठ्ठलदास साबधानी से कालीन पर बैठ कर बोले, भूल तो नहीं पड़ा, जानबूझ कर आया हूँ, पर जिस बात का किसी तरह विश्वास न आता था वही देख रहा हूँ। आज जब पचासिह का पत्र मिला तो मेने समझा कि किसी ने उन्हें धोखा दिया है, पर अब अपनी आँखों को कैसे धोखा दूँ ! जब हमारी पूज्य ब्राह्मण महिलाएँ ऐसे कलंकित मार्ग पर चलने लगीं तो हमारे अधःपन्न का अब पारावार नहीं है। सुमन, तुमने हिंदू जाति का सर नीचा कर दिया।

सुमन ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया, आप ऐसा समझते होगे, और तो कोई ऐसा नहीं समझता। अभी कई सज्जन यहाँ से मुजरा सुन कर गये हैं, सभी हिंदू थे, लेकिन किसी का सिर नीचा नहीं मालूम होता था। वह मेरे यहाँ आने से बहुत प्रसन्न थे। फिर इस मंडी में मैं ही एक ब्राह्मणी नहीं हूँ, दो-चार का नाम तो मैं अभी ले सकती हूँ, जो बहुत ऊँचे कुल की है, पर जब बिरादरी में अपना निबाह किसी तरह न देखा तो विवश हो कर यहाँ चली आयीं। जब हिंदू जाति को खुद ही लाज नहीं है तो फिर हम जैसी अबलाएँ उसकी रक्षा कहाँ तक कर सकती है ?

विठ्ठलदास — सुमन, तुम सच कहती हो, बेशक हिंदू जाति अयोगति को पहुँच गयी, और अब तक वह कभी की नष्ट हो गयी होती, पर हिंदू स्त्रियो ही ने अभी तक उसकी मर्यादा की रक्षा की है। उन्हीं के सत्य और सुकीर्ति ने उसे बचाया है। केवल हिंदुओं की लाज रखने के लिए लाखों स्त्रियाँ आग में भस्म हो गयी हैं। यही विलक्षण भूमि है जहाँ स्त्रियाँ नाना प्रकार के कष्ट-भोग कर, अपमान और निरादर सह कर पुरुषों की अमानुषीय क्रूरताओं को चित्त में न ला कर हिंदू जाति का मुख उज्ज्वल करती थी। यह साधारण स्त्रियों का गुण था और ब्राह्मणियों का तो पूछना ही क्या ? पर शोक है कि वही देवियाँ अब इन भाँति मर्यादा का त्याग करने लगीं। सुमन, मैं स्वीकार करता हूँ कि तुमको घर पर बहुत कष्ट था। माना कि तुम्हारा पति दरिद्र था, क्रोधी था, चरित्रहीन था; माना कि उसने तुम्हें अपने घर से निकाल दिया था, लेकिन ब्राह्मणी अपनी जाति और कुल के नाम पर यह सब दुःख झेलती है। आपत्तियों का झेलना और दुरवस्था में स्थिर रहना यही सच्ची ब्राह्मणियों का धर्म है, पर तुमने वह किया जो नीच जाति की कुन्टाएँ किया करती है; पति से कूठ कर मैके भागती, और मैके में निबाह न हुआ तो चकले की राह लेती है। सोचो तो कितने खेद की बात है कि जिस अवस्था में तुम्हारा लाखों बहनें हैंसी-खुशी जीवन व्यतीत कर रही है, वही अवस्था तुम्हें इतनी असह्य हुई कि तुमने लोक-लाज, कुल-मर्यादा को लात मार कर कुपय ग्रहण किया। क्या तुमने ऐसी स्त्रियाँ नहीं देखीं जो तुमसे कही दोन-हीन, दरिद्र-दुःखी हैं ? पर ऐसे कुविचार उनके पास नहीं फटकने पाते, नहीं तो आज यह स्वाभूषि नरक के समान हो जाती। सुमन, तुम्हारे इस कर्म ने ब्राह्मण जाति ही का नहीं, समस्त हिंदू जाति का मस्तक नीचा कर दिया।

सुमन की आँखें सजल थीं। लज्जा से सिर न उठा सकी। विट्ठलदास फिर बोले — इससे सदेह नहीं कि यहाँ तुम्हें भोग - विलास की सामग्रियाँ खूब मिलती हैं, तुम एक ऊँचे सुसज्जित भवन में निवास करती हो, नर्म कालीनों पर बैठती हो, फूलों की सेन पर सोती हो, भाँति - भाँति के पदार्थ खाती हो, लेकिन सोचो तो तुम ने यह सामग्रियाँ किन दामों मोल ली हैं। अपनी मान - मर्यादा बेच कर। तुम्हारा कितना आदर था, लोग तुम्हारी पदरज माथे पर चढ़ाते थे, लेकिन आज तुम्हें देखना भी पाप समझा जाता है

सुमन ने बात काट कर कहा, महाशय, यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गयी थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया, लेकिन कन उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानो मेरे चरणों से वह मंदिर -विग्रह हो गया।

विट्ठलदास — लेकिन तुमने यह भी सोचा है कि वह किस आचरण के लोग हैं?

सुमन — उनके आचरण चाहे जैसे हों, लेकिन वह काशी के हिंदू समाज के नेता अवश्य हैं। फिर उन्हीं पर क्या निर्भर है? मैं प्रातःकाल से संध्या तक हजारों मनुष्यों को इसी रास्ते आते - जाते देखती हूँ। पढ़े - अपढ़, मूर्ख - विद्वान्, धनी - गरीब सभी नजर आते हैं, परंतु सबको अपनी तरफ खुली या छिपी दृष्टि से ताकते पाती हूँ। उनमें कोई ऐसा नहीं मालूम होता जो मेरी कृपा - दृष्टि पर हर्ष से मत - वाला न हो जाय। इसे आप क्या कहते हैं? संभव है, शहर में दो -चार मनुष्य ऐसे हों जो मेरा तिरस्कार करते हों! उनमें से एक आप है, उन्हीं में आपके मित्र पद्म - सिंह हैं, किंतु जब संसार मेरा आदर करता है तो इने - गिने मनुष्यों के तिरस्कार की मुझे क्या परवाह है? पद्मसिंह को भी जो चिढ़ है वह मुझसे है, मेरी बिरादरी से नहीं। मैंने इन्हीं आँखों से उन्हे होली के दिन भोजी से हँसते देखा था।

विट्ठलदास को कोई उत्तर न सूझता था। बुरे फँसे थे। सुमन ने फिर कहा, आप सोचते होंगे कि भोग - विलास की लालसा से कुमांग में आयी हूँ, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मैं ऐसी अवी नहीं कि भले - बुरे की पहचान न कर सकूँ। मैं जानती हूँ कि मैंने अतमंत निःकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मैं विवश थी, इसके सिवा मेरे लिए और कोई रास्ता न था। आप अगर सुन सकें तो मैं अपनी रामकहानी सुनाऊँ। इतना तो आप जानते ही हैं कि संसार में सबकी प्रकृति एक - सी नहीं होती। कोई अपना अपमान सह सकता है, कोई नहीं सह सकता। मैं एक ऊँचे कुल की लड़की हूँ, पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख मनुष्य से हुआ, लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान न सह

जाता था। जिनका निरादर होना चाहिए उनका आदर होते देख कर मेरे हृदय में कुवासनाएँ उठने लगतीं थीं। मगर मैं इस आग से मन-ही-मन जलती थी। कभी अपने भावों को किसी से प्रकट नहीं किया। संभव था कि कालांतर में यह अग्नि आप ही-आप शांत हो जाती, पर पद्मसिंह के जलसे ने इस अग्नि को भड़का दिया। इसके बाद मेरी जो दुर्गति हुई वह आप जानते ही हैं। पद्मसिंह के घर से निकल कर मैं भोलीबाई की शरण में गयी। मगर उस दशा में भी मैं इस कुमार्ग से भागती रही। मेने चाहा कि कपड़े सीं कर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे इस कुएँ में कूदना पड़ा। यद्यपि इस काजल की कोठरी में आ कर पवित्र रहना अतमंत कठिन है, पर मेने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी। गाऊँगी, नाचूँगी पर अपने को भ्रष्ट न होने दूँगी।

विठ्ठल — तुम्हारा यहाँ बैठना ही तुम्हें भ्रष्ट करने के लिए काफी है।

सुमन — तो फिर मैं और क्या कर सकती हूँ, आप ही बताइए। मेरे लिए सुख से जीवन बिताने का और कौन सा उपाय है ?

विठ्ठल — अगर तुम्हें यह आशा है कि यहाँ सुख से जीवन कटेगा तो तुम्हारी बड़ी भूल है। यदि अभी नहीं तो थोड़े दिनों में तुम्हें अवश्य मालूम हो जायगा कि यहाँ सुख नहीं है। सुख संतोष से प्राप्त होता है, विलास से सुख कभी नहीं मिल सकता।

सुमन — सुख न सही, यहाँ पर मेरा आदर तो है ! मैं किसी की गुलाम तो नहीं हूँ।

विठ्ठल — यह भी तुम्हारी भूल है। तुम यहाँ चाहे और किसी की गुलाम न हो, पर अपनी इन्द्रियों की गुलाम तो हो ? इन्द्रियों की गुलामी उस पराधीनता से कहीं दुःखदायिनी होती है। यहाँ तुम्हें न सुख मिलेगा, न आदर। हाँ, कुछ दिनों भोग-विलास कर लोगी, पर अंत में इससे भी हाथ धोना पड़ेगा। सोचो तो, थोड़े दिनों तक इन्द्रियों को सुख देने के लिए तुम अपनी आत्मा और समाज पर कितना बड़ा अन्याय कर रही हो ?

सुमन ने आज तक किसी से ऐसी बातें न सुनी थीं। वह इन्द्रियों के सुख को, अपने आदर को जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती थी। उसे आज मालूम हुआ कि सुख संतोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से।

उसने कहा, मैं सुख और आदर दोनों ही को छोड़नी हूँ, पर जीवन-निर्वाह का तो कुछ उपाय करना पड़ेगा ?

विठ्ठलदास — अगर ईश्वर तुम्हें सुबुद्धि दें तो सामान्य रीति से जीवन-निर्वाह करने के लिए तुम्हें दालमंडी में बैठने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे जीवन-निर्वाह का केवल यही एक उपाय नहीं है। ऐसे कितने धंधे हैं जो तुम अपने घर में

बैठी हुई कर सकती हो ।

सुमन का मन अब कोई बहाना न ढूँढ़ सका । विट्ठलदास के सदुत्साह ने उसे वशीभूत कर लिया । सच्चे आदमी को हम धोखा नहीं दे सकते । उसकी सच्चाई हमारे हृदय में उच्च भावों को जागृत कर देती है । उसने कहा, मुझे यहाँ बैठते स्वतः लज्जा आती है । बताइए, आप मेरे लिए क्या प्रबंध कर सकते हैं ? मैं गाने में निपुण हूँ । गाना सिखाने का काम कर सकती हूँ ।

विट्ठलदास — ऐसी तो यहाँ कोई पाठशाला नहीं है ।

सुमन — मैंने कुछ विद्या भी पढ़ी है, कन्याओं को अच्छी तरह पढ़ा सकती हूँ ।

विट्ठलदास ने चिंतित भाव से उत्तर दिया, कन्या पाठशालाएँ तो कई हैं, पर तुम्हें लोग स्वीकार करेंगे, इसमें संदेह है ।

सुमन — तो फिर आप मुझसे क्या करने को कहते हैं ? कोई ऐसा हिंदू जाति का प्रेमी है जो मेरे गुजारे के लिए ५० रु० मासिक देने पर राजी हो ?

विट्ठलदास — यह तो मुश्किल है ।

सुमन — तो क्या आप मुझसे चक्की पिसाना चाहते हैं ? मैं ऐसी संतोषी नहीं हूँ ।

विट्ठलदास — (झेंप कर) विधवाश्रम में रहना चाहो तो उसका प्रबंध कर दिया जाय ।

सुमन — (सोच कर) मुझे यह भी मंजूर है, पर वहाँ मैंने स्त्रियों को अपने सम्बन्ध में कानाफूसी करते देखा तो पल - भर न ठहरूँगी ।

विट्ठलदास — यह टेढ़ी शर्त है, मैं किस - किस की जबान को रोकूँगा । लेकिन मेरी समझ में सभावाले तुम्हें लेने पर राजी न होंगे ।

सुमन ने ताने से कहा, तो जब आपकी हिंदू जाति इतनी हृदय-शून्य है तो मैं उसकी मर्यादा पालने के लिए क्यों कष्ट भोगूँ, क्यों जान दूँ ? जब आप मुझे अपनाते के लिए जाति को प्रेरित नहीं कर सकते, जब जाति आप ही लज्जाहीन है तो मेरा क्या दोष है । मैं आपसे केवल एक प्रस्ताव और करूँगी और यदि आप उसे भी पूरा न कर सकेंगे तो फिर मैं आपको और कष्ट न दूँगी । आप पं० पद्मसिंह को एक घंटे के लिए मेरे पास बुला लाइए, मैं उनसे एकांत में कुछ कहना चाहती हूँ । उसी घड़ी मैं यहाँ से चली जाऊँगी । मैं केवल यह देखना चाहती हूँ कि जिन्हें आप जाति के नेता कहते हैं, उनकी दृष्टि में मेरे पश्चात्ताप का कितना मूल्य है ।

विट्ठलदास खुश हो कर बोले, हाँ, यह मैं कर सकता हूँ, बोलो, किस दिन ?

सुमन — जब आपका जी चाहे ।

विठ्ठलदास — फिर तो न जाओगी ?

सुमन — अभी इतनी नीच नहीं हुई हूँ ।

१०

महाशय विठ्ठलदास इस समय ऐसे खुश थे मानों उन्हें कोई सम्पत्ति मिल गयी हो । उन्हें विश्वास था कि पच्चीसह इस जरा से कष्ट से मुँह न मोड़ेंगे, केवल उनके पास जाने की देर है । वह होली के कई दिन पहले से शर्मा जी के पास नहीं गये थे । यथाशक्ति उनकी निंदा करने में कई बात उठा न रखी थी, जिस पर कदाचित् अब वह मन में लज्जित थे, तिस पर भी शर्मा जी के पास जाने में उन्हें जरा भी संकोच न हुआ । उनके घर की ओर चले । रात के दस बज गये थे । आकाश में बादल उमड़े हुए थे, घोर अंधकार छाया हुआ था । लेकिन राग-रग का बाजार पूरी रौनक पर था । अट्टालिकाओं से प्रकाश की किरणें छिटक रही थीं । कहीं सुरीली तानें सुनायी देती थीं, कहीं मधुर हास्य की ध्वनि, कहीं आमोद - प्रमोद की बातें । चारों ओर विषयवासना अपने नग्न रूप में दिखायी दे रही थी । दाल - मंडी से निकल कर विठ्ठलदास को ऐसा जान पड़ा मानो वह किसी निर्जन स्थान में आ गये । रास्ता अभी बद न हुआ था । विठ्ठलदास को ज्यों ही कोई परिचित मनुष्य मिल जाता, वह उसे तुरंत अपनी सफलता की सूचना देते । आप कुछ समझते हैं, कहीं से आ रहा हूँ सुमनबाई की सेवा में गया था । ऐसा मंत्र पढ़ा कि सिर न उठा सकी, विधवाश्रम में जाने पर तैयार है । काम करनेवाले यों काम किया करते हैं ।

पच्चीसह चारपाई पर लेटे हुए निद्रा देवी की आराधना कर रहे थे कि इतने में विठ्ठलदास ने आ कर आवाज दी । जीतन कहार अपनी कोठरी में बैठा हुआ दिन - भर की कमाई का हिसाब लगा रहा था कि यह आवाज कान में आयी । बड़ी फुरती से पैसे समेट कर कमर में रख लिये और बोला, कौन है ?

विठ्ठलदास ने कहा, अजी मैं हूँ, क्या पंडित जी सो गये ? जरा भीतर जा कर जगा तो दो, मेरा नाम लेना, कहना बाहर खड़े है, बड़ा जरूरी काम है, जरा चले आये ।

जीतन मन में बहुत झुंझलाया, उसका हिसाब अधूरा रह गया, मालूम नहीं अभी रुपया पूरा होने में किननी कसर है । अलसाता हुआ उठा, किवाड़ खोले और पंडित जी को खबर दी । वह समझ गये कि कोई नया समाचार होगा तभी यह इतनी रात गये आये हैं । तुरंत बाहर निकल आये ।

विठ्ठल — आइए, मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, क्षमा कीजिएगा । कुछ

समझे, कहाँ से आ रहा हूँ ? सुमनबाई के पास गया था, आपका पत्र पाते ही दौड़ा कि बन पड़े तो उसे सीधी राह पर लाऊँ । इसमें उसी की बदनामी नहीं सारी जाति की बदनामी है । वहाँ पहुँचा तो उसके ठाट देख कर दंग रह गया । वह भोली-भाली स्त्री अब दाल - मंडी की रानी है; मालूम नहीं इतनी जल्दी वह ऐसी चतुर कैसे हो गयी । कुछ देर तक तो चुपचाप मेरी बातें सुनती रही, फिर रोने लगी । मैंने समझा, अभी लोहा लाल है ; दो - चार चोटें और लगायीं, बस आ गयी पंजे में । पहले विधवाश्रम का नाम सुन कर घबरायी । कहने लगी — मुझे ५० रु० महीना गुजर के लिए दिलवाइए । लेकिन आप जानते हैं यहाँ ५० रु० देनेवाला कौन है ? मैंने हामी न भरी । अंत में कहते - सुनते एक शर्त पर राजी हुई । उस शर्त को पूरा करना आपका काम है ।

पद्मसिंह ने विस्मित हो कर विट्ठलास की ओर देखा ।

विट्ठलदास — घबराइए नहीं, बहुत सीधी - सी शर्त है; बस यही कि आप जरा देर के लिए उसके पास चले जाएँ, वह आप से कुछ कहना चाहती है । यह मुझे निश्चय था कि आपको इसमें कोई आपत्ति न होगी, यह शर्त मंजूर कर ली । तो बताइए कब चलने का विचार है ? मेरी समझ में सबेरे चलें ।

किंतु पद्मसिंह विचारशील मनुष्य थे । वह घटों सोच - विचार के बिना कोई फैसले न कर सकते थे । सोचने लगे कि इस शर्त का क्या अभिप्राय है ? वह मुझसे क्या कहना चाहती है ? क्या बात पत्र द्वारा न हो सकती थी ? इसमें कोई - न - कोई रहस्य अवश्य है । आज अबुलकफा ने मेरे बग़ी पर से कूद पड़ने का वृत्तांत उसने कहा होगा । उसने सोचा होगा यह महाशय इस तरह नहीं आते तो यह चाल चलूँ, देखूँ, कैसे नहीं आते । केवल मुझे नीचा दिखाना चाहती है । अच्छा, अगर मैं जाऊँ भी लेकिन पीछे से वह अपना वचन पूरा न करे तो क्या होगा ? यह युक्ति उन्हें अपना गता छुड़ाने के लिए उपयोगी मालूम हुई । बोले, अच्छा अगर वह अपने वचन से फिर जाय तो ?

विट्ठल — फिर क्या जायगी ? ऐसा हो सकता है ?

पद्म — हाँ, ऐसा होना असंभव नहीं ।

विट्ठल — तो क्या आप कोई प्रतिज्ञापत्र लिखवाना चाहते हैं ?

पद्म — नहीं, मुझे संदेह यही है कि वह सुख - विनास छोड़ कर विधवाश्रम में क्यों जाने लगी और सभावाले उसे लेना स्वीकार कब करेंगे ?

विट्ठलदास — सभावालों को मनाना तो मेरा काम है । न मानेंगे तो मैं उसके गुजारे का और कोई प्रबंध करूँगा । रही पहली बात । मान लीजिए, वह अपने वचन को मिथ्या ही कर दे तो इसमें हमारी क्या हानि है ? हमारा कर्तव्य तो पूरा हो जायगा ।

पद्म — हाँ, यह संतोष चाहे हो जाय, लेकिन देख लीजिएगा वह अवश्य धोखा देगी ।

विठ्ठलदास अभीर हो गये; झुंझला कर बोले, अगर धोखा ही दे दिया तो आपका कौन छप्पन टका खर्च हुआ जाता है ।

पद्म — आपके निकट मेरी कुछ प्रतिष्ठा न हो, लेकिन मैं अपने को इतना तुच्छ नहीं समझता ।

विठ्ठल — सारांश यह कि न जाएँगे ?

पद्म — मेरे जाने से कोई लाभ नहीं है । हाँ, यदि मेरा मान - मर्दन करना ही अभीष्ट हो तो दूसरी बात है ।

विठ्ठल — कितने खेद की बात है कि आप एक जातीय कार्य के लिए इतना मीन - मेष निकाल रहे हैं ! शोक ! आप आँखों से देख रहे हैं कि हिंदू जाति की स्त्री कुएँ में गिरी हुई है, और आप उसी जाति के एक विचारवान् पुरुष हो कर उसे निकालने में इतना आगा - पीछा कर रहे हैं ! बस, आप इसी काम के हैं कि मूल्य किसानों और जमींदारों का रक्त चूसें । आप से और कुछ न होगा ।

शर्मा जी ने इस तिरस्कार का उत्तर न दिया । वह मन में अपनी अकर्मण्यता पर स्वयं लज्जित थे और अपने को इस तिरस्कार का भागी समझते थे । लेकिन एक ऐसे पुरुष के झूठ से ये बातें अत्यंत अप्रिय मालूम हुईं, जो इस बुराई का मूल कारण हो । वह बड़ी कठिनाई से प्रत्युत्तर देने के आवेग को रोक सके । यथार्थ में वह सुमन की रक्षा करना चाहते थे, लेकिन गुप्त रीति से; बोले, उसकी और भी तो शर्तें हैं ?

विठ्ठल — जी - हाँ, है तो, लेकिन आपमें उन्हें पूरा करने का सामर्थ्य है ? वह गुजारे के लिए ५० रु० मासिक माँगती है, आप दे सकते हैं ?

शर्मा जी — ५० रु० नहीं, लेकिन २० रु० देने को तैयार हूँ ।

विठ्ठल — शर्मा जी, बाते न बनाइए । एक जरा - सा कष्ट तो आपसे उठाना नहीं जाता, आप २० रु० मासिक देंगे ?

शर्मा जी — मैं आपको वचन देता हूँ कि २० रु० मासिक दिया कलूँगा और अगर मेरी आमदनी कुछ भी बढ़ी तो पूरी रकम दे दूँगा । हाँ, इस समय विवश हूँ । यह २० रु० भी घोड़ागाड़ी बेचने से बच सकेंगे । मालूम नहीं क्यों इन दिनों मेरा बाजार गिरा जा रहा है ।

विठ्ठल — अच्छा, आपने २० रु० दे ही दिये तो शेष कहाँ से आयेंगे ? औरों का तो हाल आप जानते ही हैं, विधवाश्रम के चंदे ही कठिनाई से वसूल होते हैं । मैं जाता हूँ, यथाशक्ति उद्योग कलूँगा, लेकिन यदि कार्य न हुआ तो उसका दोष आपके सिर पड़ेगा ।

११

बाबू विठ्ठलदास अधूरा काम न करते थे। पद्मसिंह की ओर से निराश हो कर उन्हें यह चिंता होने लगी कि सुमनबाई के लिए ५० रु० मासिक का चंदा कैसे करूँ ? उनकी स्थापित की हुई संस्थाएँ चंदों ही से चल रही थी, लेकिन चंदों के वसूल होने से सदैव कठिनाइयों का सामना होता था। विधवाश्रम की इमारत बनाने में हाथ लगाया, लेकिन दो साल से उसकी दीवारें गिरती जाती थी। उन पर छप्पर डालने के लिए रुपये हाथ न आते थे। फ्री लाइब्रेरी की पुस्तकें दीमकों का आहार बनती जाती थी। आल्मारियाँ बनाने के लिए द्रव्य का अभाव था। लेकिन इन बाधाओं के होते हुए भी चंदे के सिवा धन संग्रह का उन्हें और कोई उपाय न सूझा। सेठ बलभद्रदास शहर के प्रधान नेता, आनरेरी मजिस्ट्रेट और म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन थे। पहले उनकी सेवा में उपस्थित हुए। सेठ जी अपने बँगले में आराम कुर्सी पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही दुबले - पतले, गोरे - चिट्टे आदमी थे, बड़े रसिक, बड़े शौकीन। वह प्रत्येक काम में बहुत सोच-समझ कर हाथ डालते थे। विठ्ठलदास का प्रस्ताव सुन कर बोले — प्रस्ताव तो बहुत उत्तम है, लेकिन यह बताइए, सुमन को आप रखना कहाँ चाहते हैं ?

विठ्ठलदास — विधवाश्रम में।

बलभद्र — आश्रम सारे नगर में बदनाम हो जायगा, और संभव है कि अन्य विधवाएँ भी छोड़ भागें।

विठ्ठल — तो अलग मकान ले कर रख दूँगा।

बलभद्र — मुहल्ले के नवयुवकों में छुरी चल जायगी।

विठ्ठल — तो फिर आप ही कोई उपाय बताइए।

बलभद्र — मेरी सम्मति तो यह है कि आप इस झगड़े में न पड़ें। जिस स्त्री को लोक-निंदा की लाज नहीं, उसे कोई शक्ति नहीं सुधार सकती। यह नियम है कि जब हमारा कोई अंग विकृत हो जाता है तो उसे काट डालते हैं, जिसमें उसका विष समस्त शरीर को नष्ट न कर डाले। समाज में भी उसी नियम का पालन करना चाहिए। मैं देखता हूँ कि आप मुझसे सहमत नहीं हैं, लेकिन मेरा जो विचार था वह मैंने स्पष्ट कह दिया। आश्रम की प्रबंध-कारिणी सभा का एक मेम्बर मैं भी तो हूँ ? मैं किसी तरह इस वेश्या को आश्रम में रखने की सलाह न दूँगा।

विठ्ठलदास ने रोष से कहा, सारांश यह कि इस काम में आप मुझे कोई सहायता नहीं दे सकते ? जब आप जैसे महापुरुषों का यह हाल है तो दूसरों से क्या आशा हो सकती है। मैंने आपका बहुत समय नष्ट किया, इसके लिए क्षमा

कीजिएगा।

यह कह कर विठ्ठलदास उठ खड़े हुए और सेठ चिम्मनलाल की सेवा में पहुँचे। यह साँवले रंग के बेडौल मनुष्य थे। बहुत ही स्थूल; ढीले-ढाले शरीर में हाड़ की जगह मांस और मांस की जगह वायु भरी हुई थी। उनके विचार भी शरीर ही के समान बेडौल थे। वह ऋषि-धर्म-सभा के सभापति, रामलीला कमेटी के चेयर-मैन और राम-लीला-परिषद् के प्रबंधकर्त्ता थे। राजनीति को विषभरा साँप समझते थे और समाचार-पत्रों को साँप की बाँबी। उच्च अधिकारियों से मिलने की धुन थी। अंग्रेजों के समाज में उनका विशेष मान था। वहाँ उनके सद्गुणों की बड़ी प्रशंसा होती थी। वह उदार न थे, न कृपण। इस विषय में चंदे की नामावली उनका मार्ग निश्चय किया करती थी। उनमें एक बड़ा गुण था जो उनकी दुर्बलताओं को छिपाये रहता था। यह उनकी विनोदशीलता थी।

विठ्ठलदास का प्रस्ताव सुन कर बोले, महाशय, आप भी बिलकुल शुष्क मनुष्य हैं। आप में जरा भी रस नहीं। मुद्दत के बाद तो दालमडी में एक चीज नजर आयी, आप उसे भी गायब करने पर तुले हुए हैं। कम-से-कम अब की रामलीला तो हो जाने दीजिए। राजगद्दी के दिन उसका जल्सा होगा, धूम मच जायगी। आखिर तुर्किनें आकर मंदिर को भ्रष्ट करती हैं, ब्राह्मणी रहे तो क्या बुरा है। खैर यह तो दिल्गुनी हुई। क्षमा कीजिएगा। आपको धन्यवाद है कि ऐसे-ऐसे शुभ कार्य आपके हाथों पूरे होते हैं। कहाँ है चंदे की फिहरिस्त !

विठ्ठलदास ने सिर खुजलाते हुए कहा, अभी तो मैं केवल सेठ बलभद्रदास जी के पास गया था, लेकिन आप जानते ही हैं, वह एक बैठकबाज हैं, इधर-उधर की बातें करके टाल दिया।

अगर बलभद्रदास ने एक लिखा होता तो यहाँ दो में संदेह न था। दो लिखते तो चार का निश्चित था। जब गुण कहीं शून्य हो तो गुणनफल शून्य के सिवा और क्या हो सकता था, लेकिन बहाना क्या करते ? तुरंत एक आश्रय मिल गया। बोले—महाशय, मुझे आप से पूरी सहानुभूति है। लेकिन बलभद्रदास ने कुछ समझ कर ही टाला होगा। जब मैं भी दूर तक समझता हूँ तो इस प्रस्ताव में कुछ राज-नीति का रंग दिखायी देता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। आप चाहे इसे उस दृष्टि से न देखते हों, लेकिन मुझे तो इसमें गुप्त राजनीति भरी हुई साफ नजर आती है। मुसलमानों को यह बात अवश्य बुरी मालूम होगी, वह जाकर अधिकारियों से इसकी शिकायत करेंगे। अधिकारियों को आप जानते ही हैं, आँखें नहीं, केवल कान होते हैं। उन्हें तुरंत किसी पड़मंत्र का संदेह हो जायगा।

विठ्ठलदास ने झुंझला कर कहा, साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैं कुछ नहीं देना चाहता ?

चिम्मनलाल — आप ऐसा ही समझ लीजिए । मैंने सारी जाति का कोई ठेका थोड़े ही लिया है ?

विठ्ठलदास का मनोरथ यहाँ भी पूरा नहीं हुआ, लेकिन यह उनके लिए कुछ नयी बात न थी । ऐसे निराशाजनक अनुभव उन्हें नित्य ही हुआ करते थे । यहाँ से डाक्टर श्यामाचरण के पास पहुँचे । डाक्टर महोदय बड़े समझदार और विद्वान् पुरुष थे । शहर के प्रधान राजनीतिक नेता थे, उनकी वकालत खूब चमकी हुई थी । बहुत तौल - तौल कर मुँह से शब्द निकलते थे । उनकी मौन गंभीरता विचारशीलता का द्योतक समझी जाती थी । शांति के भक्त थे, इसलिए उनके विरोध से न किसी को हानि थी, न उनके योग से किसी को लाभ । सभी तरह के लोग उन्हें अपना मित्र समझते थे, सभी अपना शत्रु । वह अपनी कमिश्नरी की ओर से सूबे की सला - हकारी सभा के सभासद थे । विठ्ठलदास की बात सुन कर बोले, मेरे योग्य जो सेवा हो वह करने को तैयार हूँ । लेकिन उद्योग यह होना चाहिए कि उन कुप्रथाओं का सुधार किया जाय जिनके कारण ऐसी समस्याएँ उपस्थित होती हैं । इस समय आप एक की रक्षा कर ही लेगे तो इससे क्या होगा ? यहाँ तो नित्य ही ऐसी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं । मूल कारणों का सुधार होना चाहिए । कहिए तो कौंसिल में कोई प्रश्न कहूँ ।

विठ्ठलदास उछल कर बोले, जी हाँ, यह तो बहुत ही उत्तम होगा ।

डाक्टर साहब ने तुरंत प्रश्नों की एक माला तैयार की —

१. क्या गवर्नमेंट बता सकती है कि गत वर्ष वेश्याओं की संख्या कितनी बढ़ी ?

२. क्या गवर्नमेंट ने इस बात का पता लगाया है कि इस वृद्धि के क्या कारण हैं और गवर्नमेंट उसे रोकने के लिए क्या उपाय करना चाहती है ?

३. ये कारण कहाँ तक मनोविकारों से संबंध रखते हैं, कहाँ तक आर्थिक स्थिति से और कहाँ तक सामाजिक कुप्रथाओं से ?

इसके बाद डाक्टर साहब अपने मुक्किलो से बातचीत करने लगे, विठ्ठलदास आध घंटे तक बैठे रहे, अंत में अधीर हो कर बोले, तो मुझे क्या आज्ञा होती है ?

श्यामाचरण — आप इतमीनान रखें, अब की कौंसिल की बैठक में मैं गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित करूँगा ।

विठ्ठलदास के जी में आया कि डाक्टर साहब को आड़े हाथों लूँ, किंतु कुछ सोच कर चुप रह गये । फिर किसी बड़े आदमी के पास जाने का साहस न हुआ । लेकिन उस कर्मवीर ने उद्योग से मुँह नहीं मोड़ा । नित्य किसी सज्जन के पास जाते और उससे सहायता की याचना करते । यह उद्योग सर्वथा निष्फल तो नहीं हुआ । उन्हें कई सौ रुपये के वचन और कई सौ रुपये नगद मिल गये, लेकिन ३० २०

मासिक की कमी थी वह इतने धन से क्या पूरी होती ? तीन महीने की दौड़ - धूप के बाद वह बड़े मुश्किल से १० रु० मासिक का प्रबंध करने में सफल हो सके ।

अतः जब उन्हें अधिक सहायता की कोई आशा न रही तो वह एक दिन प्रातः काल सुमन बाई के पास गये । वह इन्हें देखते ही कुछ अनमन - सी हो कर बोली, कहिए महाशय, कैसे कृपा की ?

विठ्ठल — तुम्हें अपना वचन याद है ?

सुमन — इतने दिनों की बातें अगर मुझे भूल जायें तो मेरा दोष नहीं ।

विठ्ठल — मैंने तो बहुत चाहा कि शीघ्र ही प्रबन्ध हो जाय, लेकिन ऐसी जाति से पाला पड़ा है जिसमें जातीयता का सर्वथा लोप हो गया है । तिस पर भी मेरा उद्योग बिलकुल व्यर्थ नहीं हुआ । मैंने ३० रु० मासिक का प्रबंध कर लिया है और आशा है कि और जो कसर है वह भी पूरी हो जायगी । अब तुमसे यह मेरी प्रार्थना है कि इसे स्वीकार करो और आज ही इस नरककुंड को छोड़ दो ।

सुमन — शर्मा जी को आप नहीं ला सके क्या ?

विठ्ठल — वह किसी तरह आने पर राजी न हुए । इस ३० रु० में २० रु० मासिक का वचन उन्हीं ने दिया है ।

सुमन ने विस्मित हो कर कहा, अच्छा ! वह तो बड़े उदार निकले । सेठों से भी कुछ मदद मिली ?

विठ्ठल — सेठों की बात न पूछो । चिम्नलाल रामलीला के लिए हजार दो हजार रुपये खुशी से दे देगे । बलभद्रदास से अफसरों की बर्खास्त के लिए इससे भी अधिक मिल सकता है, लेकिन इस विषय में उन्होंने कोरा जवाब दिया ।

सुमन इस समय सदन के प्रेमजाल में फँसी हुई थी । प्रेम का आनंद उसे कभी नहीं प्राप्त हुआ था, इस दुर्लभ रत्न को पा कर वह उसे हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी । यद्यपि वह जानती थी कि इस प्रेम का परिणाम वियोग के सिवा और कुछ नहीं हो सकता, लेकिन उसका मन कहता था कि जब तक वह आनंद मिलता है तब तक उसे क्यों न भोगूँ । आगे चल कर न जाने क्या होगा, जीवन की नाव न जाने किस - किस भँवर में पड़ेगी, न जाने कहाँ - कहाँ भटकेगी । भावी चिंताओं को वह अपने पास न आने देती थी क्योंकि उधर भ्रमंकर अंधकार के सिवा और कुछ न सूझता था । अतएव जीवन के सुधार का वह उत्साह, जिसके वशीभूत हो कर उसने विठ्ठलदास से वह प्रस्ताव किये थे, क्षीण हो गया था । इस समय अगर विठ्ठलदास १०० रु० मासिक का लोभ दिखाते तो भी वह खुश न होती, किंतु एक बार जो बात खुद उठायी थी उससे फिरते हुए शर्म आती थी । बोली, मैं इसका जवाब आपको कल दूँगी । अभी कुछ सोच लेने दीजिए ।

विठ्ठल — इसमें क्या सोचना - समझना है ?

मुमन — कुछ नहीं, लेकिन कल ही पर रखिए ।

रात के दस बज गये थे । शरद् ऋतु की सुनहरी चाँदनी छिंटकी हुई थी । मुमन खिड़की से नीलवर्ण आकाश की ओर ताक रही थी । जैसे चाँदनी के प्रकाश में तारागण की ज्योति मलीन पड़ गयी थी, उसी प्रकार उसके हृदय में चंद्ररूपी सुविचार ने विकाररूपी तारागण को ज्योतिहीन कर दिया था ।

मुमन के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित थी, विट्ठलदास को क्या उत्तर दूँ ।

आज प्रातःकाल उसने कल जवाब देने का बहाना करके विट्ठलदास को टाला था । लेकिन दिन - भर के सोच - विचार ने उसके विचारों में संशोधन कर दिया था ।

मुमन को यद्यपि यहाँ भोग - विलास के सभी सामान प्राप्त थे, लेकिन बहुधा उसे ऐसे मनुष्यों की आवभगत करनी पड़ती थी जिनकी सूरत से उसे घृणा होती थी, जिनकी बातों को मुन कर उसका जी मिचलाने लगता था । अभी उसके मन में उत्तम भावों का सर्वथा लोप नहीं हुआ था । वह उस अधोगति को नहीं पहुँची थी जहाँ दुर्बल हृदय के समस्त भावों को नष्ट कर देता है । इसमें संदेह नहीं कि वह विलास की सामग्रियों पर जान देती थी, लेकिन इन सामग्रियों की प्राप्ति के लिए जिस बेहयाई की जरूरत थी वह उसके लिए असह्य थी और कभी - कभी एकांत में वह अपनी वर्तमान दशा की पूर्वावस्था से तुलना किया करती थी । वहाँ यह टीम - टाम न थी, किंतु वह अपने समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती थी । वह अपनी पड़ोसियों के सामने अपनी कुलीनता पर गर्व कर सकती थी, अपनी धार्मिकता और भक्तिभाव का रोब जमा सकती थी । किसी के सम्मुख उसका सिर नीचा नहीं होता था । लेकिन यहाँ उसके सगर्व हृदय को पग - पग पर लज्जा से मुँह छिपाना पड़ता था । उसे ज्ञात होता था कि मैं किसी कुलटा के सामने भी सिर उठाने योग्य नहीं हूँ । जो निरादर और अपमान उसे उस समय सहने पड़ते थे उनकी अपेक्षा यहाँ की प्रेम - वार्ता और आँखों की सनकियाँ अधिक दुःखजनक प्रतीत होती थीं और उसके भाव - पूर्ण हृदय पर कुठाराघात कर देती थी । तब उसका व्यथित हृदय पद्मसिंह पर दाँत पीस कर रह जाता था । यदि उस निर्दय मनुष्य ने अपनी बदनामी के भय से मेरी अवहेलना न की होती तो मुझे इस पापकुंड में कूदने का साहस न होता । अगर वह मुझे चार दिन भी पड़ा रहने देते तो कदाचित् मैं अपने घर लौट जाती अथवा वह (गजाधर) ही मुझे मर्ना ले जाते, फिर उसी प्रकार लड़-झगड़ कर जीवन के दिन काटने - कटने लगते । इसीलिए उसने विट्ठलदास से पद्मसिंह को अपने साथ लाने की शर्त की थी ।

लेकिन आज जब विट्ठलदास से उसे ज्ञात हुआ कि शर्मा जी मुझे उबारने के

लिए कितने उत्सुक हो रहे हैं और कितनी उदारता के साथ मेरी सहायता करने पर तैयार हैं तो उनके प्रति घृणा के स्थान पर उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह बड़े सज्जन पुरुष है। मैं खामखाह अपने दुराचार का दोष उनके सिर रखती हूँ। उन्होंने मुझे पर दया की। मैं जा कर उनके पैरों पर गिर पड़ूंगी और कहूँगी कि आपने इस अभागिन का उपकार किया है उसका बदला आपको ईश्वर देंगे। यह कंगन भी लौटा दूँ, जिसमें उन्हें यह सतोष हो जाय कि जिस आत्मा की मैंने रक्षा की है वह सर्वथा उसके अयोग्य नहीं है। बस, वहाँ से आ कर इस पाप के मायाजाल से निकल भागूँ।

लेकिन सदन को कैसे भुलाऊँगी ?

अपने मन की चंचलता पर वह झुझला पड़ी। क्या उस पाप-मय प्रेम के लिए जीवन-सुधारक इस दुर्लभ अवसर को हाथ से जाने दूँ ! चार दिन की चाँदनी के लिए सदैव पाप के अधिकार में पड़ी रहूँ ? अपने हाथ से एक सरल हृदय युवक का जीवन नष्ट करूँ ? जिस सज्जन पुरुष ने मेरे साथ वह सद्ब्यवहार किया है उन्हीं के साथ यह छल ! यह कपट ! नहीं, मैं इस दूषित प्रेम को हृदय से निकाल दूँगी। सदन को भूल जाऊँगी। उससे कहूँगी, तुम भी मुझे इस मायाजाल से निकलने दो।

आह ! मुझे कैसा धोखा हुआ ! यह स्थान दूर से कितना सुहावना, कितना मनोरम, कितना सुखमय दिखायी देता था। मैंने इसे फूलों का बाग समझा, लेकिन है क्या ? एक भयकर वन, मांसाहारी पशुओं और विषैले कीड़ों से भरा हुआ !

यह नदी दूर से चाँद की चादर-सी बिछी हुई कैसी भली मालूम होती थी ? पर अंदर क्या मिलता है ? बड़े-बड़े विकराल जल-जन्तुओं का क्रीड़ास्थल ! सुमन इसी प्रकार विचार-सागर में मग्न थी। उसे यह उत्कंठा हो रही थी कि किसी तरह सबेरा हो जाय और विट्ठलदास आ जायें, किसी तरह यहाँ से निकल भागूँ। आधी रात बीत गयी और उसे नीद न आयी। धीरे-धीरे उसे शंका होने लगी कि कहीं सबेरे विट्ठलदास न आये तो क्या होगा ? क्या मुझे फिर यहाँ प्रातःकाल से संध्या तक मीरासियों और धाड़ियों की चापलूसियाँ सुननी पड़ेंगी। फिर पाप-रजोलित पुतलियों का आदर-सम्मान करना पड़ेगा ? सुमन को यहाँ रहते हुए अभी छः मास भी पूरे नहीं हुए थे, लेकिन इतने ही दिनों में उसे यहाँ का पूरा अनुभव हो गया था। उसके यहाँ सारे दिन मीरासियों का जमघट रहता था। वह अपने दुराचार, छल और क्षुद्रता की कथाएँ बड़े गर्व से कहते। उनमें कोई चतुर गिरहकट था, कोई धूर्त ताश खेलने वाला, कोई टपके की विद्या में निपुण, कोई दीवार फाँदने के फन का उस्ताद और सब-के-सब दुस्साहस और दुर्बलता पर फूले हुए। पड़ोस की रमणियाँ भी नित्य आती थी, रेंगी, बनी-ठनी, दीपक के समान जगमगाती हुई, किंतु यह स्वर्ण-पात्र थे, हलाहल से भरे हुए पात्र — उनमें कितना छिछोरापन

था ! कितना छल ! कितनी कुवासना ! वह अपनी निर्लज्जता और कुकर्मों के वृत्तात कितने मजे ले - ले कर कहती । उनमें लज्जा का अंश भी न रहा था । सदैव ठगने की, छलने की धुन, मन सदैव पाप - तृष्णा में लिप्त । शहर में जो लोग सच्चरित्र थे उन्हें यहाँ खूब गालियाँ दी जाती थी, उनकी खूब हँसी उड़ायी जाती थी, बुद्ध, गौखा आदि की पदवियाँ दी जाती थी । दिन - भर सारे शहर की चोरी और डाके, हत्या और व्यभिचार, गर्भपात और विश्वासघात की घटनाओं की चर्चा रहती । यहाँ का आदर और प्रेम अब अपने यथार्थ रूप में दिखायी देता था । यह प्रेम नहीं था, आदर नहीं था, केवल कामलिप्सा थी । अब तक सुमन धैर्य के साथ वह सारी विपत्तियाँ झेलती थी, उसने समझ लिया था कि अब इसी नरककुंड में जीवन व्यतीत करना है तो इन बातों से कहाँ तक भागूँ ? नरक में पड़ कर नारकीय धर्म का पालन करना अनिवार्य था । पहली बार विठ्ठलदास जब उसके पास आये थे तो उसने मन में उनकी उपेक्षा की थी, उस समय तक उसे यहाँ के रंग ढग का ज्ञान न था । लेकिन आज मुक्ति का द्वार सामने खुला देख कर इस कारागार में उसे क्षण - भर भी ठहरना असह्य हो रहा था । जिस तरह अवसर पा कर मनुष्य की पापचेष्टा जाग्रत हो जाती है, उसी प्रकार अवसर पा कर उसकी धर्मचेष्टा भी जाग्रत हो जाती है । रात के तीन बजे थे । सुमन अभी तक करवटे बदल रही थी, उसका मन बलात् सदन की ओर खिंचता था । ज्यों - ज्यों प्रभात निकट आता था, उसकी व्यग्रता बढ़ती जाती थी । वह अपने मन को समझा रही थी । तू इस प्रेम पर फूला हुआ है ? क्या तुझे मालूम नहीं कि इसका आधार केवल रंग - रूप है ! यह प्रेम नहीं है, प्रेम की लालसा है । यहाँ कोई सच्चा प्रेम करने नहीं आता । जिस भाँति मंदिर में कोई सच्ची उपासना करने नहीं जाता, उसी प्रकार इस मंडी में कोई प्रेम का सौदा करने नहीं आता, सब लोग केवल मन बहलाने के लिए आते हैं । इस प्रेम के भ्रम में मत पड़ ।

अरुणोदय के समय सुमन को नीद आ गयी ।

१२

विठ्ठलदास को सन्देह हुआ कि सुमन ३० रु० मासिक स्वीकार नहीं करना चाहती, इसलिए उसने कल उत्तर देने का बहाना करके मुझे टाला है । अतएव वह दूसरे दिन उसके पास नहीं गये, इसी चिंता में पड़े रहे कि शेष रुपयों का कैसे प्रबंध हो ? कभी सोचते, दूसरे शहर में डेपुटेशन ले जाऊँ, कभी कोई नाटक खेलने का विचार करते । अगर उनका वश चलता तो इस शहर के सारे बड़े - बड़े धनाढ्य

पुरुषों को जहाज में भर कर काले-पानी भेज देते। शहर में एक कुँवर अनिरुद्ध - सिंह सज्जन, उदार पुरुष रहते थे। लेकिन बिट्टलदास उनके द्वार तक जा कर केवल इसलिए लौट आये कि उन्हें वहाँ तबले की गमक सुनायी दी। उन्होंने मन में सोचा, जो मनुष्य राग-रंग में इतना लिप्त है वह इस काम में मेरी क्या सहायता करेगा? इस समय उनकी सहायता करना उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा पुण्य और उनकी उपेक्षा करना सबसे बड़ा पाप था। वह इसी सकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि सुमन के पास चर्लू या न चर्लू। इतने में पंडित पद्मसिंह आते हुए दिखायी दिये, आँखें चड़ी हुई लाल और बदन मलिन था। ज्ञात होता था कि सारी रात जागे हैं। चिंता और ग्लानि की मूर्ति बने हुए थे। तीन महीने से बिट्टलदास उनके पास नहीं गये थे, उनको ओर से हृदय फट गया था। लेकिन शर्मा जी की यह दशा देखते ही विघल गये और प्रेम से हाथ मिला कर बोले, भाई साहब, उदास दिखायी देते हो, कुशल तो है?

शर्मा — जी हाँ, सब कुशल ही है। इधर महीनों से आपसे भेंट नहीं हुई, मिलने को जी चाहता था, सुमन के विषय में क्या निश्चय किया?

बिट्टल — उसी चिंता में तो दिन रात पड़ा रहता हूँ। इतना बड़ा शहर है पर ३० ६० मासिक का प्रबंध नहीं हो सकता। मुझे ऐसा अनुमान होता है कि मुझे माँगना नहीं आता। कदाचित् मुझमें किसी के हृदय को आकर्षित करने की सामर्थ्य नहीं है। मैं दूसरों को दोष देता हूँ, पर वास्तव में दोष मेरा ही है। अभी तक केवल १० ६० का प्रबंध हो सका है! जितने रईस हैं सब-के-सब पाषाण हृदय। अजी, रईसों की बात तो न्यायी रही, मि० प्रभाकरराव ने भी कोरा जवाब दिया। उनके लेखों को पढ़ो तो मालूम होता है कि देशानुराग और दया के सागर हैं, होली के जलसे के बाद महीनों तक आप पर विष की वर्षा करते रहे, लेकिन कल जो उनकी सेवा में गया तो बोले क्या जाति का सबसे बड़ा ऋणी मैं ही हूँ? मेरे पास लेखनी है, उससे जाति की सेवा करता हूँ। जिसके पास धन हो, वह धन से सेवा करे। उनकी बातें सुन कर चकित रह गया। नया मकान बनवा रहे हैं, कोयले की कंपनी में हिस्से खरीदे हैं, लेकिन इस जातीय काम से साफ निकल गये। अजी, और लोग जरा सकुचाते तो हैं, उन्होंने तो उल्टे मुझी को आड़े हाथों लिया।

शर्मा जी — आपको निश्चय है कि सुमन बाई ५० ६० पर विधवाश्रम में चली आयेंगी?

बिट्टल — हाँ मुझे निश्चय है। यह दूसरी बात है कि आश्रम कमेटी उसे लेना पसंद न करे। तब कोई और प्रबंध करूँगा।

शर्मा — अच्छा तो लीजिए, आपकी चिंताओं का अंत किये देता हूँ, मैं ५० ६० मासिक देने पर तैयार हूँ और ईश्वर ने चाहा तो आजन्म देना रूँगा।

विठ्ठलदास ने विस्मय से शर्मा जी की तरफ देखा और कृतज्ञतापूर्वक उनके गले लिपट कर बोले, भाई साहब, तुम धन्य हो ! इस समय तुमने वह काम किया है कि जी चाहता है, तुम्हारे पैरों पर गिर कर रोऊँ । तुमने हिंदू जाति की लाज रख ली और सारे लखपतियों के मुँह में कालिख लगा दी । लेकिन इतना भारी बोझ कैसे सँभालोगे ?

शर्मा — सब हो जायगा, ईश्वर कोई - न - कोई राह अवश्य निकालेंगे ही ।

विठ्ठल — आजकल आमदनी अच्छी हो रही है क्या ?

शर्मा — आमदनी नहीं पत्थर हो रही है । घोड़ागाड़ी बेच दूँगा, ३० रु० की बचत यो हो जायगी, बिजली का खर्च तोड़ दूँगा, १० रु० यो निकल आयेगे, १० रु० और इधर - उधर से खींच - खाँच कर निकाल लूँगा ।

विठ्ठल — तुम्हारे ऊपर अकेले इतना बोझ डालते हुए मुझे कष्ट हो रहा है, पर क्या करूँ, शहर के बड़े आदमियों से हारा हुआ हूँ । गाड़ी बेच दोगे तो कचहरी कैसे जाओगे ? रोज किराये की गाड़ी करनी पड़ेगी ?

शर्मा — जी नहीं, किराये की गाड़ी की जरूरत न पड़ेगी । मेरे भतीजे ने एक सव्वा घोड़ा ले रखा है, उसी पर बैठ कर चला जाया करूँगा ।

विठ्ठल — अरे वही तो नहीं है, जो कभी - कभी शाम को चौक में घूमने निकला करता है ?

शर्मा — संभव है वही हो ।

विठ्ठल — सूरत आपसे बहुत मिलती है, धारीदार सज का कोट पहनता है, खूब हूट - पुट है, गौरा रंग, बड़ी - बड़ी आँखें, कसरती जवान है ।

शर्मा — जी हाँ, हुलिया तो आप ठीक बताते हैं । वही है ।

विठ्ठल — आप उसे बाजार में घूमने से रोकते क्यों नहीं ?

शर्मा — मुझे क्या मालूम कहाँ घूमने जाता है । संभव है कभी - कभी बाजार की तरफ चला जाता हो, लेकिन लड़का सच्चरित्र है — इसलिए मैंने चिंता नहीं की ।

विठ्ठल — यह आपसे बड़ी भूल हुई । पहले वह चाहे जितना सच्चरित्र हो, लेकिन आजकल उसके रंग अच्छे नहीं हैं । मैंने उसे एक बार नहीं कई बार वहाँ देखा है, जहाँ न देखना चाहिए था । सुमन बाई के प्रेम - जाल में पड़ा हुआ मालूम होता है ।

शर्मा जी के होश उड़ गये । बोले, यह तो आपने बुरी खबर सुनायी । वह मेरे कुल का दीपक है, अगर वह कुपय पर चला तो मेरी जान ही पर बन जायगी । मैं शर्म के मारे भाई साहब को मुँह न दिखा सकूँगा ।

यह कहते - कहते शर्मा जी की आँखें सजल हो गयीं । फिर बोले, महाशय,

उसे किसी तरह समझाइए। भाई साहब के कानों में इस बात की भनक भी गयी तो वह मेरा मुँह न देखेगा।

विठ्ठल — नहीं, उसे मार्ग पर लाने के लिए उद्योग किया जायगा। मुझे आज तक मालूम ही न था कि वह आपका भतीजा है। मैं आज ही इस काम पर उतारू हो जाऊँगा और सुमन कल तक वहाँ से चली आयी तो वह आप ही सँभल जायगा।

शर्मा — सुमन के चले आने से बाजार थोड़े ही खाली हो जायगा। किसी दूसरी के पंजे में फँस जायगा। क्या कहूँ, उसे घर भेज दूँ ?

विठ्ठल — वहाँ अब वह रह चुका, पहले तो जायगा ही नहीं, और गया भी तो दूसरे ही दिन भागेगा। [यौवनकाल की दुर्वासनाएँ बड़ी प्रबल होती हैं। कुछ नहीं, यह सब इसी कुप्रथा की करामात है, जिसने नगर के सार्वजनिक स्थानों को अपना कार्यक्षेत्र बना रखा है। यह कितना बड़ा अत्याचार है कि ऐसे मनोविकार पैदा करने वाले दृश्यों को गुप्त रखने के बदले हम उनकी दूकान सजाते हैं और अपने भोले-भाले सरल बालकों की कुप्रवृत्तियों को जगाते हैं। मालूम नहीं यह कुप्रथा कैसे चली ? मैं तो समझता हूँ कि विषयी मुसलमान बादशाहों के समय इसका जन्म हुआ होगा। जहाँ ग्रंथालय, धर्म-सभाएँ और सुधारक संस्थाओं के स्थान होने चाहिए, वहाँ हम रूप का बाजार सजाते हैं। यह कुवासनाओं को नेकता देना नहीं तो और क्या है ? हम जान-बूझ कर युवकों को गड्ढे में ढकेलते हैं। शोक !

शर्मा — आपने इस विषय में कुछ आंदोलन तो किया था ?

विठ्ठल — हाँ, किया तो था, लेकिन जिस प्रकार आप एक बार मौखिक सहानुभूति प्रकट करके मौन साध गये, उसी प्रकार अन्य सहायकों ने भी आना-कानी की, तो भाई, अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता ? मेरे पास न धन है, न ऐश्वर्य है, न उच्च उपाधियाँ हैं, मेरी कौन सुनता है ? लोग समझते हैं, बक्की है ! नगर में इतने सुयोग्य विद्वान् पुरुष चैन से सुख भोग कर रहे हैं, कोई झूल कर भी मेरी नहीं सुनता।

शर्मा जी शिथिल प्रकृति के मनुष्य थे। उन्हें कर्तव्य-क्षेत्र में लाने के लिए किसी प्रबल उत्तेजना की आवश्यकता थी। मित्रों की वाह-वाह जो प्रायः मनुष्य की सुनावस्था को भग किया करती है उनके लिए काफी न थी। वह सोते नहीं थे, जागते थे। केवल आलस्य के कारण पड़े हुए थे। इसलिए उन्हें जगाने के लिए चिल्ला कर पुकारने की इतनी जरूरत नहीं थी जितनी किसी विशेष बात की। यह कितनी अनोखी लेकिन यथार्थ बात है कि सोये हुए मनुष्य को जगाने की अपेक्षा जागते हुए मनुष्य को जगाना कठिन है। सोता हुआ आदमी अपना नाम सुनते ही

चौक कर उठ बैठा है, जागता हुआ मनुष्य सोचता है कि यह किसकी आवाज है ? उसे मुझसे क्या काम है ? इससे मेरा काम तो न निकल सकेगा ? जब इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर उसे मिलता है, तो वह उठता है, नहीं तो पड़ा रहता है । पद्मसिंह इन्हीं जागते हुए आलसियों में से थे । कई बार जातीय पुकार की ध्वनि उनके कानों में आयी थी, किंतु वे सुन कर भी न उठे । इस समय जो पुकार उनके कानों में पहुँच रही थी उसने उन्हें बलात् उठा दिया । अपने भतीजे को, जिसे वह पुत्र से भी बढ कर प्यार करते थे, कुमार से बचाने के लिए, अपने भाई की अप्रसन्नता का निवारण करने के लिए वे सब कुछ कर सकते थे । जिस कुव्य-वस्था का ऐसा भयंकर परिणाम हुआ उसके मूर्च्छावृत्त पर कटिबद्ध होने के लिए अन्य प्रमाणों की जरूरत न थी । बाल-विधवा-विवाह के घोर शत्रुओं को भी जब-तब उसका समर्थन करते देखा गया । प्रत्यक्ष उदाहरण से प्रबल और कोई प्रमाण नहीं होता । शर्मा जी बोले, यदि मैं आपके किसी काम आ सकूँ तो आपकी सहायता करने को तैयार हूँ ।

विठ्ठलदास उल्लसित हो कर बोले, भाई साहब, अगर तुम मेरा हाथ बटाओ तो मैं धरती और आकाश एक कर दूँगा ; लेकिन क्षमा करना, तुम्हारे संकल्प दृढ नहीं होते । अभी यों कहते हो, कल ही उदासीन हो जाओगे । ऐसे कामों में धैर्य की बड़ी जरूरत है ।

शर्मा जी लज्जित हो कर बोले, ईश्वर चाहेगा तो अबकी आपको इसकी शिकायत न रहेगी ।

विठ्ठल — तब तो हमारा सफल होना निश्चित है ।

शर्मा — यह तो ईश्वर के हाथ है । मुझे न तो बोलना आता है, न लिखना आता है, बस आप जिस राह पर लगा देंगे, उसी पर आँख बंद किये चला जाऊँगा ।

विठ्ठल — अजी सब आ जायगा, केवल उत्साह चाहिए । दृढ संकल्प हवा में किले बना देता है । आपकी वक्तृताओं में तो वह प्रभाव होगा कि लोग सुन कर दंग हो जायेंगे । हाँ, इतना स्मरण रखिएगा कि हिम्मत नहीं हारनी चाहिए ।

शर्मा — आप मुझे सँभाले रहिएगा ।

विठ्ठल — अच्छा, तो अब मेरे उद्देश्य भी सुन लीजिए । मेरा पहला उद्देश्य है, कि वेश्याओं को सार्वजनिक स्थान से हटाना और दूसरा, वेश्याओं के नाचने-गाने की रस्म को मिटाना । आप मुझसे सहमत हैं या नहीं ?

शर्मा — क्या अब भी कोई संदेह है ?

विठ्ठल — नाच के विषय में आपके यह विचार तो नहीं है ?

शर्मा — अब क्या एक घर जला कर भी वही खेल खेलता रहूँगा । उन

दिनों मुझे न जाने क्या हो गया था, मुझे अब यह निश्चय हो गया है कि मेरे उसी जलसे ने सुमनबाई को घर से निकाला ! लेकिन यहाँ मुझे एक शंका होती है । आखिर हम लोगों ने भी तो शहरों ही में इतना जीवन व्यतीत किया है, हम लोग इन दुर्वासनाओं में क्यों नहीं पड़े ? नाच भी शहर में आये दिन हुआ ही करते हैं, लेकिन उनका ऐसा भोषण परिणाम होते बहुत कम देखा गया है । इससे यही सिद्ध होता है कि इस विषय में मनुष्य का स्वभाव ही प्रधान है । आप इस आदोलन से स्वभाव तो नहीं बदल सकते ।

विट्ठल — हमारा यह उद्देश्य ही नहीं, हम तो केवल उन दशाओं का संशोधन करना चाहते हैं जो दुर्बल स्वभाव के अनुकूल हैं, और कुछ नहीं चाहते । कुछ मनुष्य जन्म ही से स्थूल होते हैं, उनके लिए खाने - पीने की किसी विशेष वस्तु की जरूरत नहीं । कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो घी - दूध आदि का इच्छापूर्वक सेवन करने से स्थूल हो जाते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सदैव दुबले रहते हैं, वह चाहे घी - दूध के मटके ही में रख दिये जायें तो भी मोटे नहीं हो सकने । हसारा प्रयोजन केवल दूसरी श्रेणी के मनुष्यों से है । हम और आप जैसे मनुष्य क्या दुर्वसन में पड़ेंगे, जिन्हें पेट के धंधों से कभी छुट्टी ही नहीं मिली, जिन्हें कभी यह विश्वास ही नहीं हुआ कि प्रेम की मंडी में उनकी आवभगत होगी । वहाँ तो वह फँसते हैं, जो धनी हैं, रूपवान् हैं, उदार हैं, रसिक हैं स्त्रियों को अगर ईश्वर सुदरता दे तो धन से वंचित न रखे । धन - हीन, सुदर, चतुर स्त्री पर दुर्वसन का मंत्र शीघ्र ही चल जाता है ।

१३

सुमन ने मन में निश्चय कर लिया कि प्रातःकाल विट्ठलदास के पास चलीगी और उनसे कहूँगी कि मुझे आश्रय दीजिए । मैं आप से कोई सहायता नहीं चाहती, केवल एक सुरक्षित स्थान चाहती हूँ । चक्की पीसूँगी, कपड़े सोऊँगी, और किसी तरह अपना निर्वाह कर लूँगी ।

सबेरा हुआ । वह उठी और विट्ठलदास के घर चलने की तैयारी करने लगी कि इतने में वह स्वयं आ पहुँचे । सुमन को ऐसा आनंद हुआ जैसे किसी भक्त को आराध्यदेव के दर्शन से होता है । बोली, आइए महाशय ! मैं तो कल दिन - भर आपकी राह देखती रही, इस समय आपके यहाँ जाने का विचार कर रही थी ।

विट्ठलदास — कल कई कारणों से नहीं आ सका ।

सुमन — तो आपने मेरे रहने का कोई प्रबंध किया ?

विट्ठल — मुझसे तो कुछ नहीं हो सका, लेकिन पर्यासिह ने लाज रख ली ।

उन्होंने तुम्हारा प्रण पूरा कर दिया। वह अभी मेरे पास आये थे और वचन दे गये है कि तुम्हें ५० ६० मासिक आजन्म देते रहेगे।

सुमन के विस्मयपूर्ण नेत्र सजल हो गये। शर्मा जी की इस महती उदारता ने उस के अन्तःकरण को भक्ति, श्रद्धा और विमल प्रेम से प्लावित कर दिया। उसे अपने कटु वाक्यों पर अतन्त्र क्षोभ हुआ। बोली, शर्मा जी दया और धर्म के सागर हैं। इस जीवन में उनसे उद्धार नहीं हो सकती। ईश्वर उन्हें सदैव सुखी रखें। लेकिन मैंने उस समय जो कुछ कहा था, वह केवल परीक्षा के लिए था। मैं देखना चाहती थी कि सचमुच मुझे उबारना चाहते है या केवल धर्म का शिष्टाचार कर रहे है। अब मुझे विदित हो गया कि आप दोनों सज्जन देवरूप है। आप लोगों को वृथा कष्ट नहीं देना चाहती। मैं सहानुभूति की भूखी थी, वह मुझे मिल गयी। अब मैं अपने जीवन का भार आप लोगों पर नहीं डालूंगी। आप केवल मेरे रहने का कोई प्रबंध कर दें, जहाँ मैं विप्रबाधा से बची रह सकूँ।

विट्ठलदास चकित हो गये। जातीय गौरव से आँखें चमक उठीं। उन्होंने सोचा, हमारे देश की पतित स्त्रियों के विचार भी ऐसे उच्च होते है। बोले, सुमन, तुम्हारे मुँह से ऐसे पवित्र शब्द सुन कर मुझे इस समय जो आनंद हो रहा है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। लेकिन रूपों के बिना तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा ?

सुमन — मैं परिश्रम करूँगी। देश में लाखों दुखियाएँ है उनका ईश्वर के सिवा और कौन सहायक है ? अपनी निर्लज्जता का कर आपसे न लूँगी।

विट्ठल — वे कष्ट तुमसे सहे जायेंगे ?

सुमन — पहले नहीं सहे जाते थे, लेकिन अब सब कुछ सह लूँगी। यहाँ आ कर मुझे मालूम हो गया कि निर्लज्जता सब कष्टों से दुस्तह है। और कष्टों से शरीर को दुःख होता है, इस कष्ट से आत्मा का संहार हो जाता है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि उसने आप लोगों को मेरी रक्षा के लिए भेज दिया।

विट्ठल — सुमन, तुम वास्तव में विदुषी हो।

सुमन — तो मैं यहाँ से कब चली ?

विट्ठल — आज ही। अभी मैंने आश्रम की कमेटी में तुम्हारे रहने का प्रस्ताव नहीं किया है, लेकिन कोई हरज नहीं है, तुम वहाँ चलो, ठहरो। अगर कमेटी ने कुछ आपत्ति की तो देखा जायगा। हाँ, इतना याद रखना कि अपने विषय में किसी से कुछ मत कहना, नही तो विधवाओं में हलचल मच जायगी।

सुमन — आप जैसा उचित समझें करें, मैं तैयार हूँ।

विट्ठल — संध्या समय चलना होगा।

विट्ठलदास के जाने के थोड़ी ही देर बाद दो वेश्याएँ सुमन से मिलने आयीं। सुमन ने कह दिया, मेरे सिर में दर्द है। सुमन अपने ही हाथ से भोजन बनाती

थी। पतित हो कर भी वह खान-पान में विचार करती थी। आज उसने ब्रत करने का निश्चय किया था। मुक्ति के दिन कैदियों को भी भोजन अच्छा नहीं लगता।

दोपहर को घाड़ियों का गोल आ पहुँचा। सुमन ने उन्हें भी बहाना करके टाला। उसे अब उनकी सूरत से घृणा होती थी। सेठ बलभद्रदास के यहाँ से नागपुरी संतरे की एक टोकरी आयी, उसे सुमन ने तुरंत लौटा दिया। चिमनलाल ने चार बजे अपनी फिटन सुमन को सैर करने को भेजी। उसने उसको भी लौटा दिया।

जिस प्रकार अंधकार के बाद अरुण का उदय होते ही पक्षी कलरव करने लगते हैं और बछड़े किलोलो में मग्न हो जाते हैं, उसी प्रकार सुमन के मन में क्रीड़ा करने की प्रवृत्ति इच्छा हुई। उसने सिगरेट की एक डिब्बियाँ मँगवायी और वारनिश की एक बोतल मँगवा कर ताक पर रख दी और एक कुर्सी का एक पाया तोड़ कर कुर्सी छज्जे पर दीवार के सहारे रख दी। पाँच बचते-बजते मुंशी अबुलवफा का आगमन हुआ। यह हजरत सिगरेट बहुत पीते थे। सुमन ने आज असाधारण रीति से उनकी आवभगत की और इधर-उधर की बातें करने के बाद बोली, आइए, आज आपको वह सिगरेट पिलाऊँ कि आप भी याद करें!

अबुलवफा — नेकी और पूछ-पूछ!

सुमन — देखिए, एक अंग्रेजी दूकान से खास आपकी खातिर मँगवाया है। यह लीजिए।

अबुलवफा — तब तो मैं भी अपना शुमार खुशनसीबों में करूँगा। बाहर रे मैं, बाहर रे मेरे साजे जिगर की तासीर।

अबुलवफा ने सिगरेट मुँह में दबाया। सुमन ने दियासलाई की डिब्बियाँ निकाल कर एक सलाई रगड़ी। अबुलवफा ने सिगरेट को जलाने के लिए मुँह आगे बढ़ाया, लेकिन न मालूम कैसे आग सिगरेट में न लग कर उनकी दाढ़ी में लग गयी! जैसे पुआल जलता है, उसी तरह एक क्षण में दाढ़ी आधी से ज्यादा जल गयी। उन्होंने सिगरेट फेंक कर दोनों हाथों से दाढ़ी मलना शुरू किया। आग बुझ गयी, मगर दाढ़ी का सर्वनाश हो चुका था। आइने में लपक कर मुँह देखा। दाढ़ी का भस्मावशेष उबाली हुई सुथनी के रेशे की तरह मालूम हुआ। सुमन ने लज्जित हो कर कहा, मेरे हाथों में आग लगे! कहाँ-से-कहाँ मैंने दियासलाई जलायी।

उसने बहुत रोका, पर हँसी ओठ पर आ गयी। अबुलवफा ऐसे खिसियाये हुए थे, मानों अब वह अनाथ हो गये। सुमन की हँसी अखर गयी। उस भोंड़ी सूरत पर खेद और खिसियाहट का अपूर्व दृश्य था। बोले, यह कब की कसर

निकाली ?

सुमन — मुंशी जी, मैं सच कहती हूँ, यह दोनों आँखें फूट जायँ अगर मैंने जान बूझ - कर आग लगायी हो। आपसे बैर भी होता तो दाढ़ी बेचारी ने मेरा क्या बिगौड़ा था ?

अबुल — माशूकों की शोखी और शरारत अच्छी मालूम होती है, लेकिन इतनी नहीं कि मुँह जला दें। अगर तुमने आग से कही दाग दिया होता तो इससे अच्छा था। अब यह भुत्तास की - सी सूरत ले कर मैं किसे मुँह दिखाऊँगा ! वल्लाह ! आज तुमने मटियामेट कर दिया।

सुमन — क्या करूँ, खुद पछता रही हूँ। अगर मेरे दाढ़ी होती तो आपको दे देती। क्यों, नकली दाढ़ियाँ भी तो मिलती है ?

अबुल — सुमन, जल्द पर नमक न छिड़को। अगर दूसरे ने यह हरकत की होती तो आज उसका खून पी जाता।

सुमन — अरे, तो थोड़े - से बाल ही जल गये न और कुछ। महीने - दो - महीने में फिर निकल आयेगे। जरा - सी बात के लिए आप इतनी हाय - हाय मचा रहे हैं।

अबुल — सुमन, जलाओ मत, नहीं तो मेरी जबान से भी कुछ निकल जायगा। मैं इस वक्त आपे में नहीं हूँ।

सुमन — नारायण, नारायण, जरा - सी दाढ़ी पर इतना जामे के बाहर हो गये ? मान लीजिए, मैंने जान कर ही दाढ़ी जला दी तो ? आप मेरी आत्मा को, मेरे धर्म को, मेरे हृदय को रोज जलाते हैं, क्या उनका मूल्य आपकी दाढ़ी से भी कम है ? मियाँ, आशिक बनना मुँह का नेवाला नहीं है। जाइए अपने घर की राह लीजिए, अब कभी यहाँ न आइएगा। मुझे ऐसे छिछोरे आदमियों की जरूरत नहीं है।

अबुलवफा ने क्रोध से सुमन की ओर देखा, तब जेब से रुमाल निकाला और जली हुई दाढ़ी को उसकी आड़ में छिपा कर चुपके - से चले गये। यह वही मनुष्य है, जिसे खुले बाजार एक वेश्या के साथ आमोद - प्रमोद में लज्जा नहीं आती थी।

अब सदन के आने का समय हुआ। सुमन आज उससे मिलने के लिए बहुत उत्कंठित थी। आज यह अंतिम मिलाप होगा। आज यह प्रेमाभिनय समाप्त हो जायगा। वह मोहिनी - सूर्ति फिर देखने को न मिलेगी। उसके दर्शनों को नेत्र तरस - तरस रहेगे। वह सरल प्रेम से भरी हुई मधुर बातें सुनने में न आयेंगी। जीवन फिर प्रेम - विहीन और नीरस हो जायगा। क्लृप्त सही, पर यह प्रेम सच्चा था। भगवान् ! मुझे यह वियोग सहने की शक्ति दीजिए। नहीं, इस समय

सदन न आये तो अच्छा है, उससे न मिलने में ही कल्याण है, कौन जाने उस के सामने मेरा संकल्प स्थिर रह सकेगा या नहीं। पर वह आ जाता तो एक बार दिल खोल कर उससे बातें कर लेती, उसे इस कपट सागर में डूबने से बचाने की चेष्टा करती।

इतने में सुमन ने विठ्ठलदास को एक किराये की गाड़ी में से उतरते देखा। उसका हृदय वेग से धड़कने लगा।

एक क्षण में विठ्ठलदास ऊपर आये और बोले, अरे अभी तुमने कुछ तैयारी नहीं की !

सुमन — मैं तैयार हूँ।

विठ्ठल — अभी बिस्तरे नहीं बँधे।

सुमन — यहाँ की कोई वस्तु साथ न ले जाऊँगी, यह वास्तव में मेरा पुनर्जन्म हो रहा है।

विठ्ठल — यह सामान क्या होगा ?

सुमन — आप इसे बेच कर किसी शुभ काम में लगा दीजिएगा।

विठ्ठल — अच्छी बात है, मैं यहाँ ताला डाल दूँगा। तो अब उठो, गाड़ी मौजूद है।

सुमन — दस बजे से पहले नहीं चल सकती। आज मुझे अपने प्रेमियों से बिदा होना है। कुछ उनकी सुननी है, कुछ अपनी कहनी है। आप तब तक छन पर जा कर बैठिए, मुझे तैयार ही समझिए।

विठ्ठलदास को बुरा मालूम हुआ पर धैर्य से काम लिया। ऊपर जा कर खुली हुई छत पर टहलने लगे।

सात बज गये लेकिन सदन न आया। आठ बजे तक सुमन उसकी राह देखती रही, अंत में वह निराश हो गयी। जब से वह यहाँ आने लगा, आज ही उसने नागा किया। सुमन को ऐसा मालूम होता था मानो वह किसी निर्जन स्थान में खो गयी है। हृदय में एक अत्यंत तीव्र कितु सरल, वेदनापूर्ण कितु मनोहारी आकांक्षा का उद्वेग हो रहा था। मन पूछता था, उसके न आने का क्या कारण है ? किसी अनिष्ट की आशंका ने उसे बेचैन कर दिया।

आठ बजे सेठ चिम्मनलाल आये। सुमन उनकी गाड़ी देखते ही छज्जे पर जा बैठी। सेठ जी बहुत कठिनाई से ऊपर आये और हाँफते हुए बोले, कहाँ हो देवी, आज बग़ी क्यों लौटा दी ? क्या मुझसे कोई खता हुई ?

सुमन — यहीं छज्जे पर चले आइए, भीतर कुछ गरमी मालूम होती है। आज सिर में दर्द था, सँवर करने को जी नहीं चाहता था।

चिम्मनलाल — हिरिया को मेरे यहाँ क्यों नहीं भेज दिया, हकीम साहब से

कोई नुस्खा तैयार करा देता । उनके पास तेलों के अच्छे - अच्छे नुस्खे हैं ।

यह कहते हुए सेठ जी कुरसी पर बैठे, लेकिन तीन टाँग की कुरसी उलट गयी, सेठ जी का सिर नीचे हुआ और पैर ऊपर, और वह एक कपड़े की गाँठ के समान औंधे मुँह लेट गये । केवल एक बार मुँह से 'अरे' निकला और वह फिर कुछ न बोले । जड ने चैतन्य को परास्त कर दिया ।

सुमन डरी कि चोट ज्यादा आ गयी, लालटेन ला कर देखा तो हँसी न रुक सकी । सेठ जी ऐसे असाध्य पड़े थे, मानो पहाड़ से गिर पड़े हैं । पड़े - पड़े बोले — हाय राम, कमर टूट गयी । जरा मेरे साईंस को बुलवा दो, घर जाऊँगा ।

सुमन — चोट बहुत आ गयी क्या ? आपने भी तो कुरसी खींच ली, दीवार से टिक कर बैठते तो कभी न गिरते । अच्छा, क्षमा कीजिए, मुझी से भूल हुई कि आपको सचेत न कर दिया । लेकिन आप जरा भी न सँभले, बस गिर ही पड़े ।

चिम्मन — मेरी तो कमर टूट गयी और तुम्हे मसखरी सूझ रही है ।

सुमन — तो अब इसमें मेरा क्या वश है ? अगर आप हलके होते तो उठा कर बैठा देती । जरा खुद ही जोर लगाइए, अभी उठ बैठिएगा ।

चिम्मन — अब मेरा घर पहुँचना मुश्किल है । हाय ! किस बुरी साइत से चले थे, जीने पर से उतरने में पूरी साँसत हो जायगी । वाई जी, तुमने यह कब का बैर निकाला ?

सुमन — सेठ जी, मैं बहुत लजित हूँ ।

चिम्मन — अजी रहने भी दो, झूठ - मूठ की बातें बनाती हो । तुमने मुझे जान कर गिराया ।

सुमन — क्या आप से मुझे कोई बैर था ? और आपसे बैर हो भी तो आपको बेचारी कमर ने मेरा क्या बिगाड़ा था ?

चिम्मन — अब यहाँ आनेवाले पर लानत है ।

सुमन — सेठ जी, आप इतनी जल्दी नाराज हो गये । मान लीजिए मैंने जान - बूझ कर ही आपको गिरा दिया, तो क्या हुआ ?

इतने में विठ्ठलदास ऊपर से उतर आये । उन्हें देखते ही सेठ जी चौक पड़े । घड़ों पानी पड़ गया ।

विठ्ठलदास ने हँसी को रोक कर पूछा, कहिए सेठ जी, आप यहाँ कैसे आ फँसे ? मुझे आपको यहाँ देख कर बड़ा आश्चर्य होता है ।

चिम्मन — इस घड़ी कुछ न पूछिए । फिर यहाँ आऊँ तो मुझ पर लानत है । मुझे किसी तरह यहाँ से नीचे पहुँचाइए ।

विठ्ठलदास ने एक हाथ थामा, साईंस ने आ कर कमर पकड़ी । इस तरह लोगों ने उन्हें किसी तरह जीने से उतारा और ला कर गाड़ी में लिटा दिया ।

ऊपर आ कर विट्ठलदास ने कहा, गाड़ीवाला अभी तक खड़ा है, दस बज गये। अब बिलब न करो।

सुमन ने कहा, अभी एक काम और करना है। पंडित दीनानाथ आते होंगे। बस उनसे निपट लूँ तो चलूँ। आप थोड़ा-सा कष्ट और कीजिए।

विट्ठलदास ऊपर जा कर बैठे ही थे कि पंडित दीनानाथ आ पहुँचे। बना-रसी साफा सिर पर था, बदन पर रेशमी अचकन शोभायमान थी। काले किनारे की महीन धोती और काली वार्निश के पम्प जूते उनके शरीर पर खूब फबते थे।

सुमन ने कहा, आइए महाराज ! चरण छूती हूँ।

दीनानाथ — आशीर्वाद, जवानी बढे, आँख के अंधे-गाँठ के पूरे फँसँ, सदा बढती रहे।

सुमन — कल आप कैसे नहीं आये, समाजियो को लिये रात तक आपकी राह देखती रही।

दीनानाथ — कुछ न पूछो, कल एक रमझल्ले में फँस गया था। डाक्टर श्यामाचरण और प्रभाकरराव स्वराज्य की सभा में घसीट ले गये। वहाँ बकबक-झकझक होती रही। मुझसे सब ने व्याख्यान देने को कहा। मैंने कहा, मुझे कोई उल्लू समझा है क्या ? पीछा छुड़ा कर भागा। इसी में देरी हो गयी।

सुमन — कई दिन हुए मैंने आपसे कहा था कि किवाड़े में वार्निश लगवा दीजिए। आपने कहा, वार्निश कहीं मिलनी ही नहीं। यह देखिए, आज मैंने एक बोतल वार्निश मँगा रखी है। कल जरूर लगवा दीजिए।

पंडित दीनानाथ मसनद लगाये बैठे थे। उनके सिर ही पर वह ताक था, जिस पर वार्निश रखी हुई थी। सुमन ने बोतल उठायी, लेकिन मालूम नहीं कैसे बोतल को पेंदी अलग हो गयी और पंडित जी वार्निश से नहा उठे। ऐसा मालूम होता था, मानो शीरे की नाँद में फिसल पड़े हों। वह चौक कर उठ खड़े हुए और साफा उतार कर रुमाल से पोंछने लगे।

सुमन ने कहा, मालूम नहीं बोतल टूटी थी क्या — सारी वार्निश खराब हो गयी।

दीनानाथ — तुम्हें अपनी वार्निश की पड़ी है, यहाँ सारे कपड़े तर हो गये। अब घर तक पहुँचना मुश्किल है।

सुमन — रात को कौन देखता है, चुपके से निकल जाइएगा ?

दीना — अजो, रहने भी दो, सारे कपड़े सत्यानाश कर दिये, अब उपाय बता रही हो। अब यह धुल भी नहीं सकते।

सुमन — तो क्या मैंने जान-बूझ कर गिरा दिया ?

दीना — तुम्हारे मन का हाल कौन जाने ?

सुमन — अच्छा जाइए, जान कर ही गिरा दिया ।

दीना — अरे तो मैं कुछ कहता हूँ, जी चाहे और गिरा दो ।

सुमन — बहुत होगा अपने कपड़ों की कीमत ले लीजिएगा ।

दीना — खफा क्यों होती हो सरकार ? मैं तो कह रहा हूँ, गिरा दिया अच्छा किया ।

सुमन — इस तरह कह रहे हैं, मानो मेरे साथ बड़ी रियायत कर रहे हैं ।

दीना — सुमन, क्यों लजित करती हो ?

सुमन — जरा - सा कपड़े खराब हो गये उस पर ऐसे जाभे से बाहर हो गये, यही आपकी मुहब्बत है, जिसकी कथा सुनते - सुनते मेरे कान पक गये । आज उसकी कलाई खुल गयी । जादू सिर पर चढ़के बोला । आपने अच्छे समय पर मुझे सचेत कर दिया । अब कृपा करके घर जाइए । यहाँ फिर न आइयेगा । मुझे आप जैसे मियाँ मिट्ठुओं की जरूरत नहीं ।

विठ्ठलदास ऊपर बैठे हुए यह कौतुक देख रहे थे । समझ गये कि अब अभिनय समाप्त हो गया । नीचे उतर आये । दीनानाथ ने एक बार चौक कर उन्हें देखा और छड़ी उठा कर शीघ्रतापूर्वक नीचे चले गये ।

थोड़ी देर बाद सुमन ऊपर से उतरी । वह केवल एक उजली साड़ी पहने थी, हाथों में चूड़ियाँ तक न थीं । उसका मुख उदास था, लेकिन इसलिए नहीं कि यह भोग-विलास अब उससे छूट रहा है, वरन् इसलिए कि वह अग्निकुंड में गिरी क्यों थी । इस उदासीनता में मलिनता न थी, वरन् एक प्रकार का संयम था, यह किसी मदिरा - सेवी के मुख पर छानेवाली उदासी नहीं थी, बल्कि उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था ।

विठ्ठलदास ने मकान में ताला डाल दिया और गाड़ी के कोच - बक्स पर जा बैठे । गाड़ी चली ।

बाजारों की दूकानें बंद थी, लेकिन रास्ता चल रहा था । सुमन ने खिड़की से झाँक कर देखा । उसे आगे लालटेनो की एक सुन्दर माला दिखायी दी, लेकिन ज्यों - ज्यों गाड़ी बढ़ती थी, त्यो - त्यो वह प्रकाशमाला भी आगे बढ़ती जाती थी । थोड़ी दूर पर लालटेनें मिलती थी पर वह ज्योतिर्माला अभिलाषाओं के सदृश दूर भागती जाती थी ।

गाड़ी वेग से जा रही थी । सुमन का भावी जीवन - यान भी विचार - सागर में वेग के साथ हिलता, डगमगाता, तारों के ज्योतिर्जाल में उलझता चला जाता था ।

१४

शहर की म्युनिसिपैलिटी में कुल १८ सभासद थे । उनमें ८ मुसलमान थे और १० हिंदू । सुशिक्षित मेम्बरों की संख्या अधिक थी, इसलिए शर्मा जी को विश्वास था कि म्युनिसिपैलिटी में वेश्याओं को नगर से बाहर निकाल देने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा । वे सब सभासदों से मिल चुके थे और इस विषय में उनकी शंकाओं का समाधान कर चुके थे, लेकिन मेम्बरों में कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिनकी ओर से घोर विरोध होने का भय था । ये लोग बड़े व्यापारी, धनवान् और प्रभावशाली मनुष्य थे । इसलिए शर्मा जी को यह भय भी था कि कहीं शेष मेम्बर उनके दबाव में न आ जायँ । हिंदुओं में विरोधी दल के नेता सेठ बलभद्रदास थे और मुसलमानों में हाजी हाशिम । जब तक विट्ठलदास इस आंदोलन के कर्त्ता-धर्त्ता थे तब तक इन लोगों ने उसकी ओर कुछ ध्यान न दिया था, लेकिन जब से पद्मसिंह और म्युनिसिपैलिटी के अन्य कई मेम्बर इस आंदोलन में सम्मिलित हो गये थे, तब से सेठ जी और हाजी साहब के पेट में चूहे दौड़ रहे थे । उन्हें मालूम हो गया था कि शीघ्र ही यह मंतव्य सभा में उपस्थित होगा, इसलिए दोनों महाशय अपने पक्ष को स्थिर करने में तत्पर हो रहे थे । पहले हाजी साहब ने मुसलमान मेम्बरों को एकत्र किया । हाजी साहब का जनता पर बड़ा प्रभाव था और वह शहर के समस्त मुसलमानों के नेता समझे जाते थे । शेष ७ मेम्बरों में मौलाना तेगअली एक इमामबाड़े के वली थे । मुशी अबुलवफा इत्र और तेल के कारखाने के मालिक थे । बड़े-बड़े शहरों में उनकी कई दूकानें थी । मुशी अब्दुललतीफ एक बड़े जमींदार थे, लेकिन बहुधा शहर में रहते थे । कविता से प्रेम था और स्वयं अच्छे कवि थे । शाकिरवेग और शरीफहसन वकील थे । उनके सामाजिक सिद्धांत बहुत उन्नत थे । सैयद शफकतअली पेंशनर डिप्टी कलक्टर थे और खाँ साहब शोहरतखाँ प्रसिद्ध हकीम थे । ये दोनों महाशय सभा-समाजों से प्रायः पृथक् रहते थे, किन्तु उनमें उदारता और विचारशीलता की कमी न थी । दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे । समाज में उनका बड़ा सम्मान था ।

हाजी हाशिम बोले, बिरादराने वचन की यह नयी चाल आप लोगों ने देखी ? वल्लाह इनको सूझती खूब है ? बगलो घूँसे मारना कोई इनसे सीख ले । मैं तो इनकी रेशादवानियों से इतना बदजन हो गया हूँ कि अगर इनकी नेकनीयती पर ईमान लाने में नजात भी होती हो तो न लाऊँ ।

अबुलवफा ने फरमाया, मगर अब खुदा के फज़ल से हमको भी अपने नफे-नुकसान का एहसास होनै लगा । यह हमारी तादाद को घटाने की सरीह कोशिश है । तवायफें ६० फीसदी मुसलमान है ; जो रोजे रखती है, इजादारी करती हैं,

मौलूद और उस करती है। हमको उनके जाती फेलों से कोई बहस नहीं है। नेक व बद की सजा व जज़ा देना खुदा का काम है। हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से गरज है।

तेगअली — मगर उनकी तादाद क्या इतनी ज्यादा है कि उससे हमारे मजमुई वोट पर कोई असर पड़ सकता है ?

अबुलवफा — कुछ-न-कुछ तो जरूर ही पड़ेगा ; खाह वह कम हो या ज्यादा। बिरादराने वतन को देखिए, वह डोमड़ों तक को मिलाने की कोशिश करते हैं। उनके साथे से परहेज करते हैं, उन्हें जानवरों से भी ज्यादा जलील समझते हैं, मगर महज अपने पोलिटिकल मफाद के लिए उन्हें अपने कौमी जिस्म का एक अज्रो बनाये हुए है। डोमड़ों का शुमार जरायम पेशा अक्वाम में है। आलिहाजा, पासी, भर वगैरह भी इसी जेल में आते हैं। सरका, कत्ल, रहजनी, यह उनके पेशे हैं। मगर जब उन्हें हिन्दू जमाअत से अलहदा करने की कोशिश की जाती है तो बिरादराने वतन कैसे चिराग़पा होते हैं। वेद और शासतर की सनदें नक़ल करते फिरते हैं। हमको इस मुआमिले में उन्ही से सबक लेना चाहिए।

सैयद शफकतअली ने विचारपूर्ण भाव से कहा, इन जरायम पेशा अक्वाम के लिए गवर्नमेंट ने शहरों में खित्ते अलेहदा कर दिये। उन पर पुलिस की निगरानी रहती है। मैं खुद अपने दौराने मुलाजिमत में उनकी नक्क व हरकत की रिपोर्ट लिखा करता था। मगर मेरे खयाल में किसी जिम्मेदार हिंदू ने गवर्नमेंट के इस तर्ज - अमल की मुखालिफत नहीं की। हालांकि मेरी निगाह में सरका, कत्ल वगैरह इतने मकलूह फेल नहीं हैं जितनी असमतफरोशी। डोमनी भी जब असमतफरोशी करती है तो वह अपनी बिरादरी से खारिज कर दी जाती है। अगर किसी डोम या भर के पास काफी दीनत हो तो वह इस हुस्न के खुले हुए बाज़ार में मनमाना सौदा खरीद सकता है। खुदा वह दिन न लाये कि हम अपने पोलिटिकल मफाद के लिए इस हद तक जलील होने पर मजबूर हों। अगर इन तवायफों की दीनदारी के तुफैल में सारे इस्लाम को खुदा जन्नत अता करे तो मैं दोख में जाना पसन्द करूँगा। अगर उनकी तादाद की बिना पर हमको इस मुल्क की बादशाही भी मिलती हो तो मैं कबूल न करूँ। मेरी राय तो यह है कि इन्हे मरकज शहर ही से नहीं, हद्द शहर से खारिज कर देना चाहिए।

हकीम शोहरत खाँ बोले, जनाब, मेरा बस चले तो मैं इन्हे हिंदुस्तान से निकाल दूँ, इनसे एक जज़ीरा अलग आबाद करूँ। मुझे इस बाज़ार के खरीदारों से अक्सर साबिका रहता है। अगर मेरी मजहबी अक्वायद में फर्क न आये तो मैं यह कहूँगा कि तवायफें हैजे और ताऊन का औतार हैं। हैजा दो घंटे में काम तमाम कर देता है, प्लेग दो दिन में, लेकिन यह जहन्नुमी हस्तियाँ रुला-रुला कर और घुला-घुला

कर जान मारती है। मुंशी अबुलवफा साहब उन्हें जन्नती हूर समझते हैं, लेकिन ये वे काली नागिने हैं जिनकी आँखों में जहर है। ये वे चश्मे हैं जहाँ से जरायम के सोते निकलते हैं। कितनी ही नेक बीबियाँ उनकी बदौलत खून के आँसू रो रही हैं। कितने ही शरीफजादे उनकी बदौलत खस्ता व ख्वार हो रहे हैं। यह हमारी बद-किस्मती है कि बेशतर तवायफें अपने को मुसलमान कहती हैं।

शरीफ हसन बोले, इसमें तो कोई बुराई नहीं कि वह अपने को मुसलमान कहती है, बुराई यह है कि इस्लाम भी उन्हें राह - रास्त पर लाने की कोई कोशिश नहीं करता। हिंदुओं की देखा-देखी इस्लाम ने भी उन्हें अपने दायरे से खारिज कर दिया है। जो औरत एक बार किसी वजह से गुमराह हो गयी, उसकी तरफ से इस्लाम हमेशा के लिए अपनी आँखें बंद कर लेता है। बेशक हमारे मौलाना साहब सब्ज इमामा बाँधे, आँखों में मुरमा लगाये, गेसू सँवारे उनकी मजहबी तसकीन के लिए जा पहुँचते हैं, उनके दस्तरख्वान से भीठे लुकमे खाते हैं, खुशबूदार खमीरे की कश लगाते हैं। और उनके खसदान से मुअत्तर बीड़े उड़ाते हैं। बस, इस्लाम की मजहबी कृपे इस्लाम यही तक खत्म हो जाती है। अपने बुरे फैलो पर नादिम होना इंसानी खासा है। ये गुमराह औरतें पेशतर नहीं तो शराब का नशा उतरने के बाद जरूर अपनी हालत पर अफसोस करती हैं, लेकिन उस वक्त उनका पछताना बेसूद होता है। उनके गुजरानी की इसके सिवा और कोई सूरत नहीं रहती कि वे अपनी लड़कियों से दूसरों को दामे मुहब्बत में फँसाये और इस तरह यह सिलसिला हमेशा जारी रहता है। अगर उन लड़कियों की जायज तौर पर शादी हो सके तो, और उसके साथ ही उनकी परवरिश की सूरत भी निकल आये तो, मेरे ख्याल में ज्यादा नहीं तो ७५ फीसदी तवायफें इसे खुशी से कबूल कर लें। हम चाहे खुद कितने ही गुनाहगार हों, पर अपनी औलाद को हम नेक और रास्तबाज देखने की तमन्ना रखते हैं। तवायफों को शहर से खारिज कर देने से उनकी इसलाह नहीं हो सकती। इस ख्याल को सामने रख कर तो मैं इखराज की तहरीक पर एतराज करने की जुरअत कर सकता हूँ। पर पोलिटिकल मफाद की बिना पर मैं उसकी मुखालिफत नहीं कर सकता। मैं किसी फैल को कौमी ख्याल से पसंदीदा नहीं समझता जो इखलाक़ी तौर पर पसंदीदा न हो।

तेग़ाली — बंदानवाज, सँभल कर बातें कीजिए। ऐसा न हो कि आप पर कुफ का फ़तवा सादिर हो जाय। आजकल पोलिटिकल मफाद का जोर है, हक और इन्साफ़ का नाम न लीजिए। अगर आप मुर्दारिस हैं तो हिंदू लड़कों को फेल कीजिए। तहसीलदार है तो हिंदुओं पर टैक्स लगाइए, मजिस्ट्रेट हैं तो हिंदुओं को सजाएँ दीजिए। सब - इंस्पेक्टर पुलिस है तो हिंदुओं पर झूठे मुकदमे दायर कीजिए, तह - कीकात करने जाइए तो हिंदुओं के बयान गलत लिखिए। अगर आप चोर हैं तो

किसी हिंदू के घर डाका डालिए, अगर आपको हुस्न या इश्क का खव्त है तो किसी हिंदू नाजनीन को उड़ाइए, तब आप कौम के खादिम, कौम के मुहसिन, कौमी किस्ती के नाखुदा — सब कुछ हैं ।

हाजी हाशिम बुड़बुड़ाये, मुशी अबुलवफा के तेवरो पर बल पड़ गये । तेग - अली की तलवार ने उन्हें घायल कर दिया । अबुलवफा कुछ कहना ही चाहते थे कि शाकिर बेग बोल उठे, भाई साहब, यह तान - तंज का मौका नहीं । हम अपने घर में बैठे हुए एक अमल के बारे में दोस्ताना मशविरा कर रहे हैं । जबाने तेज मसलहत के हक में जहरे कातिल है । मैं शाहिदान को तन्नाज तमद्दुन में बिलकुल बेकार या मायए शर नहीं समझता । आप जब कोई मकान तामीर करते हैं तो उसमें बदरौर बनाना जरूरी ख्याल करते हैं । अगर बदरौर न हो तो चन्द दिनों में दीवारों की बुनियादे हिल जायें । इस फिरके को सोसाइटी का बदरौर समझना चाहिए और जिस तरह बदरौर मकान के नुमायाँ हिस्से में नहीं होती, बल्कि निगाह से पोशीदा एक गोशे में बनायी जाती हैं, उसी तरह इस फिरके को शहर के पुरफ़िजा मुकामात से हटा कर किसी गोशे में आबाद करना चाहिए ।

मुशी अबुलवफा पहले के वाक्य सुन कर खुश हो गये थे, पर नाली की उपमा पर उनका मुँह लटक गया । हाजी हाशिम ने नैराश्य से अब्दुल्लतीफ की ओर देखा, जो अब तक चुपचाप बैठे हुए थे और बोले, जनाब, कुछ आप भी फरमाते हैं ? दोस्ती के बहाव में आप भी तो नहीं बह गये ?

अब्दुल्लतीफ बोले, जनाब, रिदा को न इत्तहाद से दोस्ती न मुखालफत से दुश्मनी । अपना मुशरिब तो सुलहेकुल है । मैं अभी यही तय नहीं कर सका कि आलमो बेदारी में हूँ या ख्वाब में । बड़े - बड़े आलिमों को एक बे सिर - पैर की बात की तार्ईद में जमी और आसमान के कुलाबे मिलाते देखता हूँ । क्यों कर बावर करूँ कि बेदार हूँ ? साबुन, चमड़े और मिट्टी के तेल की दूकानों से आपको कोई शिकायत नहीं । कपड़े, बरतन आदिवियात की दूकानें चौक में हैं, आप उनको मुतलक बेमौका नहीं समझते । क्या आपकी निगाहों में हुस्न की इतनी भी वकअत नहीं ? और क्या यह जरूरी है कि इसे किसी तंग तारीक कूचे में बंद कर दिया जाय ? क्या वह बाग, बाग कहलाने का मुस्तहक है जहाँ सरो की कतारें एक गोशे में हों, बेले और गुलाब के तख्ते दूसरे गोशे में और रविशों के दोनों तरफ नीम और कटहल के दरख्त हों, वस्त में पीपल का ठूँठ और किनारे बबूल की कलमें हों ? — चील और कौए दोनों तरफ तख्तों पर बैठे अपना राग अलापते हों, और बुलबुलें किसी गोश - ए - तारीक में दर्द के तराने गाती हों ? मैं इस तहरीक की सख्त मुखालिफत करता हूँ । मैं उसे इस काबिल भी नहीं समझता कि उस पर मतानत के साथ बहस की जाय ।

हाजी हाशिम मुस्कराये, अबुलवफा की आँखें खुशी से चमकने लगीं। अन्य महाशयो ने दार्शनिक मुस्कान के साथ यह हास्यपूर्ण वक्तृता सुनी, पर तेगअली इतने सहनशील न थे। तीव्र भाव से बोले, क्यों गरीब - परवर, अबकी बोर्ड में यह तजवीज क्यों न पेश की जाय कि म्युनिसिपैलिटी ऐन चौक में खास एहतमाम के साथ मीनाबाजार आरास्ता करे और जो हजरात इस बाजार की सैर की तशरीफ ले जायँ उन्हें गवर्नमेंट की जानिब से खुशनूदी मिजाज का परवाना अता किया जाय ? मेरे ख्याल से इस तजवीज की तारीद करनेवाले बहुत निकल आभेंगे और इस तजवीज के मुहरीर का नाम हमेशा के लिए ज़िदा हो जायगा। उसकी वफ़ात के बाद उसके मजार पर उस होंगे और वह अपने गोश - ए - लहद में पड़ा हुआ हुस्न की वहार लूटेगा और दिलपजीर नग़मे सुनेगा।

मुशी अब्दुल्लतीफ का मुँह लाल हो गया। हाजी हाशिम ने देखा कि बात बड़ी जाती है, तो बोले, मैं अब तक मुना करता था कि उसूल भी कोई चीज है मगर आज मालूम हुआ कि वह महज एक वहम है। अभी बहुत दिन नहीं हुए कि आप ही लोग इस्लामी वजाएफ़ का डेपुटेशन ले कर गये थे, मुसलमान कैदियों के मजहबी तसकीन की तजवीजें कर रहे थे और अगर मेरा हाफ़िज़ा गलती नहीं करता तो आप ही लोग उन मौकों पर पेश नजर आते थे। मगर आज एकाएक यह इनकलाब नजर आता है। खैर, आपका तलव्वुन आपको मुबारक रहे, बदा इतना सहल्यकीन नहीं है। मैंने ज़िदगी का यह वसूल बना लिया है कि बिरादराने वतन की हरएक तजवीज की मुखालिफ़त करूँगा, क्योंकि मुझे उससे किसी बेहबूदी की तक्का नहीं है।

अबुलवफा ने कहा, आलिहाजा, मुझे रात को आफ़ताब का यकीन हो सकता है, पर हिदुओं की नेकनीयत पर यकीन नहीं हो सकता।

सैयद शफ़क़त अली बोले, हाजी साहब, आपने हम लोगों को जमाना - साज और बेउसूल समझने में मतानत से काम नहीं लिया। हमारा उसूल जो तब था वह अब भी है और वही हमेशा रहेगा और वह है इसलामी बकार को कायम करना और हरएक जायज तरीके से बिरादराने मिलजुत की बेहबूदी की कोशिश करना। अगर हमारे फायदे में बिरादराने वतन का नुकसान हो तो हमको इसकी परवाह नहीं। मगर जिस तजवीज से उनके साथ हमको भी फायदा पहुँचता है और उनसे किसी तरह कम नहीं, उसकी मुखालिफ़त करना हमारे इमकान से बाहर है। हम मुखालिफ़त के लिए मुखालिफ़त नहीं कर सकते।

रात अधिक जा चुकी थी। सभा समाप्त हो गयी।

इस वार्तालाप का कोई विशेष फल न निकला। लोग मन में जो पक्ष स्थिर करके घर से आये थे उसी पक्ष पर डटे रहे। हाजी हाशिम को अपनी विजय का

जो पूर्ण विश्वास था उसमें संदेह पड़ गया ।

१५

इस प्रस्ताव के विरोध में हिंदू मेम्बरों को जब मुसलमानों के जलसे का हाल मालूम हुआ तो उनके कान खड़े हुए । उन्हें मुसलमानों से जो आशा थी वह भंग हो गयी । कुल दस हिंदू थे । सेठ बलभद्रदास चैयरमैन थे । डाक्टर श्यामाचरण वाइस - चैयरमैन । लाला चिम्मनलाल और दीनानाथ तिवारी व्यापारियों के नेता थे । पद्मसिंह और रुस्तमभाई वकील थे । रमेशदत्त कालेज के अध्यापक, लाला भगतराम ठेकेदार, प्रभाकरराव हिन्दी पत्र 'जगत' के संपादक और कुंवर अनिरुद्ध बहादुर सिंह जिले के सबसे बड़े जमींदार थे । चौक की दूकानों में अधिकांश बल - भद्रदास और चिम्मनलाल की थीं । दालमंडी में दीनानाथ के कितने ही मकान थे, ये तीनों महाशय इस प्रस्ताव के विपक्षी थे । लाला भगतराम का काम चिम्मनलाल की आर्थिक सहायता से चलता था । इसलिए उनकी सम्मति भी उन्हीं की ओर थी । प्रभाकरराव, रमेशदत्त, रुस्तमभाई और पद्मसिंह इस प्रस्ताव के पक्ष में थे । डाक्टर श्यामाचरण और कुंवर साहब के विषय में अभी तक निश्चय नहीं हो सका था । दोनों पक्ष उनसे सहायता की आशा रखते थे । उन्हीं पर दोनों पक्षों की हार - जीत निर्भर थी । पद्मसिंह अभी बारात से नहीं लौटे थे । बलभद्रदास ने इस अवसर को अपने पक्ष के समर्थन के लिए उपयुक्त समझा और सब हिंदू मेम्बरों को अपनी सुसज्जित बारहदरी में निमंत्रित किया । इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि डाक्टर साहब और कुंवर महोदय की सहानुभूति अपने पक्ष में कर लें । प्रभाकरराव मुसलमानों के कट्टर विरोधी थे । वे लोग इस प्रस्ताव को हिंदू - मुसलिम विवाद का रंग दे कर प्रभाकरराव को भी अपनी ओर खींचना चाहते थे ।

दीनानाथ तिवारी बोले, हमारे मुसलमान भाइयों ने तो इस विषय में बड़ी उदारता दिखायी पर इसमें एक गूढ़ रहस्य है । उन्होंने 'एक - पंथ दो - काज' वाली चाल चली है । एक ओर तो समाज सुधार की नेकनामी हाथ आती है, दूसरी ओर हिंदुओं को हानि पहुँचाने का एक बहाना मिलता है । ऐसे अवसर से वे कब चूकने वाले थे ।

चिम्मनलाल — मुझे पालिटिक्स से कोई वास्ता नहीं है और न मैं इसके निकट जाता हूँ । लेकिन मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि हमारे मुसलिम भाइयों ने हमारी गरदन बुरी तरह पकड़ी है । दालमंडा और चौक के अधिकांश मकान हिंदुओं के हैं, यदि बोर्ड ने यह स्वीकार कर लिया तो हिंदुओं का मटियामेट

हो जायगा। छिपे-छिपे चोट करना कोई मुसलमानों से सीख ले। अभी बहुत दिन नहीं बीते कि सूद की आड़ में हिंदुओं पर आक्रमण किया गया था। जब वह चाल पट पड गयी तो यह नया उपाय सोचा। खेद है कि हमारे कुछ हिंदू भाई उनके हाथों की कठपुतली बने हुए हैं। वे नहीं जानते कि अपने दुस्साह से अपनी जाति को कितनी हानि पहुँचा रहे हैं।

स्थानीय कौंसिल में जब सूद का प्रस्ताव उपस्थित था तो प्रभाकरराव ने उसका घोर विरोध किया था। चिम्मनलाल ने उसका उल्लेख करके और वर्तमान विषय को आर्थिक दृष्टिकोण से दिखा कर प्रभाकरराव को नियम-विरुद्ध करने की चेष्टा की। प्रभाकरराव ने विवश नेत्रों से रुस्तमभाई की ओर देखा मानो उनसे कह रहे थे कि मुझे ये लोग ब्रह्मपाँस में डाल रहे हैं, आप किसी तरह मेरा उद्धार कीजिए। रुस्तमभाई बड़े निर्भीक, स्पष्टवादी पुरुष थे। वे चिम्मनलाल का उत्तर देने के लिए खड़े हो गये और बोले, मुझे यह देख कर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्न को हिंदू मुसलमानों के विवाद का स्वरूप दे रहे हैं। सूद के प्रश्न को भी यही रंग देने की चेष्टा की गयी थी। ऐसे राष्ट्रीय विषयों को विवादग्रस्त बनाने से कुछ हिंदू साहूकारों का भला हो जाता है, किंतु इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है उसका अनुमान करना कठिन है। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने से हिंदू साहूकारों को अधिक हानि पहुँचेगी, लेकिन मुसलमानों पर भी इसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। चौक और दालमंडी में मुसलमानों की दूकानें कम नहीं हैं। हमको प्रतिवाद या विरोध की धुन में अपने मुसलमान भाइयों की नीयत की सचाई पर संदेह न करना चाहिए। उन्होंने इस विषय में जो कुछ निश्चय किया वह सार्व-जनिक उपकार के विचार से किया है; अगर हिंदुओं को इससे अधिक हानि हो रही है तो यह दूसरी बात है। मुझे विश्वास है कि मुसलमानों की इससे अधिक हानि होती तब भी उनका यही फैसला होता। अगर आप सच्चे हृदय से मानते हैं कि यह प्रस्ताव एक सामाजिक कुप्रथा के सुधार के लिए उठाया है तो आपको उसके स्वीकार करने में कोई बाधा न होनी चाहिए, चाहे धन की कितनी ही हानि हो। आचरण के सामने धन का कोई महत्त्व न होना चाहिए।

प्रभाकरराव को धैर्य हुआ। बोले, बस यही मैं भी कहनेवाला था, अगर थोड़ी-सी आर्थिक हानि से एक कुप्रथा का सुधार हो रहा है तो वह हानि प्रसन्नता से उठा लेनी चाहिए। आप लोग जानते हैं कि हमारी गवर्नमेंट को चीन से अफीम का व्यापार करने में कितना लाभ था। १८ करोड़ से कुछ अधिक ही होगा। पर चीन में अफीम खाने की कुप्रथा मिटाने के लिए सरकार ने इतनी भीषण हानि उठाने में जरा भी आगा-पीछा नहीं किया।

कँवर अनिरुद्धसिंह ने प्रभाकरराव की ओर देखते हुए पूछा, महाशय, आप तो

अपने पत्रिका के सम्पादक में लीन रहते हैं, आपके पास जीवन के आनंद - लाभ के लिए समय ही कहाँ है ? पर हम जैसे बेफ्रिकों को तो दिल बहलाव का कोई सामान चाहिए ? संध्या का समय तो पोलो खेलने में कट जाता है, दोपहर का समय सोने में और प्रातःकाल अफसरों से भेंट - भौट करने या घोड़े दौड़ाने में व्यतीत हो जाता है । लेकिन संध्या से दस बजे रात तक बैठे - बैठे क्या करेंगे ? आप आज यह प्रस्ताव लाये हैं कि वेश्याओं को शहर से निकाल दो, कल को आप कहेंगे कि म्युनिसिपैलिटी के अंदर कोई आज्ञा लिये बिना नाच, गाना, मुजरा न कराने पाये, तो फिर हमारा रहना कठिन हो जायगा ।

प्रभाकरराव मुस्करा कर बोले, क्या पोलो और नाच - गाने के सिवा समय काटने का और कोई उपाय नहीं है ? कुछ पढ़ा कीजिए ।

कुँवर — पढ़ना हम लोगो को मना है । हमको किताब के कीड़े बनने की जरूरत नहीं । अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए जिन बातों की जरूरत है उनकी शिक्षा हमको मिल चुकी है । हम फ्रांस और स्पेन का नाच जानते हैं, आपने उनका नाम भी न सुना होगा । प्यानो पर बैठा दीजिए वह राग अजापूँ कि मोजार्ट लज्जित हो जाय । अँगरेजी रीति - व्यवहार का हमको पूर्ण ज्ञान है । हम जानते हैं कि कौन - सा समय सोला हैट लगाने का है, कौन - सा पगड़ी का । हम किताबें भी पढ़ते हैं । आप हमारे कमरे में कई - कई आलमारियाँ पुस्तकों से सजी हुई देखेंगे, मगर उन किताबों में चिमटते नहीं । आपके इस प्रस्ताव से हम तो मर मिटेंगे ।

कुँवर साहब की हास्य और व्यंग से भरी बातों ने दोनों पक्षों का समाधान कर दिया ।

डाक्टर श्यामाचरण ने कुँवर साहब की ओर देख कर कहा, मैं इस विषय में कौंसिल में प्रश्न करनेवाला हूँ । जब तक गवर्नमेंट उसका उत्तर न दे, मैं अपना विचार प्रकट नहीं कर सकता ।

यह कह कर डाक्टर महोदय ने अपने प्रश्नों को पढ़ कर सुनाया ।

रमेशदत्त ने कहा, इन प्रश्नों का कदाचित् गवर्नमेंट कुछ उत्तर न देगी ।

डाक्टर — उत्तर मिले या न मिले प्रश्न तो हो जायेंगे । इसके सिवा और हम कर ही क्या सकते हैं ?

सेठ बलभद्रदास को विश्वास हो गया कि अवश्य हमारी विजय होगी । डाक्टर साहब को छोड़ कर १७ सम्मतियों में ६ उनके पक्ष में थी । इसलिए अब वह निरपेक्ष रह सकते थे, जो सभापति का धर्म है । उन्होंने सारगर्भित वक्तृता देते हुए इस प्रस्ताव की मीमांसा की । उन्होंने कहा, सामाजिक विप्लव पर मेरा विश्वास नहीं है । मेरा विचार है कि समाज को जिस सुधार की आवश्यकता होती है वह स्वयं कर लिया करता है । विदेश - यात्रा, जाति - पाँति के भेद, खान - पान के निरर्थक बंधन, सब

के सब समय के प्रवाह के सामने सिर झुकाते चले जाते हैं। इस विषय में समाज को स्वच्छंद रखना चाहता हूँ। जिस समय जनता एक स्वर से कहेगी कि हम वेश्याओं को चौक में नहीं देखना चाहते, तो संसार में ऐसी कौन-सी शक्ति है जो उसकी बात को अनसुनी कर सके ?

अंत में सेठ जी ने बड़े भावपूर्ण स्वर से ये शब्द कहे, हमको अपने संगीत पर गर्व है। जो लोग इटली और फ्रांस के संगीत से परिचित हैं वे भी भारतीय गान के भाव, रस और आनंदमय शांति के कायल हैं। किंतु काल की गति ! वही संस्था जिसकी जड़ खोदने पर हमारे कुछ सुधारक तुले हुए हैं, इस पवित्र — इस स्वर्गीय धन की अध्यक्षिणी बनी हुई है। क्या आप इस संस्था का सर्वनाश करके अपने पूर्वजों के अमूल्य धन को इस निर्दयता से धूल में मिला देंगे ? क्या आप नहीं जानते थे कि हम में आज जो जातीय और धार्मिक भाव शेष रह गये हैं उनका श्रेय हमारे संगीत को है, नहीं तो आज राम, कृष्ण और शिव का कोई नाम भी न जानता ! हमारा बड़े-से-बड़ा शत्रु भी हमारे हृदय से जातीयता का भाव मिटाने के लिए इससे अच्छी और कोई चाल नहीं सोच सकता। मैं यह नहीं कहता कि वेश्याओं से समाज को हानि नहीं पहुँचती। कोई समझदार आदमी ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकता। लेकिन रोग का निवारण मौत से नहीं, दवा से होता है। कोई कुप्रथा उपेक्षा या निर्दयता से नहीं मिटती। उसका नाश शिक्षा, ज्ञान और दया से होना है। स्वर्ग में पहुँचने के लिए कोई सीधा रास्ता नहीं है। वैतरणी का सामना अवश्य करना पड़ेगा। जो लोग समझते हैं कि वह किसी महात्मा के आशीर्वाद से कूद कर स्वर्ग में जा बैठेंगे वह उनसे अधिक हास्यास्पद नहीं है जो समझते हैं कि चौक से वेश्याओं को निकाल देने से भारत के सब दुःख-दारिद्र्य मिट जायेंगे और एक नवीन सूर्य का उदय हो जायगा।

१६

विठ्ठलदास ने सुमन को विधवाश्रम में गुप्त रीति से रक्खा था। प्रबंधकारिणी सभा के किसी भी सदस्य को इत्तला न दी थी। आश्रम की विधवाओं से उसे विधवा बताया था। लेकिन अबुलवफा जैसे टोहियों से यह बात बहुत दिनों तक गुप्त न रही। उन्होंने हिरिया को ढूँढ़ निकाला और उससे सुमन का पता पूछ लिया। तब अपने अन्य रसिक मित्रों को भी इसकी सूचना दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन सज्जनों की आश्रम पर विशेष रीति से कृपादृष्टि होने लगी। कभी सेठ चिम्पनलाल आते, कभी सेठ बलभद्रदास, कभी पंडित दीनानाथ विराजमान हो

जाते। इन महानुभावों को अब आश्रम की सफाई और सजावट, उसकी आर्थिक दशा, उसके प्रबंध आदि विषयों से अद्भुत सहानुभूति हो गयी थी। रात-दिन आश्रम की शुभकामना में मग्न रहते थे।

विट्ठलदास बड़े संकट में पड़े हुए थे। कभी विचार करते कि इस पद से इस्तीफा दे दूँ। क्या मैंने ही इस आश्रम का जिम्मा लिया है। कमेटी में और कितने ही मनुष्य हैं जो इस काम को सँभाल सकते हैं। वह जैसा उचित समझेंगे इसका प्रबंध करेंगे, मुझे अपनी आँखों से तो यह अत्याचार न देखना पड़ेगा। कभी सोचते, क्यों न एक दिन इन दुराचारियों को फटकारूँ? फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। लेकिन जब शांत चित्त हो कर देखते तो उन्हें सब्र से काम लेने के सिवा और कोई उपाय न सूझता। हाँ, उन लोगों से बड़ी रुखाई से बातचीत करते, उनके प्रस्तावों की उपेक्षा किया करते और अपने भावों से यह प्रकट करना चाहते थे कि मुझे तुम लोगों का यहाँ आना असह्य है। किंतु गरज के बावले मनुष्य देख कर भी अनदेखी कर जाते हैं। दोनों सेठ विनय और शील की साक्षात् मूर्ति बन जाते, तिवारी जी ऐसे सरल बन जाते मानो उन्हें कभी क्रोध आ ही नहीं सकता। इस कूटनीति के आगे विट्ठलदास की अकल कुछ काम न करती।

एक दिन प्रातःकाल विट्ठलदास इन्हीं चिंताओं में बैठे हुए थे कि एक फिटन आश्रम के द्वार पर आ कर रुकी। उसमें से कौन लोग उतरे? अबुलवफा और अब्दुल्लतीफ।

विट्ठलदास मन में तिलमिला कर रह गये। अभी सेठों ही का रोना था कि एक और बला आ पड़ी। जी में तो आया कि दोनों को दुतकार दूँ, पर धैर्य से काम लिया।

अबुलवफा ने कहा, आदाब अर्ज है बंदानवाज ! आज कुछ तबीयत परेशान है क्या? वल्लाह आपका ईसार देख कर रूह को सरूर हो जाता है। खुशनसीब है वह कौम जिसमें आप जैसे खादिम मौजूद हैं। एक हमारी खुदगरज, खुशनुमा कौम है जिसे इन बातों का एहसास ही नहीं। जो लोग बड़े नेकनाम हैं वह भी गरज से पाक नहीं, क्यों मुन्शी अब्दुल्लतीफ साहब ?

अब्दुल्लतीफ — जनाब, हमारी कौम की कुछ न कहिए ? खुदगरज, खुदफरोश, खुदमतलब, कजफ़हम, कजरौ, कजबीं जो कहिए थोड़ा है। बड़ों-बड़ों को देखिए, रंगे हुए सियार हैं, रिया का जामा पहने हुए। आपकी जात मसदरे बरकात है। ऐसा मालूम होता है कि खुदाताला ने मलायक में से इन्तखाव करके आपको इस खुशनसीब कौम पर नाजिल किया है।

अबुलवफा — आपकी पाकनफ़सी दिलों पर खामख्वाह असर डालती है। क्यों आपके यहाँ कुछ सोज़नकारी और बेलबूटे के काम तो होते ही होंगे ? मेरे एक

दोस्त ने सोजनकारी की कई दर्जन चादरो की फरमाईश लिख भेजी है। हालाँ कि शहर में कई जगह यह काम होता है, लेकिन मैंने यह खयाल किया कि आश्रम को प्राइवेट काम करनेवालों पर तरजीह होना चाहिए। आपके यहाँ कुछ नमूने मौजूद हों तो दिखाने की तकलीफ कीजिए।

विठ्ठलदास — मेरे यहाँ ये सब काम नहीं होते।

अबुलवफा — मगर होने की जरूरत है। आप दरियापन कीजिए, कुछ मस्तूरात जरूर यह काम जानती होंगी। हमें ऐसी कोई उजलन नहीं है, फिर हाजिर होंगे। एक, दो, चार, दस बार आने में हमको इनकार नहीं है। आप अपना सब कुछ निसार कर रहे हैं तो क्या मुझसे इतना भी न होगा। मैं इन मुआमलों में कौमी तफरीक मुनासिब नहीं समझता।

विठ्ठल — मैं इस मेहरबानी के लिए आपका मशकूर हूँ। लेकिन कमेटी ने यह फैसला कर दिया है कि यहाँ इस किस्म का कोई काम न कराया जाय। इस वजह से मजबूर हूँ।

यह कह कर विठ्ठलदास उठ खड़े हुए। अब दोनों सज्जनों को लौट जाने के सिवा और कोई उपाय न सूझा। मन में विठ्ठलदास को गालियाँ देते हुए फिटन पर सवार हो गये।

लेकिन अभी फिटन की आवाज कान में आ रही थी कि सेठ चिम्मनलाल की मोटरकार आ पहुँची। सेठ जी शान से उतरे। विठ्ठलदास से हाथ मिलाया और बोले, क्यों बाबू साहब! नाटक के विषय में आपने क्या राय की? शकुंतला नाटक भयंरी का सबसे उत्तम ग्रंथ है। इसे अंग्रेज बहुत पसंद करते हैं। जरूर खेलिए। कुछ पार्ट याद कराये हो तो मैं भी सुनूँ।

कभी-कभी कठिनता में हमको ऐसी चालें सूझ जाती हैं जो सोचने से ध्यान में नहीं आती। विठ्ठलदास ने सोचा था कि इन सेठ जी से कैसे पिंड छुड़ाऊँ, लेकिन कोई उपाय न सूझा। इस समय अकस्मात् उन्हें एक बात सूझ गयी। बोले, जी नहीं, इस नाटक के खेलने की सलाह नहीं हुई। मैंने इस मुआमिले में बड़े साहब से राय ली थी। उन्होंने मना कर दिया — समझ में नहीं आता कि यह लोग पोलिटिक्स का क्या अर्थ लगाते हैं। आज बातों-ही-बातों में मैंने बड़े साहब से आश्रम के लिए कुछ वार्षिक सहायता की प्रार्थना की तो क्या बोले कि मैं पोलिटिकल कार्यों में सहायता नहीं दे सकता। मैं उनकी बात सुन कर चकित हो गया। पृच्छा, आप आश्रम को किस विचार से पोलिटिकल संस्था समझते हैं। इसका केवल यह उत्तर दिया कि मैं इसका उत्तर नहीं देना चाहता।

चिम्मनलाल के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। बोले, तो साहब ने आश्रम को भी पोलिटिकल समझ लिया?

विठ्ठल — जी हाँ, साफ कह दिया ।

चिम्मन — तो क्यों महाशय, जब उनका यह विचार है तो यहाँ आने-जाने वालों की देख - भाल भी अवश्य होती होगी ?

विठ्ठल — जी हाँ, और क्या ? लेकिन इससे क्या होता है ? जिन्हें जाति से प्रेम है वे इन बातों से कब डरते हैं ?

चिम्मन — जी नहीं, मैं उन जाति - प्रेमियों में नहीं । अगर मुझे मालूम हो जाय कि यह लोग रामलीला को पोलिटिकल समझते हैं तो उसे भी बंद कर दूँ । पोलिटिकल के नाम से मेरा रोआँ थरथराने लगता है । आप मेरे घर में देख आइए, भगवद्गीता की एक कापी भी नहीं है । मैंने अपने आदमियों को कड़ी ताकीद कर दी है कि बाजार से चीजें पत्ते में लाया करें, मैं रही समाचारपत्रों की पुड़िया तक घर में नहीं आने देता । महाराणा प्रताप की एक पुरानी तस्वीर कमरे में थी, उसे मैंने उतार कर संदूक में बंद कर दिया है । अब मुझे आज्ञा दीजिए । यह कह कर वह तोड़ सँभालते हुए मोटर की ओर लपके । विठ्ठलदास मन में खूब हँसे । अच्छी चाल सूझी । लेकिन इसका बिल्कुल विचार न किया था कि झूठ कितना बोलना पड़ा और इससे आत्मा का कितना ह्रास हुआ । यह सेवाधर्म का पुतला अपने निज के व्यवहार में झूठ और चालबाजी से कोसों भागता था, लेकिन जातीय कार्यों में अवसर पड़ने पर उसकी सहायता लेने में संकोच न करता था ।

चिम्मनलाल के जाने के बाद विठ्ठलदास ने चंदे का रजिस्टर उठाया और चंदा बसूल करने को उठे । लेकिन कमरे से बाहर भी न निकले थे कि सेठ बलभद्र - दास को पैरगाड़ी पर आते देखा । क्रोध से शरीर जल उठा । रजिस्टर पटक दिया और लड़ने पर उतारू हो गये ।

बलभद्रदास ने आगे बढ़ कर कहा, कहिए महाशय, कल मैंने जो पौधे भेजे थे वह आपने लगवा दिये या नहीं ? जरा मैं देखना चाहता हूँ । कहिए तो अपना माली भेज दूँ ।

विठ्ठलदास ने उदासीन भाव से कहा, जी नहीं । आपको माली भेजने की आवश्यकता नहीं, और न वह पौधे यहाँ लग सकते हैं ।

बलभद्र — क्यों, लग क्यों नहीं सकते ? मेरा माली आ कर सब ठीक कर देगा । आज ही लगवा दीजिए, नहीं तो वे सब सूख जायेंगे ।

विठ्ठल — सूख जायें चाहे रहे, पर वह यहाँ नहीं लग सकते ।

बलभद्र — नहीं लगाने थे तो पहले ही कह दिया होता । मैंने सहारनपुर से मँगवाये थे ।

विठ्ठल — बरामदे में पड़े हैं, उठवा ले जाइए ।

सेठ बलभद्रदास अभिमानी स्वभाव के मनुष्य थे । यों वे शील और विनय

के पुतले थे, लेकिन जरा किसी ने अकड़ कर बात की, जरा भी निगाह बदली कि वे आग हो जाते थे। अरयंत निर्भीक राजनीति-कुशल पुरुष थे। इन गुणों के कारण जनता उन पर जान देती थी। उसे उन पर पूरा विश्वास था। उसे निश्चय था कि न्याय और सत्य के विषय में ये कभी कदम पीछे न उठायेंगे, अपने स्वार्थ और सम्मान के लिए जनता का अहित न सोचेंगे। डाक्टर श्यामचरण पर जनता का यह विश्वास न था। जनता की दृष्टि में विद्या, बुद्धि और प्रतिभा का उतना मूल्य नहीं होता जितना चरित्र - बल का।

विठ्ठलदास की यह रूखी बातें सुन कर बलभद्रदास के तेवरों पर बल पड़ गये। तन कर बोले, आज आप इतने अनमने क्यों हो रहे हैं ?

‘मुझे मीठी बातें करने का ढंग नहीं आता !’

‘मीठी बातें न कीजिए लेकिन लाठी तो न मारिए।’

‘मैं आपसे शिष्टाचार का पाठ नहीं पढ़ना चाहता।’

‘आप जानते हैं, मैं भी प्रबंधकारिणी सभा का मेम्बर हूँ।’

‘जी हाँ, जानता हूँ।’

‘चाहता तो प्रधान होता।’

‘जानता हूँ।’

‘मेरी सहायता किसी से कम नहीं है।’

‘इन पुरानी बातों को याद दिलाने की क्या जरूरत ?’

‘चाहूँ तो आश्रम को मिटा दूँ।’

‘असंभव।’

‘सभा के सब मेम्बर मेरे इशारे पर नाच सकते हैं।’

‘संभव है।’

‘एक दिन में इसका कही पता न चले।’

‘असंभव।’

‘आप किस घमंड में भूले हुए हैं।’

‘ईश्वर के भरोसे पर।’

सेठ जी आश्रम की ओर कुपित नेत्रों से ताकते हुए पैरगाड़ी पर सवार हो गये। लेकिन विठ्ठलदास पर उनकी धमकियों का कुछ असर न हुआ। उन्हें निश्चय था कि ये सभा के मेम्बरों से आश्रम के विषय में कुछ न कहेंगे। उनका अभिमान उन्हें इतना नीचे न गिरने देगा। संभव है, वह इस झोंप को मिटाने के लिए मेम्बरों से आश्रम की प्रशंसा करें; लेकिन यह आग कभी - न - कभी भड़केगी अवश्य, इसमें सदेह नहीं था। अभिमान अपने अपमान को नहीं भूलता। इसकी शंका होने पर भी विठ्ठलदास को वह क्षोभ नहीं था जो किसी झगड़े के बाद मेघ के समान हृदय -

काश पर छा जाया करता है। इसके प्रतिकूल उन्हें अपने कर्तव्य के पूरा करने का संतोष था, और वह पछता रहे थे कि मैंने इसमें इतना विलम्ब क्यों किया ? इस संतोष से वह ऐसी मौज में आये कि ऊँचे स्वर से यह गाने लगे—

प्रभु जी मोहि काहे की लाज !

जन्म जन्म यों ही भरमायौ अभिमानी बेकाज !

प्रभु जी मोहि काहे की लाज !

इतने में उन्हें पद्मसिंह आते दिखायी दिये। उनके मुख से चिता और नैराश्य झलक रहा था, मानो अभी रो कर आँसू पोछे है। विट्ठलदास आगे बढ़ कर उनसे मिले और पूछा, बीमार थे क्या ? बिल्कुल पहचाने नहीं जाते।

पद्म — जी नहीं, बीमार तो नहीं हूँ, हाँ परेशान बहुत रहा।

विट्ठल — सदन का विवाह कुशलतापूर्वक हो गया ?

पद्मसिंह ने छत की ओर ताकते हुए कहा, विवाह का कुछ समाचार न पृच्छिए — विवाह क्या हुआ एक अबला कन्या का जीवन नष्ट कर आये। वह इसी सुमन बाई की बहन निकली, भैया को ज्यों ही मालूम हुआ, वे द्वार से बारात लौटा लाये।

विट्ठलदास ने लम्बी साँस ले कर कहा, यह तो बड़ा अन्याय हुआ। आपने अपने भाई साहब को समझाया नहीं ?

पद्म — अपने से जो कुछ बन पड़ा सब करके हार गया।

विट्ठल — देखिए, अब बेचारी शाता की क्या गति होती है ! सुमन सुनेगी तो रोयेगी।

पद्म — कहिए, यहाँ की क्या खबरें हैं ? सुमन के आने से विधवाओं में हलचल तो नहीं मची ? वे उससे घृणा तो अवश्य ही करती होंगी।

विट्ठल — बात खुल जाय तो आश्रम खाली नजर आये।

पद्म — और सुमन कैसी रहती है ?

विट्ठल—ऐसी अच्छी तरह मानो वह सदा आश्रम में ही रही है। मालूम होता है, वह अपने सद्ब्यवहार से अपनी कालिमा को धोना चाहती है। सब काम करने को तैयार और प्रसन्नचित्त से। अन्य स्त्रियाँ सोती ही रहती हैं और वह उनके कमरे में झाड़ू दे जाती है। कई विधवाओं को सीना सिखाती है, कई उससे गाना सीखती है। सब प्रत्येक बात में उसी की राय लेती हैं। इस चहारदिवारी के भीतर अब उसी का राज्य है। मुझे कदापि ऐसी आशा न थी। यहाँ उसने कुछ पढ़ाना भी शुरू कर दिया है। और भाई, मन का हाल तो ईश्वर जानें, देखने में तो अब उसका बिल्कुल काया-पलट-सा हो गया है।

पद्म — नहीं साहब, वह स्वभाव की बुरी स्त्री नहीं है। मेरे यहाँ महीनों

आती रही थी। मेरे घर में उसकी बड़ी प्रशंसा किया करती थीं (यह कहते - कहते झेप गये)। कुछ ऐसे कुसंस्कार ही हो गये जिन्होंने उससे यह अभिनय कराये। सच पूछिए तो हमारे पापों का दंड उसे भोगना पडा। हाँ, कुछ उधर का समाचार भी मिला ? सेठ बलभद्रदास ने और कोई चाल चली ?

विट्ठल — हाँ साहब, वे चुप बैठनेवाले आदमी नहीं है। आजकल खूब दौड़-धूप हो रही है। दो - तीन दिन हुए हिंदू मेम्बरों की एक सभा हुई थी। मैं तो जान सका, पर विजय उन्ही लोगों की रही। अब प्रधान के दो वोट मिला कर बराबर हा जायेंगे।

पद्म — तो हमको कम - से - कम एक वोट और मिलना चाहिए। है इसकी कोई आशा ?

विट्ठल — मुझे तो कोई आशा नहीं मालूम होती।

पद्म — अवकाश हो तो चलिए, जरा डाक्टर साहब और लाला भगताराम के पास चले।

विट्ठल — हाँ, चलिए, मैं तैयार हूँ।

१७

यद्यपि डाक्टर साहब का बँगला निकट ही था, पर इन दोनों आदमियों ने एक किराए की गाड़ी की। डाक्टर साहब के यहाँ पैदल जाना फैशन के विरुद्ध था। रास्ते में विट्ठलदास ने आज के सारे समाचार बढ़ा चढ़ा कर बयान किये और अपनी चतुराई को खूब दर्शाया।

पद्मसाह ने यह सुनकर चिंतित भाव से कहा, तो अब हमको और सतर्क होने की जरूरत है। अतः मे आश्रम का सारा भार हमी लोगो पर आ पड़ेगा। बलभद्र अभी चाहें चुप रह जायें लेकिन इसकी कसर कभी - न - कभी निकालेंगे अवश्य।

विट्ठल — मैं क्या कहूँ ? मुझसे यह अत्याचार देख कर रहा नहीं जाता। शरीर में एक ज्वाला - सी उठने लगती है ? कहने को ये लोग विद्वान, बुद्धिमान है, नीति - परायण है, पर उनके ऐसे कर्म ? अगर मुझमें कौशल से काम लेने की सामर्थ्य होती तो कम - से - कम बलभद्रदास से लड़ने की नौबत न आती।

पद्म — यह तो एक दिन होना ही था। यह भी मेरे कर्मों का फल है। देखूँ, अभी और क्या - क्या गुल खिलते हैं ? जब से बारात वापस आयी है मेरी विचित्र दशा हो गयी है। न भूख है, न प्यास, रात भर करवटें बदला करता हूँ। यही चिन्ता लगी रहती है कि उस अभागिन कन्या का वेड़ा कैसे पार लगेगा। अगर कहीं

आश्रम का भार सिर पर पड़ा तो जान ही पर बन जायगी। ऐसे अथाह दलदल में फँस गया हूँ कि ज्यों-ज्यों ऊपर उठना चाहता हूँ और नीचे दबा जाता हूँ।

यही बात करते-करते डाक्टर साहब का बँगला आ गया। १० बजे थे। डाक्टर साहब अपने सुसज्जित कमरे में बैठे हुए अपनी बड़ी लड़की मिस कांति से शतरंज खेल रहे थे। मेज पर दो टेरियर कुत्ते बैठे हुए बड़े ध्यान से शतरंज की चालों को देख रहे थे और कभी-कभी जब उनकी समझ में खिलाड़ियों से कोई भूल हो जाती थी तो पंजों से मोहरों को उलट-पलट देते थे। मिस कांति उनकी इस शरारत पर हँस कर अँग्रेजी में कहती थीं, 'यू नाटी!'

मेज की बायी ओर एक आराम कुर्सी पर सैयद तेगबली साहब विराजमान थे और बीच-बीच में मिस कांति को चालें बताते जाते थे।

इतने में हमारे दोनों मित्र जा पहुँचे। डाक्टर साहब ने उठ कर दोनों सज्जनों से हाथ मिलाया। मिस कांति ने उनकी ओर दबी निगाहों से देखा और मेज पर से एक पत्र उठा कर पढ़ने लगी।

डाक्टर साहब ने अँग्रेजी में कहा, मैं आप लोगो से मिल कर बहुत प्रसन्न हुआ। आइए, आप लोगो को मिस कांति से इंट्रोड्यूस करा दूँ।

परिचय हो जाने पर मिस कांति ने दोनों आदमियों से हाथ मिलाया और हँसती हुई बोलीं, बाबा अभी आप लोगों का जिक्र कर रहे थे। मैं आप से मिल कर बहुत प्रसन्न हुई।

डाक्टर श्यामाचरण — मिस कांति अभी डलहौसी पहाड़ से आयी है। इनका स्कूल जाड़े में बंद हो जाता है। वहाँ शिक्षा का बहुत उत्तम प्रबंध है। यह अँग्रेजों की लड़कियों के साथ बोर्डिंगहाउस में रहती हैं। लेडी प्रिंसिपल ने अबकी इनकी प्रशंसा की है। कांति, जरा अपनी लेडी प्रिंसिपल की चिट्ठी इन्हें दिखा दो। मिस्टर शर्मा, आप कांति की अँगरेजी बातें सुन कर दंग रह जायँगे। (हँसते हुए) यह मुझे कितने ही नये मुहाविरें सिखा सकती है।

मिस कांति ने लजाते हुए अपना प्रशंसा-पत्र पद्मसिंह को दिखाया। उन्होंने उसे पढ़ कर कहा, आप लेटिन भी पढ़ती है?

डाक्टर साहब ने कहा, लेटिन में अबकी परीक्षा में इन्हें एक पदक मिला है। क्लब में कांति ने ऐसा अच्छा गेम दिखाया कि अँगरेज लेडियाँ दंग रह गयीं। हाँ, अबकी बार आप हिंदू मेम्बरों के जलसे में नहीं थे।

पद्म — जी नहीं, मैं जरा मकान पर चला गया था।

डाक्टर — आप ही के प्रस्ताव पर विचार किया गया। मैं तो उचित समझता हूँ कि अभी उसे बोर्ड में पेश करने में जल्दी न करें। अभी सफलता की बहुत कम आशा है।

तेगअली बोले, जनाब, मुसलमान मेम्बरों की तरफ से तो आपको पूरी मदद मिलेगी ।

डाक्टर — हाँ, लेकिन हिंदू मेम्बरों में तो मतभेद है ।

पद्म — आपकी सहायता हो जाय तो सफलता में कोई सदेह न रहे ।

डाक्टर — मुझे इस प्रस्ताव से पूरी सहानुभूति है, लेकिन आप जानते हैं मैं गवर्नमेंट का नामजद किया हुआ मेम्बर हूँ । जब तक यह न मालूम हो जाय कि गवर्नमेंट इस विषय को पसंद करती है या नहीं, तब तक मैं ऐसे सामाजिक प्रश्न पर कोई राय नहीं दे सकता ।

विट्ठलदास ने तीव्र स्वर से कहा, जब मेम्बर होने से आपके विचार-स्वातंत्र्य में बाधा पड़ती है तो आपको इस्तीफा दे देना चाहिए ।

तीनों आदमियों ने विट्ठलदास को उपेक्षा की दृष्टि से देखा । उनका कथन असंगत था । तेगअली ने व्यंग भाव से कहा, इस्तीफा दे दें तो यह सम्मान कैसे हो ? लाट साहब के बराबर कुरसी पर कैसे बैठें ? आनरेबल कैसे कहलाये ? बड़े-बड़े अँगरेजों से हाथ मिलाने का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो ? सरकारी दिनर में बढ़-चढ़ कर हाथ मारने का गौरव कैसे मिले ? नैनीताल की सैर कैसे करें ? अपनी वक्तृता का चमत्कार कैसे दिखाये ? यह भी तो सोचिए ।

विट्ठलदास बहुत लज्जित हुए । पद्मसिंह पछताये कि विट्ठलदास के साथ नाहक आये ।

डाक्टर साहब गम्भीर भाव से बोले, साधारण लोग समझते हैं कि इस लालच से लोग मेम्बरी के लिए दौड़ते हैं । वह यह नहीं समझते कि कितनी जिम्मेदारी का काम है । गरीब मेम्बरों को अपना कितना समय, कितना विचार, कितना धन, कितना परिश्रम इसके लिए अर्पण करना पड़ता है । इसके बदले उसे इस सतोष के सिवाय और क्या मिलता है कि मैं देश और जाति की सेवा कर रहा हूँ । ऐसा न हो तो कोई मेम्बरी की परवाह न करे ।

तेगअली — जी हाँ, इसमें क्या शक है ! जनाब ठीक फरमाते हैं । जिसके सिर यह अजोमुश्शान जिम्मेदारी पड़ती है उसका दिल जानता है ।

११ बज गये थे । इयामाचरण ने पद्मसिंह से कहा, मेरे भोजन का समय आ गया अब जाता हूँ । आप संध्या समय मुझसे मिलेंगा ।

पद्मसिंह ने कहा, हाँ, हाँ, शौक से जाइए । उन्होंने सोचा, जब ये भोजन में जरा-सी देर हो जाने से इतने घबराते हैं तो दूसरों से क्या आशा की जाय ? लोग जाति और देश के सेवक तो बनना चाहते हैं, पर जरा-सा भी कष्ट नहीं उठाना चाहते ।

लाला भगताराम धूप में तख्ते पर बैठे हुक्का पी रहे थे । उनकी छोटी लड़की

गोद में बैठी हुई धुर्रों को पकड़ने के लिए बार-बार हाथ बढ़ाती थी। सामने जमीन पर कई मिस्त्री और राजगीर बैठे हुए थे। भगतराम पद्मसिंह को देखते ही उठ खड़े हुए और पालागन करके बोले, मैंने शाम ही को सुना था कि आप आ गये, आज प्रातःकाल आनेवाला था, लेकिन कुछ ऐसा झंझट आ पड़ा कि अवकाश ही न मिला। यह ठेकेदारी का काम बड़े झगड़े का है। काम कराइए, अपने रुपये लगाइए, उस पर दूसरों की खुशामद कीजिए। आजकल इंजीनियर साहब किमी बात पर ऐसे नाराज हो गये हैं कि मेरा कोई काम उन्हें पसंद नहीं आता। एक पुल बनवाने का ठीका लिया था। उसे तीन बार गिरवा चुके हैं। कभी कहते हैं, यह नहीं बना, कभी कहते हैं, वह नहीं बना। नफा कहां से होगा, उलटे नुकसान होने की संभावना है। कोई सुनने वाला नहीं है। आपने सुना होगा, हिंदू मेम्बरों का जलसा हो गया।

पद्म — हाँ, सुना और सुन कर शोक हुआ। आपसे मुझे पूरी आशा थी। क्या आप इस सुधार को उपयोगी नहीं समझते ?

भगतराम — इसे केवल उपयोगी ही नहीं समझता, बल्कि हृदय से इसकी सहायता करना चाहता हूँ, पर मैं अपनी राय का मालिक नहीं हूँ। मैंने अपने को स्वार्थ के हाथों में बेच दिया है। मुझे आप ग्रामोफोन का रेकार्ड समझिए, जो कुछ भर दिया जाता है वही कह सकता हूँ और कुछ नहीं।

पद्मसिंह — लेकिन आप यह तो मानते हैं कि जाति के हित में स्वार्थ से पार्थक्य होना चाहिए।

भगतराम — जी हाँ, इसे सिद्धांत रूप से मानता हूँ, पर इसे व्यवहार में लाने की शक्ति नहीं रखता। आप जानते होंगे, मेरा सारा कारबार सेठ चिमन-लाल की मदद से चलता है। अगर उन्हें नाराज कर लूँ तो यह सारा ठाठ बिगड़ जाय। समाज मे मेरी जो कुछ मान-मर्यादा है वह इसी ठाठ-बाट के कारण है। विद्या और बुद्धि है ही नहीं, केवल इसी स्वाँग का भरोसा है। आज अगर कलाई खुल जाय तो कोई बात भी न पूछे। दूध की मक्खी की तरह समाज से निकाल दिया जाऊँ। बतलाइए, शहर में कौन है जो केवल मेरे विश्वास पर हजारों रुपये बिना मूद के दे देगा, और फिर केवल अपनी ही फिक्र तो नहीं है। कम-से-कम ३०० रु० मासिक गृहस्थी का खर्च है। जाति के लिए मैं स्वयं कष्ट झेलने के लिए तैयार हूँ, पर अपने बच्ची को कैसे निरवलम्ब कर दूँ ?

जब हम अपने किसी कर्तव्य से मुँह मोड़ते हैं तो दोष से बचने के लिए ऐसी प्रबल युक्तियाँ निकालते हैं कि कोई मुँह न खोल सके। उस समय हम संकोच को छोड़ कर अपने सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी बातें कह डालते हैं कि जिनके गुप्त रहने ही में हमारा कल्याण है। लाला भगतराम के हृदय में यही भाव काम कर रहा था।

पद्मसिंह समझ गये कि इनसे कोई आशा नहीं। बोले, ऐसी अवस्था में आप पर कैसे जोर दे सकता हूँ। मुझे केवल एक वोट की फिक्र है, कोई उपाय बताइए, कैसे मिले ?

भगत — कुँवर साहब के यहाँ जाइए। ईश्वर चाहेगे तो उनका वोट आपको मिल जायगा। सेठ बलभद्रदास ने उन पर ३००० रु० की नाजिश की है। कल उनकी डिगरी भी हो गयी। कुँवर साहब इस समय बलभद्रदास से तने हुए हैं, वश चले तो गोली मार दें। फँसाने का एक लटका आपको और बताये देता हूँ। उन्हें किसी सभा का प्रधान बना दीजिए। बस, उनकी नकेल आपके हाथ में हो जायगी।

पद्मसिंह ने हँस कर कहा, अच्छी बात है; उन्हीं के यहाँ चलता हूँ।

दोपहर हो गयी थी, लेकिन पद्मसिंह को भूख - प्यास न थी। बग़ी पर बैठ कर चले। कुँवर साहब बरुना किनारे एक बँगले में रहते थे। आध घंटे में जा पहुँचे।

बँगले के हाते में न कोई सजावट थी न सफाई। फूल - पत्ती का नाम न था। बरामदे में कई कुत्ते जंजीर में बँधे खड़े थे। एक तरफ कई घोड़े बँधे हुए थे। कुँवर साहब को शिकार का बहुत शौक था। कभी - कभी काश्मीर तक का चक्कर लगाया करते थे। इस समय वह सामने कमरे में बैठे हुए सितार बजा रहे थे। एक कोने में कई बन्दूकें और बरछियाँ रखी हुई थी, दूसरी ओर एक बड़ी मेज पर एक घड़ियाल बैठा था। पद्मसिंह कमरे में आये तो उसे देख कर एक बार चौंक पड़े। खाल में ऐसी सफाई से भूसा भरा गया था कि उसमें जान - सी पड़ गयी थी।

कुँवर साहब ने शर्मा जी का बड़े प्रेम से स्वागत किया — आइए महाशय, आपके तो दर्शन दुर्लभ हो गये। घर से कब आये ?

पद्मसिंह — कल आया हूँ।

कुँवर — चेहरा उतरा हुआ है, बीमार थे क्या ?

पद्म — जी नहीं, बहुत अच्छी तरह हूँ।

कुँवर — कुछ जलपान कीजिएगा ?

पद्म — नहीं, क्षमा कीजिए, क्या सितार का अभ्यास हो रहा है ?

कुँवर — जी हाँ, मुझे तो अपना ही सितार पसंद है। हारमोनियम और प्यानो सुन कर मुझे मतली - सी होने लगती है। इन अँगरेजी बाजो ने हमारे संगीत को चौपट कर दिया, इसकी चर्चा ही उठ गयी। जो कुछ कसर रह गयी थी, वह थिएटरों ने पूरी कर दी। बस, जिसे देखिए गजल और कौवाली की रट लगा रहा है। थोड़े दिनों में धनुर्विद्या की तरह इसका भी लोप हो जायगा। संगीत में हृदय में पवित्र भाव पैदा होते हैं। जब से गाने का प्रचार कम हुआ, हम लोग भाव - शून्य हो गये और इसका सबसे बुरा असर हमारे साहित्य पर पड़ा है। कितने शोक की

बात है जिस देश में रामायण जैसे अमूल्य ग्रंथ की रचना हुई, सूरसागर जैसा आनंदमय काव्य रचा गया, उसी देश में अब साधारण उपन्यासों के लिए हमको अनुवाद का आश्रय लेना पड़ता है। बंगाल और महाराष्ट्र में अभी गाने का कुछ प्रचार है, इसीलिए वहाँ भावों का ऐसा शैथिल्य नहीं है, वहाँ रचना और कल्पना - शक्ति का ऐसा अभाव नहीं है। मैंने तो हिंदी साहित्य का पढ़ना ही छोड़ दिया। अनुवादों को निकाल डालिए तो नवीन हिंदी साहित्य में हरिश्चंद्र के दो - चार नाटकों और चन्द्रकाता सतति के सिवा और कुछ रहता ही नहीं। ससार का कोई साहित्य इतना दरिद्र न होगा। उस पर तुरी यह है कि जिन महानुभावों ने दो - एक अँगरेजी ग्रंथों के अनुवाद मराठी और बँगला अनुवादों की सहायता से कर लिये वे अपने को धुरधुर साहित्यज्ञ समझने लगे हैं। एक महाशय ने कालिदास के कई नाटकों के पद्यबद्ध अनुवाद किये हैं, लेकिन वे अपने को हिंदी का कालिदास समझते हैं ! एक महाशय ने 'मिल' के दो ग्रंथों का अनुवाद किया है और वह भी स्वतंत्र नहीं, बल्कि गुजराती, मराठी आदि अनुवादों के सहारे से, पर वह अपने मन में ऐसे सतुष्ट है मानो उन्होंने हिंदी साहित्य का उद्धार कर दिया। मेरा तो यह निश्चय होता जाता है कि अनुवादों से हिंदी का अपकार हो रहा है। मौलिकता को पनपने का अवसर नहीं मिलने पाता।

पद्मसिंह को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि कुँवर साहब का साहित्य से इतना परिचय है। वह समझते थे कि इन्हें पोलों और शिकार के सिवाय और किसी से प्रेम न होगा। वह स्वयं हिंदी साहित्य से अपरिचित थे, पर कुँवर साहब के सामने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते संकोच होता था। उन्होंने इस तरह मुस्करा कर देखा मानो यह सब बातें उन्हें पहले ही से मालूम थी और बोले, आपने तो ऐसा प्रश्न उठाया जिस पर दोनों पक्षों की ओर से बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इस समय मैं आपकी सेवा में किसी और ही काम से आया हूँ। मैंने सुना है कि हिंदू मेम्बरों के जलसे में आपने सेठों का पक्ष ग्रहण किया।

कुँवर साहब ठठा कर हँसे। उनकी हँसी कमरे में गूँज उठी। पीतल की ढाल जो दीवार से लटक रही थी इस झनकार से थरथराने लगी। बोले, सच कहिए, आपने किससे सुना ?

पद्मसिंह इस कुसमय हँसी का तात्पर्य न समझ कर कुछ भौचक - से हो गये। उन्हें मालूम हुआ कि कुँवर साहब मुझे बनाना चाहते हैं। चिढ़ कर बोले, सभी कह रहे हैं, किस - किस का नाम लूँ ?

कुँवर साहब ने फिर जोर से कहकहा मारा और हँसते हुए पूछा, और आपको विश्वास भी आ गया ?

पद्मसिंह को अब इसमें कोई संदेह न रहा कि यह सब मुझे झोपाने का स्वाँग

है, जोर दे कर बोले, अविश्वास करने के लिए मेरे पास कोई कारण नहीं है।

कुँवर — कारण यही है कि मेरे साथ घोर अन्याय होगा। मैंने अपनी समझ में अपनी संपूर्णशक्ति अपने प्रस्ताव के समर्थन में खर्च कर दी थी। यहाँ तक कि मैंने विरोध को गंभीर विचार के लायक भी न सोचा। व्यंग्योक्ति ही से काम लिया। (कुछ याद करके) हाँ, एक बात हो सकती है। समझ गया। (फिर कहकहा मार कर) अगर यह बात है तो मैं कहूँगा कि म्युनिसिपैलिटी बिल्कुल बद्धिया के ताऊ लोगों ही से भरी है। व्यंग्योक्ति तो आप समझते ही होंगे। बस, यह सारा कसूर उसी का है। किसी सज्जन ने उसका भाव न समझा। काशी के सुशिक्षित सम्मानित म्युनि-सिपल कमिश्नरों में किसी ने भी एक साधारण-सी बात न समझी। शोक ! महा-शोक !! महाशय, आपको बड़ा कष्ट हुआ। क्षमा कीजिए। मैं इस प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन करता हूँ।

पद्मसिंह भी मुस्कराये। कुँवर साहब की बातों पर विश्वास आया। बोले, अगर इन लोगों ने ऐसा धोखा खाया तो वास्तव में उनकी समझ बड़ी मोटी है। मगर प्रभाकरराव धोखे में आ जायें, यह समझ में नहीं आता पर ऐसा मालूम होता है कि नित्य अनुवाद करते-करते उनकी बुद्धि भी गायब हो गयी है।

पद्मसिंह जब यहाँ से चले तो उनका मन ऐसा प्रसन्न था मानों वह किसी बड़े रमणीक स्थान की सैर करके आते हों। कुँवर साहब के प्रेम और शील ने उन्हें बशी-भूत कर लिया था।

१८

कृष्णचंद्र जेल से छूट कर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि गंगाजली की मृत्यु हो चुकी है तथा सुमन वेश्या बन गयी है और इस कारण उनके सामने ही शांता की बारात लौट गयी। शोक और नैराश्य में उन्होंने आत्महत्या कर ली। शांता सदन को अपना पति मान चुकी थी, अब किसी दूसरे पुरुष की कल्पना उसके सतीत्व पर कुठार के समान लगती थी। उमानाथ जब उसके अन्यत्र विवाह की बातचीत करने लगे तो शांता ने पद्मसिंह को पत्र लिखा — मेरी सुधि लीजिए, एक सप्ताह बाद आप इस अबला की पुकार न सुनेंगे। पद्मसिंह विट्ठलदास के साथ अमोला जा कर शांता को बिदा करा लाये और मदनसिंह की स्वीकृति मिलने तक उसे सुमन के साथ आश्रम में रखने का निश्चय किया।

जब हम स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए किसी पहाड़ पर जाते हैं तो इस बात का विशेष यत्न करते हैं कि हमसे कोई कुपथ्य न हो। नियमित रूप से व्यायाम

करते हैं, आरोग्य का उद्देश्य सदैव हमारे सामने रहता है। सुमन विधवाश्रम में आत्मिक स्वास्थ्य लाभ करने गयी थी और अभीष्ट को एक क्षण के लिए भी न भूलती थी। वह अपनी अन्य बहनों की सेवा में तत्पर रहती और धार्मिक पुस्तकें पढ़ती। देवोपासना स्नानादि में उसके व्यथित हृदय को शांति मिलती थी।

विठ्ठलदास ने अमोला के समाचार उससे छिपा रखे थे, लेकिन जब शांता को आश्रम में रखने का विचार निश्चित हो गया तब उन्होंने सुमन को इसके लिए तैयार करना उचित समझा। उन्होंने उसे सारा समाचार कह सुनाया।

आश्रम में सन्नाटा छाया हुआ था। रात बहुत जा चुकी थी, पर सुमन को किसी भाँति नीद न आती थी। उसे आज अपने अविचार का यथार्थ स्वरूप दिखलायी दे रहा था। जिस प्रकार कोई रोगी क्लोरोफार्म लेने के पश्चात् होश में आ कर अपने चीरे-फोड़े के गहरे घाव को देखता है और पीड़ा तथा भय से फिर मूर्च्छित हो जाता है वही दशा इस समय सुमन की थी। पिता, माता और बहन तीनों उसे अपने सामने बैठे हुए मालूम होते थे। माता लज्जा तथा दुःख से सिर झुकाये उदास हो रही थी, पिता खड़े उसकी ओर क्रोधोन्मत्त रक्तवर्ण नेत्रों से ताक रहे थे और शांता शोक, नैराश्य और तिरस्कार की मूर्त्ति बनी हुई कभी धरती की ओर ताकती थी, कभी आकाश की ओर। सुमन का चित्त व्यग्र हो उठा। वह चारपाई से उठी और बलपूर्वक अपना सिर पक्की जमीन पर पटकने लगी। वह अपनी ही दृष्टि में एक पिशाचिनी मालूम होती थी। सिर में चोट लगने से उसे चक्कर आ गया। एक क्षण के बाद उसे चेत हुआ, माथे से रुधिर वह रहा था। उसने धीरे से कमरा खोला। आँगन में अँधेरा छाया हुआ था। वह लपकी हुई फाटक पर आयी, पर वह बद था, उसने ताले को कई बार हिलाया, पर वह न खुला। बुढ़ा चौकीदार फाटक से जरा हट कर सो रहा था। सुमन धीरे-धीरे उसके पास आयी और उसके सिर के नीचे कुंजी टटोलने लगी। चौकीदार हकबका कर उठ बैठा और 'चोर ! चोर !' चिल्लाने लगा। सुमन वहाँ से भागी और अपने कमरे में आ कर किवाड़ बद कर लिये।

किंतु सबेरे पवन के सदृश चित्त की प्रचंड व्यग्रता भी शीघ्र ही शांत हो जाती है। सुमन खूब बिलख कर रोयी ! हाय ! मुझ जैसी डाइन संसार में न होगी, मैंने विलास-तृष्णा की धुन में अपने कुल का सर्वनाश कर दिया, मैं अपने पिता की घातिका हूँ, मैंने शांता के गले पर छुरी चलायी है, मैं उसे यह कालिमापूर्ण मुँह कैसे दिखाऊँगी ? उसके सम्मुख कैसे ताकूँगी ? पिता जी ने जिस समय यह बात सुनी होगी उन्हें कितना दुःख हुआ होगा ! यह सोच कर वह फिर रोने लगी। यह वेदना उसे अपने और कष्टों से अधिक असह्य मालूम होती थी। अगर यह बात उसके पिता से कहने के बदले मदनसिंह उसे कोल्हू में पेर देते, हाथी के पैरों तले कुचलवा देते, आग

मे झोक देते, कुत्तों से नुचवा देते तो वह जरा भी चूँ न करती। अगर विलास की इच्छा और निर्दय अपमान ने उसकी लज्जा - शक्ति को शिथिल न कर दिया होता तो वह कदापि घर से बाहर पाँव न निकालती। वह अपने पति के हाथों कड़ी के कड़ी यातना सहती और घर में पड़ी रहती। घर से निकलते समय उसे यह खयाल भी न था कि मुझे कभी दालमंडी में बैठना पड़ेगा। वह बिना कुछ सोचे - समझे घर से निकल खड़ी हुई। उस शोक और नैराश्य की अवस्था में वह भूल गयी कि मेरे पिता है, वहन है।

बहुत दिनों के वियोग ने उनका स्मरण ही न रखा। वह अपने को संसार में अकेली, असहाय समझती थी। वह समझती थी, मैं किसी दूसरे देश में हूँ और मैं जो कुछ करूँगी वह सब गुप्त ही रहेगा। पर अब ऐसा सयोग आ पड़ा कि वह फिर अपने को आत्मीय सूत्र में बँधी हुई पाती थी। जिन्हें वह भूल चुकी थी, वह फिर उसके सामने आ गये और आत्माओं का स्पर्श होते ही लज्जा का प्रकाश आलोकित होने लगा।

सुमन ने शेष रात मानसिक विकलता की दशा में काटी, चार बजने पर वह गंगास्नान को चली। वह बहुधा अकेले ही जाया करती थी इसलिए चौकीदार ने कुछ पूछताछ न की।

सुमन गंगातट पर पहुँच कर इधर - उधर देखने लगी कि कोई है तो नहीं। वह आज गंगा नहाने नहीं, डूबने आयी थी। उसे कोई शका, भय या घबराहट नहीं थी। कल किसी समय शांता आश्रम में आ जायगी। उसे मुँह दिखाने की अपेक्षा गंगा की गोद में मग्न हो जाना कितना सहज था।

अकस्मात् उसने देखा कि कोई आदमी उसकी तरफ चला आ रहा है। अभी कुछ - कुछ अँधेरा था, पर सुमन को इतना मालूम हो गया कि कोई साधु है। सुमन की अँगुली में एक अँगूठी थी। उसने उसे साधु को दान करने का निश्चय किया, लेकिन वह ज्यों ही समीप आया, सुमन ने भय, घृणा और लज्जा से अपना मुँह छिपा लिया। यह गजाधर थे।

सुमन खड़ी थी और गजाधर उसके पैरों पर गिर पड़े और रुद्ध कंठ से बोले, मेरे अपराध क्षमा करो।

सुमन पीछे हट गयी, उसकी आँखों के सामने अपने अपमान का दृश्य खिंच गया। घाव हरा हो गया। उसके जी में आया कि इसे फटकारूँ, कहूँ कि तुम मेरे पिता के घातक, मेरे जीवन के नाश करनेवाले हो, पर कुछ गजाधर की अनुकम्पापूर्ण उदारता, कुछ उसका साधुवेश और कुछ विराग भाव ने, जो प्राणघात का संकल्प कर लेने के बाद उदित हो जाता है, उसे द्रवित कर दिया। उसके नयन सजल हो गये, कर्ण स्वर से बोली, तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, जो कुछ हुआ वह सब मेरे कर्मों

का फल था ।

गजाधर — नहीं सुमन, ऐसा मत कहो, सब मेरी मूर्खता और अज्ञानता का फल है । मैंने सोचा था कि उसका प्रायश्चित्त कर सकूँगा, पर अपने अत्याचार का भोषण परिणाम देख कर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता । मैंने इन्हीं आँखों से तुम्हारे पूज्य पिता को गंगा में लुप्त होते देखा है ।

सुमन ने उत्सुक भाव से पूछा, क्या तुमने पिता जी को डूबते देखा है ?

गजाधर — हाँ, सुमन, डूबते देखा है । मैं रात को अमोला जा रहा था, मार्ग में वह मुझे मिल गये । मुझे अर्द्धरात्रि के समय उन्हें गंगा की ओर जाते देख कर संदेह हुआ । उन्हें अपने स्थान पर लाया और उनके हृदय को शांत करने की चेष्टा की । फिर यही समझ कर कि मेरा मनोरथ हो गया, मैं सो गया । थोड़ी देर में जब उठा तो उन्हें वहाँ न देखा । तुरन्त गंगातट की ओर दौड़ा । उस समय मैंने सुना कि वह मुझे पुकार रहे हैं, पर जब तक मैं यह निश्चय कर सकूँ कि वह कहाँ है उन्हें निर्दयी लहरों ने ग्रस लिया ! वह दुर्लभ आत्मा मेरी आँखों के सामने स्वर्गधाम को सिधारी । तब तक मुझे मालूम न था कि मेरा पाप इतना घोरतम है, वह अक्षम्य है, अदंड्य है । मालूम नहीं, ईश्वर के यहाँ मेरी क्या गति होगी ?

गजाधर की आत्मवेदना ने सुमन के हृदय पर वही काम किया, जो साबुन मेल के साथ करता है । उसने जमे हुए मालिन्य को काट कर ऊपर कर दिया । वह संचित भाव ऊपर आ गये जिन्हें वह गुप्त रखना चाहती थी । बोली, परमात्मा ने तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान कर दी है । तुम अपनी सुकीर्ति से चाहे कुछ कर भी लो, पर मेरी क्या गति होगी, मैं तो दोनों लोकों से गयी ! हाय ! मेरी विलास - तृष्णा ने मुझे कहीं का न रखा ! अब क्या छिपाऊँ, तुम्हारे दारिद्र्य और इससे अधिक तुम्हारे प्रेम - विहीन व्यवहार ने मुझमें असंतोष का अंकुर जमा दिया और चारों ओर पाप-जीवन की मान - मर्यादा, सुख - विलास देख कर इस अंकुर ने बढ़ते - बढ़ते भटकट्टे के सदृश सारे हृदय को छा लिया । उस समय एक फफोले को फोड़ने के लिए जरा-सी ठेस भी बहुत थी । तुम्हारी नम्रता, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी सहानुभूति, तुम्हारी उदारता उस फफोले पर फाहे का काम देती, पर तुमने उसे मसल दिया, मैं पीडा से व्याकुल, संज्ञाहीन हो गयी । तुम्हारे उस पाशविक व्यवहार का जब स्मरण होता है तो हृदय में एक ज्वाला-सी दहकने लगती है और अंतःकरण से तुम्हारे प्रति शाप निकल आता है । यह मेरा अन्तिम समय है । एक क्षण में यह पापमय शरीर गंगा में डूब जायगा, पिता जी की शरण में पहुँच जाऊँगी, इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारे अपराधों को क्षमा करें ।

गजाधर ने चितित स्वर में कहा, सुमन, यदि प्राण देने से पापों का प्रायश्चित्त हो जाता तो मैं अब तक कभी प्राण दे चुका होता ।

सुमन — कम - से - कम दुःखों का तो अंत हो जायगा ?

गजाधर — हाँ, तुम्हारे दुःखों का अंत हो सकता है, पर उनके दुःखों का अंत न होगा जो तुम्हारे दुःखों से दुःखी हो रहे हैं। तुम्हारे माता - पिता शरीर बंधन से मुक्त हो गये हैं, लेकिन उनकी आत्माएँ अपनी विदेहावस्था में तुम्हारे पास विचर रही हैं। वह अभी तुम्हारे सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होंगे। सोच लो कि प्राणघात करके उनको दुःख पहुँचाओगी या अपना पुनरुद्धार करके उन्हें सुख और शांति दोगी। पश्चात्ताप अंतिम चेतावनी है जो हमें आत्म - सुधार के निमित्त ईश्वर की ओर से मिलती है। यदि इसका अभिप्राय न समझ कर हम शोकावस्था में अपने प्राणों का अंत कर दें तो मानो हमने आत्मोद्धार की इस अंतिम प्रेरणा को भी निष्फल कर दिया। यह भी सोचो कि तुम्हारे न रहने से उस अबला शाता की क्या गति होगी, जिसने अभी संसार के ऊँच - नीच का कुछ अनुभव नहीं किया है; तुम्हारे सिवा उसका संसार में कौन है ? उमानाथ का हाल तुम जानती ही हो, वह उसका निर्वाह नहीं कर सकती। उनमें दया है, पर लोभ उससे अधिक है। कभी - न - कभी वह उससे अवश्य ही अपना गला छुड़ा लेगे। उस समय वह किसकी हो कर रहेगी ?

सुमन को गजाधर के इस कथन में सच्ची संवेदना की झलक दिखायी दी। उसने उनकी ओर विनम्रता - सूचक दृष्टि से देख कर कहा, शाता से मिलने की अपेक्षा मुझे प्राण देना सहज प्रतीत होता है। कई दिन हुए उसने पद्मसिंह के पास एक पत्र भेजा था। उमानाथ उसका कही और विवाह करना चाहते हैं। वह इसे स्वीकार नहीं करती।

गजाधर — देवी है।

सुमन — शर्मा जी बेचारे और क्या करते, उन्होंने निश्चय किया है कि उसे बुला कर आश्रम में रखें। अगर उनके भाई मान जायेंगे तब तो अच्छा ही है, नहीं तो उस दुखिया को न जाने कितने दिनों तक आश्रम में रहना पड़ेगा। वह कन यहाँ आ जायगी। उसके सम्मुख जाने का भय, उससे आँखें मिलाने की लज्जा मुझे मारे डालती है। जब वह तिरस्कार की आँखों से मुझे देखेगी, उस समय मैं क्या करूँगी ? और जो कही उसने घृणावश मुझसे गले मिलने में संकोच किया, तब तो मैं उसी क्षण विष खा लूँगी। इस दुर्गति से तो प्राण देना ही अच्छा है।

गजाधर ने सुमन को श्रद्धा भाव से देखा, उन्हें अनुभव हुआ कि ऐसी अवस्था में मैं भी वही करता जो सुमन करना चाहती है। बोले, सुमन, तुम्हारे यह विचार यथार्थ हैं, पर तुम्हारे हृदय पर चाहे जो कुछ बीते, शाता के हित के लिए तुम्हें सब कुछ सहना पड़ेगा। तुमसे उसका जितना कल्याण हो सकता है उतना अन्य किसी से नहीं हो सकता। अब तक तुम अपने लिए जीती थी, अब दूसरों के लिए जियो।

यह कह गजाधर जिधर से आये थे उधर ही चले गये। सुमन गंगा जी के तट

पर देर तक खड़ी उनकी बातों पर विचार करती रही, फिर स्नान करके आश्रम की ओर चली, जैसे कोई मनुष्य समर में परास्त हो कर घर की ओर जाता है।

१६

शांता को आश्रम में आये एक मास से ऊपर हो गया, लेकिन पद्मसिंह ने अभी तक अपने घर में किसी से इसकी चर्चा नहीं की। कभी सोचते, भैया को पत्र लिखूँ, कभी सोचते, चल कर उनसे कहूँ, कभी विट्ठलदास को भेजने का विचार करते, लेकिन कुछ निश्चय न कर सकते थे।

इधर उनके मित्रगण वेश्याओं के प्रस्ताव को बोर्ड में पेश करने के लिए जल्दी मचा रहे थे। उन्हें उसकी सफलता की पूरी आशा थी। मालूम नहीं, विलंब होने से फिर कोई बाधा उपस्थित हो जाय। पद्मसिंह उसे भी टालते आये थे। यहाँ तक कि मई का महीना आ गया और विट्ठलदास और रमेशदत्त ने ऐसा तंग किया कि उन्हें विवश हो कर बोर्ड में नियमानुसार अपने प्रस्ताव की सूचना देनी पड़ी। दिन और समय निर्दिष्ट हो गया।

ज्यों-ज्यों दिन निकट आता था पद्मसिंह का चित्त अशांत होता जाता था। उन्हें अनुभव होता था कि केवल इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने से ही उद्देश्य पूरा न होगा। इसे कार्भरूप में लाने के लिए शहर के सभी बड़े आदमियों की सहानुभूति और सहकारिता की आवश्यकता है; इसलिए वह हाजी हाशिम को किमी-न-फ़ीसी तरह अपने पक्ष में लाना चाहते थे। हाजी साहब का शहर में इतना दबाव था कि वेश्याएँ भी उनके आदेश के विरुद्ध न जा सकती थीं। अतः हाजी साहब भी पिघल गये। उन्हें पद्मसिंह की नेकनीयती पर विश्वास हो गया।

आज बोर्ड में यह प्रस्ताव पेश होगा। म्युनिसिपल बोर्ड के अहाते में बड़ी भीड़भाड़ है। वेश्याओं ने अपने दलबल सहित बोर्ड पर आक्रमण किया है। देखे, बाँड की क्या गति होगी है।

बोर्ड की कार्यवाही आरंभ हो गयी। सभी मेम्बर उपस्थित हैं। डाक्टर श्यामाचरण ने पहाड़ पर जाना मुलतवी कर दिया है, मुंशी अबुलवफा को तो आज रात-भर नींद ही नहीं आयी। वह कभी भीतर जाते हैं, कभी बाहर आते हैं। आज उनके परिश्रम और उत्साह की सीमा नहीं है।

पद्मसिंह ने अपना प्रस्ताव उपस्थित किया और तुले हुए शब्दों में उसकी पुष्टि की। यह तीन भागों में विभक्त था। (१) वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटा कर बस्ती से दूर रखा जाय; (२) उन्हें शहर के मुख्य सैर करने के स्थानों और पार्कों में आने का निषेध किया जाय; (३) वेश्याओं का नाच कराने के लिए

एक भारी टैक्स लगाया जाय, और ऐसे जलसे किसी हालत में खुले स्थानों में न हों।

प्रोफेसर रमेशदत्त ने उसका समर्थन किया।

सैयद शफकतअली (पें० डिप्टी० कले०) ने कहा — इस तजवीज से मुझे पूरा इत्तफाक है, लेकिन बगैर मुनासिब तरमीम के मैं इसे तसलीम नहीं कर सकता। मेरी राय है कि रिज्योलूशन के पहले हिस्से में यह अल्फाज बढ़ा दिये जायें — बइस्तसनाय उनके जो नौ माह के अंदर या तो अपना निकाह कर लें, या कोई हुनर सीख लें, जिससे वह जायज तरीके पर जिदगी बसर कर सकें।

कुँवर अनिरुद्धसिंह बोले, मुझे इस तरमीम से पूरी सहानुभूति है। हमे वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं है, यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात - दिन जो रिश्वतें लेते हैं, सूद खाते हैं, दीनों का रक्त चूसते हैं, असहायों का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं है कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार, सच्चा समझते हैं? हमारे शिक्षित भाइयों की बदौलत दालमंडी आबाद है, चौक में चहल - पहल है, चकलों में रौनक है। यह मीना - बाजार हम लोगों की ने सजाया है, ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फाँसी है, ये कठ - पुतलियाँ हमने बनायी है। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य - कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बहु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहाँ दाल - मंडी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है? जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद - दर - सूद का अंत होगा, उसी दिन दालमंडी उजड़ जायगी, वे चिड़ियाँ उड़ जायँगी — पहले नहीं। मुख्य प्रस्ताव इस तरमीम के बिना नशतर का वह घाव है जिस पर मरहम नहीं। मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

प्रभाकरराव ने कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरमीम का रिज्योल्यूशन से क्या संबंध है? इसको आप अलग दूसरे प्रस्ताव के रूप में पेश कर सकते हैं। सुधार के लिए आप जो कुछ कर सकें वह सर्वथा प्रशंसनीय है, लेकिन यह काम बस्ती से हटा कर भी उतना ही आसान है जितना शहर के भीतर, बल्कि वहाँ सुविधा अधिक हो जायगी।

अबुलवफा ने कहा, मुझे इस तरमीम से पूरा इत्तफाक है।

अब्दुल्लतीफ बोले, बिला तरमीम के मैं रिज्योल्यूशन को कभी कबूल नहीं कर सकता।

दीनानाथ तिवारी ने भी तरमीम पर जोर दिया।

पद्मसिंह बोले, इस प्रस्ताव से हमारा उद्देश्य वेश्याओं को कष्ट देना नहीं वरन् उन्हें सुमार्ग पर लाना है, इसलिए मुझे इस तरमीम के स्वीकार करने में कोई

आपत्ति नहीं है ।

सैयद तेगअली ने फरमाया, तरमीम से असल तजवीज का मशा फ़ौत हो जाने का खौफ है । आप गोया एक मकान का सदर दरवाजा बंद करके पीछे की तरफ दूसरा दरवाजा बना रहे हैं । यह गैरमुमकिन है कि वे औरतें जो अब तक ऐश और बेतकल्लुफी की जिन्दगी बसर करती थीं, मेहनत और मजदूरी की जिदगी बसर करने पर राजी हो जायें । वह इस तरमीम से नाजायज फायदा उठावेगी, कोई अपने बालाखाने पर सिगर की एक मशीन रख कर अपना बचाव कर लेंगी, कोई मोजे की मशीन रख लेंगी, कोई पान की दूकान खोल लेगी, कोई अपने बालाखाने पर सेव और अनार के खोमचे सजा देंगी । नकली निकाह और फरजी शादियों का बाजार गर्म हो जायगा और इस परदे की आड़ में पहले से भी ज्यादा हरामकारी होने लगेगी । इस तरमीम को मंजूर करना इंसानी खसलत से बेइल्मी का इजहार करना है ।

हकीम शोहरत खाँ ने कहा, मुझे सैयद तेगअली के खयालात बेजा मालूम होते हैं । पहले इन खबीस हस्तियों को शहरबंद कर देना चाहिए । इसके बाद अगर वह जायज तरीके पर जिदगी बसर करना चाहे तो काफी इतमीनान के बाद उन्हें इम्तहान शहर में आकर आबाद होने की इजाजत देनी चाहिए । शहर का दरवाजा बंद नहीं है, जो चाहे यहाँ आबाद हो सकता है । मुझे काबिल यकीन है कि तरमीम से इस तजवीज का मकसद गायब हो जायगा ।

शरीफहसन वकील बोले, इसमें कोई शक नहीं कि पंडित पद्मसिंह एक बहुत ही नेक और रहीम बुजुर्ग हैं, लेकिन इस तरमीम को कबूल करके उन्होंने असल मकसद पर निगाह रखने के बजाय हरदिलअजीज बनने की कोशिश की है । इससे तो यही बेहतर था कि यह तजवीज पेश ही न की जाती । सैयद शफकतअली साहब ने अगर ज्यादा गौर से काम लिया होता तो वह कभी यह तरमीम पेश न करते ।

शाकिरबेग ने कहा, कम्प्रोमाइज मुलकी मुआमिलात में चाहे कितना ही काबिल तारीफ हो, लेकिन इखलाकी मामलात में वह सरासर काबिले एतराज है । इससे इखलाकी बुराइयों पर सिर्फ परदा पड़ जाता है ।

सभापति सेठ बलभद्रदास ने रिज्योल्यूशन के पहले भाग पर राय ली । ६ सम्मतियाँ अनुकूल थीं, ८ प्रतिकूल । प्रस्ताव स्वीकृत हो गया ।

फिर तरमीम पर राय ली गयी, ८ आदमी उसके अनुकूल थे, ८ प्रतिकूल, तरमीम भी पास हो गयी । सभापति ने उसके अनुकूल राय दी । डाक्टर श्यामा - चरण ने किसी तरफ राय नहीं दी ।

प्रोफेसर रमेशदत्त और रुस्तमभाई और प्रभाकरराव ने तरमीम के स्वीकृत हो जाने में अपनी हार समझी और पद्मसिंह की ओर इस भाव से देखा मानो उन्होंने

विश्वासघात किया है। कुँवर साहब के विषय में उन्होंने स्थिर किया कि यह केवल बातूनी, शक्की और सिद्धात - हीन मनुष्य है।

अबुलवफा और उनके मित्रगण ऐसे प्रसन्न थे मानो उन्हीं की जीत हुई है। उनका यो पुलकित होना प्रभाकरराव और उनके मित्रों के हृदय में काँटे की तरह गड़ता था।

प्रस्ताव के दूसरे भाग पर सम्मति ली गयी। प्रभाकरराव और उनके मित्रों ने इस बार उसका विरोध किया। वह पद्मसिंह को विश्वासघातकता का दंड देना चाहते थे। यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। अबुलवफा और उनके मित्र बगले बजाने लगे।

अब प्रस्ताव के तीसरे भाग की बारी आयी। कुँवर अनिरुद्धसिंह ने उसका समर्थन किया। हकीम शोहरतख़ाँ, सैयद शफ़क़त अली, शरीफ़ हमन और शाकिर - बेग ने भी उसका अनुमोदन किया। लेकिन प्रभाकरराव और उनके मित्रों ने उसका भी विरोध किया। तरमीम के पास हो जाने के बाद उन्हें इस संबंध में अन्य सभी उद्योग निष्फल मालूम होते थे। वह उन लोगों में थे जो या तो सब लेंगे या कुछ न लेंगे। प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

कुछ रात गये सभा समाप्त हुई। जिन्हें हार की शका थी वह हँसते हुए निकले, जिन्हें जीत का निश्चय था उनके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी।

चलते समय कुँवर साहब ने मिस्टर रुस्तम भाई से कहा, यह आप लोगों ने क्या कर दिया।

रुस्तम भाई ने व्यंग भाव से उत्तर दिया, जो आपने किया वही हमने किया। आपने घड़े में छेद कर दिया, हमने उसे पटक दिया। परिणाम दोनों का एक ही है।

सब लोग चले गये। अँधेरा गहरा हो गया। चौकीदार और माली भी फाटक बंद करके चल दिये, लेकिन पद्मसिंह वही घास पर निरुत्साह और चिंता की मूर्ति बने हुए बैठे थे।

२०

पद्मसिंह की आत्मा किसी भाँति इस तरमीम के स्वीकार करने में अपनी भूल स्वीकार न करती थी। उन्हें कदापि यह आशा न थी कि उनके मित्रगण एक गौण बात पर उनका इतना विरोध करेंगे। उन्हें प्रस्ताव के एक अंश के अस्वीकार हो जाने का खेद न था कि इसका दोष उनके सिर मढ़ा जाता था, हालाँकि उन्हें यह संपूर्णतः अपने सहकारियों की असहिष्णुता और अदूरदर्शिता प्रतीत होती थी। इस

तरमीम को वह गौण ही समझते थे। इसके दुरुपयोग की जो शंकाएँ की गयी थीं उन पर पद्मसिंह को विश्वास न था। वह विश्वास इस प्रस्ताव की सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल देता था। उन्हे अब यह निश्चय होता जाता था कि वर्तमान सामाजिक दशा के होते हुए इस प्रस्ताव से जो आशाएँ की गयी थी उनके पूरे होने की संभावना नहीं है। वह कभी-कभी पछताते कि मैंने व्यर्थ हो यह झगड़ा अपने सिर लिया। उन्हे आश्चर्य होता था कि मैं कैसे इस काँटेदार झाड़ी में उलझा और यदि इस भावी सफलता का भार इस तरमीम के सिर जा पड़ता तो वह एक बड़ी भारी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते, पर यह उन्हे दुराशा-मात्र प्रतीत होती थी। अब सारा बदनामी उन्हीं पर आयेगी, विरोधी दल उनकी हँसी उड़ायेगा, उनकी उद्वेगता पर टिप्पणी करेगा और यह सारी निंदा उन्हे अकेले सहनी पड़ेगी। कोई उनका मित्र नहीं, कोई उन्हे तसल्ली देनेवाला नहीं। विट्ठलदास से आशा था कि वह उनके साथ न्याय करेंगे, उनके रूठे हुए मित्रों को मना लायेंगे लेकिन विट्ठलदास ने उल्टे उन्हीं को अपराधी ठहराया। वह बोले, आपने इस तरमीम को स्वीकार करके सारा गुड़ गोबर कर दिया, बरसों की मेहनत पर पानी फेर दिया। केवल कुँवरसिंह वह मनुष्य थे जो पद्मसिंह के व्यथित हृदय को ढाँस देते थे और उनसे सहानुभूति रखते थे।

पूरे महीने भर पद्मसिंह कचहरी न जा सके। बस, अकेले बैठे हुए इसी घटना की आलोचना किया करते ! उनके विचारों में एक विचित्र निष्पक्षता आ गयी थी। मित्रों के वैमनस्य से उन्हें जो दुःख होता था, उस पर ध्यान दे कर वह सोचते थे कि जब ऐसे सुशिक्षित, विचारशील पुरुष एक जरा सी बात पर अपने निश्चित सिद्धांतों के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं तो इस देश का कल्याण होने की कोई आशा नहीं। माना कि मैंने तरमीम को स्वीकार करने में भूल की, लेकिन मेरी भूल ने उन्हे क्यो मार्ग से विचलित कर दिया ?

पद्मसिंह को इस मानसिक कष्ट की अवस्था में पहली बार अनुभव हुआ कि एक अबला स्त्री चित्त को सावधान करने की कितनी शक्ति रखती है। अगर संसार में कोई प्राणी था जो सम्पूर्णतः उनकी अवस्था को समझता था तो वह सुभद्रा थी। वह उस तरमीम को उससे कहीं अधिक आवश्यक समझती थी, जिनना वह स्वयं समझते थे। वह उनके सहकारियों की उनसे कहीं अधिक तीव्र समालोचना करना जानती थी। उसकी बातों से पद्मसिंह को बड़ी शांति होती थी। यद्यपि वह समझते थे कि सुभद्रा में ऐसे गहन विषय के समझने और तौलने की सामर्थ्य नहीं और यह जो कुछ कहती है वह केवल मेरी ही बातों की प्रतिध्वनि है तथापि इस ज्ञान से उनके आनंद में कोई विघ्न न पड़ता था।

लेकिन महीना पूरा भी न हो पाया था कि प्रभाकरराव ने अपने पत्र में इस

प्रस्ताव के संबंध में एक लेखमाला निकालनी आरम्भ कर दी। उसमें पद्मसिंह पर ऐसी-ऐसी मासिक चोटें करने लगे कि उन्हें पढ़ कर वह तिलमिला जाते थे। एक लेख में उन्होंने पद्मसिंह के पूर्व चरित्र और इस तरमीम में घनिष्ठ संबंध दिखाया। एक दूसरे लेख में उनके आचरण पर आक्षेप करते हुए लिखा, यह वर्तमान काल के देशसेवक है जो देश को भूल जायें, पर अपने को कभी नहीं भूलते, जो देश सेवा की आड़ में अपना स्वार्थ-साधन करते हैं। जाति के नवयुवक कुएँ में गिरते हों तो गिरे, काशी के हाजी की कृपा बनी रहनी चाहिए। पद्मसिंह को इस अनुदारता और मिथ्या द्वेष पर जितना क्रोध आता था उतना ही आश्चर्य होता था। असज्जनता इस सीमा तक जा सकती है, यह अनुभव उन्हें आज ही हुआ। यह सम्यक्ता और शालीनता के ठेकेदार बनते हैं, लेकिन उनकी आत्मा ऐसी मलिन है! और किसी में इतना साहस नहीं कि इसका प्रतिवाद करे?

सध्या का समय था। वह लेख चारपाई पर पड़ा हुआ था। पद्मसिंह सामने मेज पर बैठे हुए इस लेख का उत्तर लिखने की चेष्टा कर रहे थे, पर कुछ लिखते न बनता था कि सुभद्रा ने आ कर कहा, गरमी में यहाँ क्यों बैठे हो? चलो बाहर बैठो।

पद्म—प्रभाकरराव ने मुझे आज खूब गालियाँ दी हैं, उन्हीं का जवाब लिख रहा हूँ।

सुभद्रा—यह तुम्हारे पीछे इस तरह क्यों पड़ा हुआ है?

यह कह कर सुभद्रा वह लेख पढ़ने लगी और पाँच मिनट में उसने उसे आद्योपात्त पढ़ डाला।

पद्म—कैसा लेख है?

सुभद्रा—यह लेख थोड़े ही है; यह तो खुली हुई गालियाँ हैं। मैं समझती थी कि गालियों की लड़ाई स्त्रियों में ही होती है, लेकिन देखती हूँ तो पुरुष हम लोगों से भी बढ़े हुए हैं। ये विद्वान् भी होंगे?

पद्म—हाँ, विद्वान् क्यों नहीं हैं, दुनियाँ-भर की किताबें चाटे बैठे हैं।

सुभद्रा—और उस पर यह हाल!

पद्म—मैं इसका उत्तर लिख रहा हूँ, ऐसी खबर लूँगा कि वह भी याद करें कि किसी से पाला पड़ा था।

सुभद्रा—मगर गालियों का क्या उत्तर होगा?

पद्म—गालियाँ।

सुभद्रा—नहीं, गालियों का उत्तर मौन है। गालियों का उत्तर गाली तो मूर्ख भी देते हैं, फिर उनमें और तुममें अन्तर ही क्या है?

पद्मसिंह ने सुभद्रा को श्रद्धापूर्ण नेत्रों से देखा। उसकी बात उनके मन में बैठ

गयी। कभी-कभी हमें उन लोगों से शिक्षा मिलती है, जिन्हें हम अभिमान वश अज्ञानी समझते हैं।

पद्म — तो मौन धारण कर लूँ ?

सुभद्रा — मेरी तो यही सलाह है। उसे जो जी में आये बकने दो। कभी-न-कभी वह अवश्य लज्जित होगा। बस वही इन गालियों का दण्ड होगा।

पद्म — वह लज्जित कभी न होगा, ये लोग लज्जित होना जानते ही नहीं। अभी मैं उसके पास जाऊँ तो मेरा बड़ा आदर करेगा, हँस-हँस कर बोलेगा, लेकिन संध्या होते ही फिर उस पर गालियों का नशा चढ़ जायगा।

सुभद्रा — तो उसका उद्यम क्या दूसरों पर आक्षेप करना है ?

पद्म — नहीं, उद्यम तो यह नहीं है, लेकिन संपादक लोग अपने ग्राहक बढ़ाने के लिए इस प्रकार कोई-न-कोई फुझड़ी छोड़ते रहते हैं। ऐसे आक्षेपपूर्ण लेखों से पत्रों की बिक्री बढ़ जाती है, जनता को ऐसे झगड़ों में आनंद प्राप्त होता है और संपादक लोग अपने महत्त्व को भूल कर जनता के इस विवाद-प्रेम से लाभ उठाने लगते हैं। गुरुपद को छोड़ कर जनता के कलह-प्रेम का आवाहन करने लगते हैं। कोई-कोई संपादक तो यहाँ तक कहते हैं कि अपने ग्राहक को प्रसन्न रखना हमारा कर्तव्य है। हम उनका खाते हैं तो उन्हीं का गाभेगे।

सुभद्रा — तब तो ये लोग केवल पैसे के गुलाम हैं। इन पर क्रोध करने की जगह दया करनी चाहिए।

पद्मसिंह मेज से उठ आये। उत्तर लिखने का विचार छोड़ दिया। वह सुभद्रा को ऐसी विचारशीला कभी न समझते थे। उन्हें अनुभव हुआ कि यद्यपि मैंने बहुत विद्या पढ़ी है, पर इसके हृदय की उदारता को मैं नहीं पहुँचता। यह अशिक्षिता हो कर भी मुझसे उच्च विचार रखती है। उन्हें आज ज्ञान हुआ कि स्त्री संतान-हीन हो कर भी पुरुष के लिए शांति, आनंद का एक अविरल स्रोत है। सुभद्रा के प्रति उनके हृदय में एक नया प्रेम जागृत हो गया। एक लहर उठी जिसने बरसों के जमे हुए मालिन्य को काट कर बहा दिया। उन्होंने विमल, विशुद्ध भाव से उसे देखा। सुभद्रा इसका आशय समझ गयी और उसका हृदय आनंद से विह्वल गद्गद हो गया।

२१

सदन जब सुमन को देख कर लौटा तो उसकी दशा उस दरिद्र मनुष्य की सी थी, जिसका वर्षों का धन चोरों ने हर लिया हो।

वह सोचता था, सुमन मुझसे बोली क्यों नहीं, उसने मेरी ओर ताका क्यों

नहीं ? क्या वह मुझे इतना नीच समझती है ? नहीं, वह अपने पूर्वं चरित्र पर लज्जित है और मुझे भूल जाना चाहती है। संभव है, उसे मेरे विवाह का समाचार मिल गया हो और मुझे अन्यायी, निर्दयी समझ रही हो। उसे एक बार फिर सुमन से मिलने की प्रबल उत्कंठा हुई। दूसरे दिन वह विधवा आश्रम के घाट की ओर चला, लेकिन आधे रास्ते से लौट आया। उसे शका हुई कि कहीं शांता की बात चल पड़ी, तो मैं क्या जवाब दूंगा। इसके साथ ही स्वामी गजाधर प्रसाद का उपदेश भी याद आ गया।

सदन अब कभी-कभी शांता के प्रति अपने कर्तव्य पर विचार किया करता। महीनो तक सामाजिक अवस्था पर व्याख्यानों के सुनने का उस पर कुछ प्रभाव न पड़ता — यह असंभव था। वह मन में स्वीकार करने लगा था कि हम लोगो ने शांता के साथ अन्याय किया है, मगर अभी तक उस कर्तव्यात्मक शक्ति का उदय न हुआ था जो अपमान करती है और आत्मा की आज्ञा के सामने किसी की परवाह नहीं करती।

वह इन दिनों बहुत अध्ययन शील हो गया था। दालमंडी और चौक की सैर से वंचित हो कर अब उसकी सजीवता इस नये मार्ग पर चल पड़ी। आर्यसमाज के उत्सव में उसने कई व्याख्यान सुने थे जिसमें चरित्र चरित्र-गठन का महत्त्व वर्णन किया गया था। उनके सुनने से उसका भ्रम दूर हो गया था कि मुझे जो कुछ होना था, हो चुका। वहाँ उसे बताया गया था कि बहुत विद्वान् होने से ही मनुष्य आत्मिक गौरव नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए सच्चरित्र होना परमावश्यक है। चरित्र के सामने विद्या का मूल्य बहुत कम है। वह उसी दिन से चरित्रगठन और मनोबल संबंधी पुस्तकें पढ़ने लगा और दिनों दिन उसकी यह रुचि बढ़ती जाती थी। उसे अब अनुभव होने लगा था कि मैं विद्या-हीन हो कर भी संसार क्षेत्र में कुछ काम कर सकता हूँ। उन मंत्रों में इंद्रियो को रोकने तथा मन को स्थिर करने के जो साधन बताये गये थे, उन्हें वह कभी भूलता न था।

वह म्युनिसिपल बोर्ड के उस जलसे में मौजूद था, जब वेश्या संबंधी प्रस्ताव उपस्थित थे, उस तरमीम के स्वीकृत हो जाने से वह बहुत उदासीन हो गया था और अपने चाचा की भूल को स्वीकार करता था, लेकिन जब प्रभाकरराव ने पद्मसिंह पर आक्षेप करना शुरू किया तो वह अपने चाचा के पक्ष का समर्थन करने के लिए उत्सुक होने लगा। उसने दो-तीन लेख लिखे और प्रभाकरराव के पास डाक द्वारा भेजे। कई दिन तक उनके प्रकाशित होने की आशा करता रहा। उसे निश्चय था कि लेखों के छपते ही हलचल मच जायगी, संसार में कोई बड़ा परिवर्तन हो जायगा। ज्यों ही डाकिया पत्र लाता वह उसे खोल कर अपने लेखों को खोजने लगता, लेकिन उनकी जगह केवल द्वेष और द्रोह से भरे हुए लेख दिखायी देते। उन्हें पढ़ कर

उसके हृदय में एक ज्वाला - सी उठने लगती थी। अंतिम लेख को पढ़ कर उसका धैर्य हाथ से जाता रहा। उसने निश्चय किया कि अब चाहे जो कुछ हो, संपादक महाशय की खबर लेनी चाहिए। अगर वह सज्जन होता तो मेरे लेखों को छापता, उनकी भाषा अशुद्ध सही, पर वह तकंहीन तो न थे। उन्हें छिपा रखने से साबित हो गया कि वह सत्यासत्य का निर्णय नहीं करना चाहता, केवल जनता को प्रसन्न करने के लिए नित्य गालियाँ बकता जाता है। उसने अपने विचारों को किसी पर प्रकट नहीं किया। संध्या समय एक मोटा-सा सोटा लिए हुए 'जगत' कार्यालय में पहुँचा। कार्यालय बंद हो चुका था पर प्रभाकरराव अपने संपादकीय कुटीर में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। सदन बेधड़क भीतर जा कर उनके सामने खड़ा हो गया। प्रभाकरराव ने चौक कर सिर उठाया तो एक लंबे - चौड़े युवक को डडा लिये हुए उद्वेग भाव से खड़ा देखा। रुष्ट हो कर बोले, आप कौन हैं ?

सदन — मेरा मकान यहीं है, मैं आपसे केवल यह पूछना चाहता हूँ कि आप इतने दिनों से पंडित पद्मसिंह को गालियाँ क्यों दे रहे हैं।

प्रभाकर — अच्छा, आपने ही दो - तीन लेख मेरे पास भेजे थे ?

सदन — जी हाँ, मैंने ही भेजे थे।

प्रभाकर — उनके लिए मैं आप को धन्यवाद देता हूँ।। आइए, बैठ जाइए, मैं तो आपसे स्वयं मिलना चाहता था; पर आप का पता न मालूम था। आपके लेख बहुत उत्तम और सप्रमाण हैं और मैं उन्हें कभी निकाल देता, पर गुमनाम लेखों का छापना नियम विरुद्ध है, इसी से मजबूर था। शुभ नाम ?

सदन ने अपना नाम बताया। उसका क्रोध कुछ शांत हो चला था।

प्रभाकर — आप तो शर्मा जी के परम भक्त मालूम होते हैं।

सदन — मैं उनका भतीजा हूँ

प्रभाकर — ओह, तब तो आप अपने ही हैं। कहिए, शर्मा जी अच्छे तो हैं ? वे तो दिखायी नहीं दिये।

सदन — अभी तक तो अच्छे हैं, पर आपके लेखों का यही तार रहा तो ईश्वर ही जानें उनकी क्या गति होगी। आप उनके मित्र हो कर इतना द्वेष कैसे करने लगे ?

प्रभाकर — द्वेष ? राम-राम ! आप क्या कहते हैं। मुझसे उनसे लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। आप हम संपादकों के कर्तव्य को नहीं जानते। हम पब्लिक के सामने अपना हृदय खोल कर रखना अपना धर्म समझते हैं। अपने मनोभावों को गुप्त रखना हमारे नीति - शास्त्र में पाप है। हम न किसी के मित्र हैं न किसी के शत्रु। हम अपने जन्म के मित्रों को एक क्षण में त्याग देते हैं और जन्म के शत्रुओं से एक क्षण में गले मिल जाते हैं। हम सार्वजनिक विषय में किसी को क्षमा नहीं करते, इसलिए

कि हमारे क्षमा करने से उनका प्रभाव और भी हानिकारक हो जाता है ।

पद्मसिंह मेरे परम मित्र है और मैं उनका हृदय से आदर करता हूँ । मुझे उन पर आक्षेप करते हुए हार्दिक वेदना होती है । परसों तक मेरा उनसे केवल सिद्धांत का विरोध था, लेकिन परसों ही मुझे ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे विदित होता है कि उस तरमीम के स्वीकार करने में उनका कुछ और ही उद्देश्य था । आप से कहने में कोई हानि नहीं है कि उन्होंने कई कहीने हुए सुमनबाई नाम की वेश्या को गुप्त रीति से विधवा आश्रम में प्रविष्ट करा दिया और लगभग एक मास से उसकी छोटी बहिन को भी आश्रम में ही ठहरा रखा है । मैं अब भी चाहता हूँ कि मुझे गलत खबर मिली हो, लेकिन मैं शीघ्र ही किसी और नीयत से नहीं तो उसका प्रतिवाद कराने के लिए ही इस खबर को प्रकाशित कर दूँगा ।

सदन — यह खबर आपको कहाँ मिली ?

प्रभाकर — इसे मैं बता नहीं सकता, लेकिन आप शर्मा जी से कह दीजिएगा कि यदि उनपर यह मिथ्या दोषारोपण हो तो मुझे सूचित कर दें । मुझे यह मालूम हुआ है कि इस प्रस्ताव के बोर्ड में आने से पहले शर्मा जी हाशिम के यहाँ नित्य जाते थे । ऐसी अवस्था में आप स्वयं देख सकते हैं कि मैं उनकी नीयत को कहाँ तक निस्पृह समझ सकता था ?

सदन का क्रोध शांत हो गया । प्रभाकरराव की बातों ने उसे वशीभूत कर लिया, वह मन में उनका आदर करने लगा और कुछ इधर-उधर की बातें करके घर लौट आया । उसे अब सबसे बड़ी चिंता यह थी कि क्या शाता सचमुच आश्रम में लायी गयी है ?

रात्रि को भोजन करते समय उसने बहुत चाहा कि शर्मा जी से इस विषय में कुछ बातचीत करे, पर साहस न हुआ । सुमन को तो विधवा-आश्रम में जाते उसने देखा ही था, लेकिन अब उसे कई बातों का स्मरण करके, जिनका तात्पर्य अब तक उसकी समझ में न आया था, शाता के लाये जाने का संदेह भी होने लगा ।

वह रात - भर विकल रहा । शांता आश्रम में क्यों आयी है ? चाचा ने उसे क्यों यहाँ बुलाया है ? क्या उमानाथ ने उसे अपने घर में नहीं रखना चाहा ? इसी प्रकार के प्रश्न उसके मन में उठते रहे प्रातःकाल वह विधवा आश्रम वाले घाट की ओर चला कि अगर सुमन से भेंट हो जाय तो उससे सारी बातें पूछूँ । उसे वहाँ बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि सुमन आती दिखायी दी । उसके पीछे एक और सुदरी चली आती थी । उसका मुखचंद्र घूँघट से छिपा हुआ था ।

सदन को देखते ही सुमन ठिठक गयी । वह इधर कई दिनों से सदन से मिलना चाहती थी । यद्यपि पहले मन में निश्चय कर लिया था कि सदन से कभी न

बोलींगी, पर शाता के उद्धार का उसे इसके सिवा कोई अन्य उपाय न सूझता था । उसने लजाते हुए सदन से कहा, सदनसिंह, आज बड़े भाग्य से तुम्हारे दर्शन हुए । तुमने तो इधर आना ही छोड़ दिया । कुशल से तो हो ?

सदन झेंपता हुआ बोला, हाँ, सब कुशल है ।

मुमन — तुमले बहुत मालूम होते हो, बीमार थे क्या !

सदन — नहीं, बहुत अच्छी तरह हूँ । मुझे मौत कहाँ ?

हम बहुधा अपनी झेंप मिटाने और दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कृत्रिम भावों की आड़ लिया करते हैं ।

मुमन — चुप रहो, कैसा अशकुन मुँह से निकालते हो । मैं मरने की मनाती तो एक बात थी, जिसके कारण यह सब हो रहा है । इस रामलीला की कैकेयी मैं ही हूँ । आप भी डूबी और दूसरों को भी अपने साथ ले डूबी । खड़े कब तक रहोगे, बैठ जाओ । मुझे आज तुमने बहुत - सी बातें करनी है । मुझे क्षमा करना, अब तुम्हें भैया कहूँगी । अब मेरा तुमसे भाई - बहन का नाता है । मैं तुम्हारी बड़ी साली हूँ, अगर कोई कड़ी बात मुँह से निकल जाय तो बुरा मत मानना । मेरा हाल तो तुम्हें मालूम ही होगा । तुम्हारे चाचा ने मेरा उद्धार किया और अब मैं विधवा आश्रम में पड़ी अपने दिनों को रोती हूँ और सदा रोऊँगी । इधर एक महीने से मेरी अभागिनी बहन भी यहाँ आ गयी है, उमानाथ के घर उसका निर्वाह न हो सका । शर्मा जी को परमात्मा चिरंजीवी करे, वह स्वयं अमोला गये और इसे ले आये । लेकिन यहाँ ला कर उन्होंने भी इसकी सुधि न ली । मैं तुमसे पूछती हूँ, भला यह कहाँ की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाय । अब तुमसे कोई बात छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पुनर्जन्म के पापों से मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया । उसका दंड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला । लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था कि जिसके लिए तुम लोगो ने इसे त्याग दिया ? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा ! देखो, अपने बड़ों की आड़ मत लेना, यह कायर मनुष्य की चाल है । सच्चे हृदय से बताओ, यह अन्याय था या नहीं ? और तुमने कैसे ऐसा घोर अन्याय होने दिया ? क्या तुम्हें एक अबला बालिका का जीवन नष्ट करते तनिक भी दया न आयी ?

यदि शाता यहाँ न होती तो कदाचित् सदन अपने मन के भावों को प्रकट करने का साहस कर जाता । वह इस अन्याय को स्वीकार कर लेता । लेकिन शाता के सामने वह एकाएक अपनी हार मानने के लिए तैयार न हो सका । इसके साथ ही अपनी कुल - मर्यादा की शरण लेते हुए भी उसे संकोच होता था । वह ऐसा कोई वाक्य मुँह से न निकालना चाहता था जिससे शाता को दुःख हो, न कोई ऐसी बात कह सकता था, जो झूठी आशा उत्पन्न करे । उसकी उड़ती हुई

दृष्टि ने, जो शांता पर पड़ी थी, उसे बड़े संकट में डाल दिया था। उसकी दशा उस बालक की - सी थी, जो किसी मेहमान की लायी हुई मिठाई को ललचायी हुई आँखों से देखता है, लेकिन माता के भय से निकाल कर खा नहीं सकता। बोला, बाई जी, आपने पहले ही मेरा मुँह बंद कर दिया है, इसलिए मैं कैसे कहूँ कि जो कुछ किया मेरे बड़ों ने किया, मैं उनके सिर दोष रख कर अपना गला नहीं छुड़ाना चाहता ! उस समय लोक - लज्जा से मैं भी डरता था। इतना तो आप भी मानेंगी कि संसार में रह कर संसार की चाल चरनी पड़ती है। मैं इस अन्याय को स्वीकार करता हूँ ; लेकिन यह अन्याय हमने नहीं किया, वरन् उस समाज ने किया है, जिसमें हम लोग रहते हैं।

सुमन — भैया, तुम पढ़े - लिखे मनुष्य हो, मैं तुमसे बातों में नहीं जीत सकती, जो तुम्हें उचित जान पड़े वह करो। अन्याय अन्याय ही है, चाहे कोई एक आदमी करे या सारी जाति करे। दूसरों के भय से किसी पर अन्याय नहीं करना चाहिए। शांता यहाँ खड़ी है, इसलिए मैं उसके भेद नहीं खोलना चाहती, लेकिन इतना अवश्य कहूँगी कि तुम्हें दूसरी जगह धन, सम्मान, रूप, गुण, सब मिल जाय, पर यह प्रेम न मिलेगा। अगर तुम्हारे जैसा इसका भी हृदय होता तो यह आज अपनी नयी ससुराल में आनंद से बैठी होती। लेकिन केवल तुम्हारे प्रेम ने उसे यहाँ खींचा।

सदन ने देखा कि शांता की आँखों से जल बह कर उसके पैरों पर गिर रहा है। उसका सरल प्रेम - तृप्ति हृदय शोक से भर गया। अतन्त्र करुण स्वर से बोला, मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? ईश्वर साक्षी है कि दुःख से मेरा कलेजा फटा जाता है।

सुमन — तुम पुरुष हो, परमात्मा ने तुम्हें सब शक्ति दी है।

सदन — मुझसे जो कुछ कहिए करने को तैयार हूँ।

सुमन — वचन देते हो ?

सदन — मेरे चित्त की जो दशा हो रही है वह ईश्वर ही जानते होंगे, मुँह से क्या कहूँ।

सुमन — मरदों की बातों पर विश्वास नहीं आता।

यह कह कर सुमन मुस्करायी। सदन ने लज्जित हो कर कहा, अगर अपने वश की बात होती तो अपना हृदय निकाल कर आपको दिखाता। यह कह कर उसने दबी हुई आँखों से शांता की ओर ताका।

सुमन — अच्छा, तो आप इसी गंगा नदी के किनारे शांता का हाथ पकड़ कर कहिए कि तुम मेरी स्त्री हो और मैं तुम्हारा पुरुष हूँ, मैं तुम्हारा पालन करूँगा।

सदन के आत्मिक बल ने जवाब दिया। वह वगलें झाँकने लगा, मानो अपना

मुँह छिपाने के लिये स्थान खोज रहा है। उसे ऐसा जान पड़ा कि गंगा मुझे छिपाने के लिए बढ़ी चली आती है। उसने डूबते हुए मनुष्य की भाँति आकाश की ओर देखा और लज्जा से आँखें नीची किये रुक - रुक कर बोला, सुमन, मुझे इसके लिए सोचने का अवसर दो। सुमन ने नम्रता से कहा, हाँ सोच कर निश्चय कर लो, मैं तुम्हें धर्म संकट में नहीं डालना चाहती। यह कह कर वह शांता से बोली, देख, तेरा पति तेरे सामने खड़ा है। मुझसे जो कुछ कहते बना उससे कहा, पर वह नहीं पसी - जता। वह अब सदा के लिए तेरे हाथ से जाता है। अगर तेरा प्रेम सत्य है और उससे कुछ बल है तो उसे रोक ले, उससे प्रेम - वरदान ले ले।

यह कह कर सुमन गंगा की ओर चली गयी। शांता भी धीरे - धीरे उस के पीछे चली गयी। उसका प्रेम मान के नीचे दब गया। जिसके नाम पर वह याव - ज्जीवन दुःख झेलने का निश्चय कर चुकी थी, जिसके चरणों पर वह कल्पना में अपने को अर्पण कर चुकी थी, उसी से वह इस समय तन बैठी। उसने उसकी अवस्था को न देखा, उसकी कठिनाइयों का विचार न किया, उसकी पराधीनता पर ध्यान न दिया। इस समय वह यदि सदन के सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो जाती तो उसका अभीष्ट सिद्ध हो जाता, पर उसने विनय के स्थान पर मान करना उचित समझा।

सदन एक क्षण वहाँ खड़ा रहा और बाद को पछताता हुआ घर को चला।

२२

सदन को ऐसी ग्लानि हो रही थी, मानो उसने कोई बड़ा पाप किया हो। वह बार - बार अपने शब्दों पर विचार करता और यही निश्चय करता कि मैं बड़ा निर्दयी हूँ। प्रेमाभिलाषा ने उसे उन्मत्त कर दिया था।

वह सोचता, मुझे संसार का इतना भय क्यों है? संसार मुझे क्या दे देता है? क्या केवल झूठी बदनामी के भय से मैं उस रत्न को त्याग दूँ, जो मालूम नहीं मेरे पूर्व जन्म की कितनी ही तपस्याओं का फल है? अगर अपने धर्म का पालन करने के लिए मेरे बहुगुण मुझे छोड़ दें तो क्या हानि है? लोकनिंदा का भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामों से बचाती है। अगर वह कर्त्तव्य मार्ग में बाधक हो तो उससे डरना कायरता है। यदि हम किसी निरपराध पर झूठा अभियोग लगायें, तो संसार हमको बदनाम नहीं करता, वह इस अकर्म में हमारी सहायता करता है, हमको गवाह और वकील देता है। हम किसी का धन दबा बैठें, किसी की जायदाद हड़प लें, तो संसार हमको कोई दंड नहीं देता, देता भी

है तो बहुत कम; लेकिन ऐसे सुकर्मों के लिए हमें बदनाम करता है, हमारे माथे पर सदा के लिए कलंक का टीका लगा देता है। नहीं, लोक - निंदा का भय मुझसे यह अधर्म नहीं करा सकता, मैं उसे मझधार में न डूबने दूंगा। ससार जो चाहे कहे, मुझसे यह अन्याय न होगा।

मैं मानता हूँ कि माता - पिता की आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। उन्होंने मुझे जन्म दिया है, मुझे पाला है। बाप की गोद में खेला हूँ, माँ का स्नान पी कर पला हूँ। मैं उनके इशारे पर विष का प्याला पी सकता हूँ, तलवार की धार पर चल सकता हूँ, आग में कूद सकता हूँ, किंतु उनके दुराग्रह पर भी मैं उस रमणी का तिरस्कार नहीं कर सकता, जिसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। माँ - बाप मुझसे अवश्य ही विमुख हो जायेंगे। संभव है, मुझे त्याग दें, मुझे मरा हुआ समझ ले, लेकिन कुछ दिनों के दुःख के बाद उन्हें धैर्य हो जायगा। वह मुझे भूल जायेंगे। काल उनके घाव को भर देगा।

हाय ! मैं कैसा कठोर, कैसा पाषाण - हृदय हूँ ! वह रमणी जो किसी रनिवास की शोभा बन सकती है मेरे सम्मुख एक दीन दयाप्रार्थी के समान खड़ी रहे और मैं जरा भी न पसीजूँ ? वह ऐसा अवसर था कि मैं उसके चरणों पर सिर झुका देता और कर जोड़ कर कहता, देवि ! मेरे अपराध क्षमा करो ! गंगा से जल लाता और उसके पैरो पर चढ़ाता जैसे कोई उपासक अपनी इष्ट देवी को चढ़ाता है। पर मैं पत्थर की मूर्ति के सदृश खड़ा अपनी कुल - मर्यादा का बेसुरा राग अलापता रहा। हा मंदबुद्धि ! मेरी बातों से उसका कोमल हृदय कितना दुखी हुआ होगा। यह उसके मान करने से ही प्रकट होता है उसने मुझे शुष्क, प्रेम - विहीन, घमंडी और धूर्त समझा होगा, मेरी ओर आँख उठा कर देखा तक नहीं। वास्तव में मैं इसी योग्य हूँ।

यह पश्चात्तापात्मक विचार कई दिन तक सदन के मर्मस्थल में दौड़ते रहे। अंत में उसने निश्चय किया कि मुझे अपना झोपड़ा अलग बनाना चाहिए, अपने पैरो पर खड़ा होना चाहिए। इसके बिना निर्वाह नहीं हो सकता। माँ - बाप के घर का द्वार अब मेरे लिए बंद है, खटखटाने से भी न खुलेगा। चाचा मुझे आश्रय देंगे, लेकिन उनके यहाँ रह कर घर में बैर का बीज बोना अच्छा नहीं; माता - पिता समझेंगे कि यह मेरे लड़के को बिगाड़ रहे हैं। बस, मेरे लिए इसके सिवाय कोई और उपाय नहीं कि अपने लिए कोई राह निकालूँ।

वह विचार करता कि चल कर अपनी लगायी हुई आग को बुझा आऊँ, लेकिन चलने के समय उसकी हिम्मत जवाब दे देती। मन में प्रश्न उठता कि किस बिरते पर ? घर कहाँ है ?

सदन नित्य इसी चिंता में डूबा रहता कि इस सूत्र को कैसे सुलझाऊँ ? उसने

सारे शहर की खाक छान डाली, कभी दफ्तरों की ओर जाता, कभी बड़े-बड़े कारखानों का चक्कर लगाता और दो-चार घंटे घूम-घाम कर लौट आता। उसका जीवन अब तक सुख भोग में बीता था, उसने नम्रता और विनय का पाठ न पढ़ा था, अभिमान उसके रोम-रोम में भरा हुआ था। रास्ते चलता तो अकड़ता हुआ, अपने सामने किसी को कुछ नहीं ससझता था। उसे संसार का अनुभव न था। वह नहीं जानता था कि इस दुनिया में बहुत सिर झुकाने की आवश्यकता है, यहाँ उसी की प्रार्थना स्वीकृत होती है जो पत्थर के निर्दय चौखटों पर माथा रगड़ना जानता है, जो उद्योगी है, निपुण है, नम्र है, जिसने किसी योगी के सदृश अपने मन को जीत लिया है, जो अन्याय के सामने झुक जाता है, अपमान को दूध के समान पी जाता है और जिसने आत्माभिमान को पैरो तले कुचल डाला है। वह न जानता था कि वही सद्गुण जो मनुष्य को देवतुल्य बना देते हैं, इस क्षेत्र में निरादर की दृष्टि से देखे जाते हैं। वह ईमानदार था, सत्यवक्ता था, सरल था, जो कहता मुँह पर, लगी-लिपटी रखना न जानता था, पर वह नहीं जानता था कि इन गुणों का आत्मिक महत्व चाहे जो कुछ हो, संसार की दृष्टि में विद्या की कमी उनसे नहीं पूरी होती। सदन को अब बहुत पछतावा होता था कि मैंने अपना समय व्यर्थ खोया। कोई ऐसा काम न सीखा, जिससे संसार में निर्वाह होता। सदन को इस प्रकार भटकते हुए एक मास से अधिक हो गया और कोई काम हाथ न लगा।

इस निराशा ने धीरे-धीरे उसके हृदय में असंतोष का भाव जागृत कर दिया। उसे अपने माता-पिता पर, अपने चाचा पर, संसार पर और अपने आप पर क्रोध आता। अभी थोड़े ही दिन पहले वह स्वयं फिटन पर सैर करने निकलता था, लेकिन अब किसी फिटन को आते देख कर उसका रक्त खौलने लगता था। वह किसी फैशनेबुल मनुष्य को पैदल चलते पाता तो अदबदा कर उससे कंधा मिला कर चलता और मन में सोचता कि यह जरा भी नाक-भौं सिकोड़े तो इसकी खबर लूँ। बहुधा वह कोचवानों के चिल्लाने की परवाह न करता। सबसे छेड़ कर लड़ना चाहता था। ये लोग गाड़ियों पर सैर करते हैं, कोट-पतलून डाट कर बन-ठन कर हवा खाने जाते हैं और मेरा कहीं ठिकाना नहीं।

घर पर जमींदारी होने के कारण सदन के सामने जीविका का प्रश्न कभी न आया था। इसीलिए उसने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान न दिया था, पर अकस्मात् जो यह प्रश्न उसके सामने आ गया, तो उसे मालूम होने लगा कि इस विषय में सर्वथा असमर्थ हूँ। यद्यपि उसने अंग्रेजी न पढ़ी थी, पर इधर उसने हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वह शिक्षित समाज को मातृभाषा में अश्रद्धा रखने के कारण देश और जाति का विरोधी समझता था। उसे अपने सच्चरित्र होने पर भी घमंड था। जब से उसके लेख 'जगत' में प्रकाशित हुए थे वह अंग्रेजी पढ़े-

लिखे आदमियों को अनादर की दृष्टि से देखने लगा था। यह सब - के - सब स्वार्थ सेबी है, इन्होंने केवल दीनों का गला दबाने के लिए, केवल अपना पेट पालने के लिये अंग्रेजी पढ़ी है, यह सब - के - सब फैशन के गुलाम हैं, जिनकी शिक्षा ने उन्हें अंग्रेजों का मुँह चिढ़ाना सिखा दिया है, जिनमें दया नहीं, धर्म नहीं, निज भाषा से प्रेम नहीं, चरित्र नहीं, आत्मबल नहीं, वे भी कुछ आदमी है ? ऐसे ही विचार उसके मन में आया करते थे। लेकिन अब जो जीविका की समस्या उसके सामने आयी तो उसे ज्ञात हुआ कि मैं इनके साथ अन्याय कर रहा था। ये दया के पात्र हैं। मेरी भाषा का पंडित न सही; पर बहुतों से अच्छी भाषा जानता हूँ। मेरा चरित्र उच्च न सही, पर बहुतों से अच्छा है। मेरे विचार उच्च न हों, पर ऐसे नीच नहीं, लेकिन मेरे लिए सब दरवाजे बंद हैं। मैं या तो कहीं चपरासी हो सकता हूँ या बहुत होगा तो कान्सटेबल हो जाऊँगा। बस, यही मेरी सामर्थ्य है। यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान् हों, कितने ही बुद्धिमान हों, कितने ही विचारशील हो, पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं, हमसे अधम और कौन होगा कि इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं। नहीं, बल्कि उस पर गर्व करते हैं। नहीं, मुझे नौकरी करने का विचार मन से निकाल डालना चाहिए।

सदन की दशा इस समय उस मनुष्य की - सी थी जो रात को जंगल में भटकता हुआ अँधेरी रात पर झुंझलाता है।

इसी निराशा और चिंता की दशा में एक दिन वह टहलता हुआ नदी के किनारे उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ बहुत - सी नावें लगी हुई थीं। नदी में छोटी-सी नावें इधर - उधर झुल्लाती फिरती थीं। किसी - किसी नौका में सुरीली तानें सुनायी देती थीं। कई किशियों पर से मल्लाह लोग बोरे उतार रहे थे। सदन एक नाव पर जा बैठा। संध्या समय की शांतिदायिनी छटा और गंगातट के मनोरम काव्यमय दृश्य ने उसे वशीभूत कर लिया। वह सोचने लगा, यह कैसा आनन्दमय जीवन है, ईश्वर मुझे भी ऐसी ही एक झोपड़ी दे देता, तो मैं उसी पर संतोष करता, यहीं नदी तट पर विचरता, लहरों पर चलता और आनंद के राग गाता। शांता झोपड़े के द्वार पर खड़ी मेरी राह देखती। कभी - कभी हम दोनों नाव पर बैठ कर गंगा की सैर करते। उसकी रसिक कल्पना ने उस सरल सुखमय-जीवन का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा, उस आनन्दमय स्वप्न के देखने में वह ऐसा मग्न हुआ कि उसका चित्त व्याकुल हो गया। वहाँ की प्रत्येक वस्तु उस समय सुख, शांति और आनन्द के रंग में डूबी हुई थी। वह उठा और एक मल्लाह से बोला, क्यों जी चौधरी, यहाँ कोई नाव बिकाऊ भी है ?

मल्लाह बैठा हुक्का पी रहा था। सदन को देखते ही उठ खड़ा हुआ और

उसे कई नावें दिखायीं। सदन ने एक नयी किशती पसंद की, मोल-तोल होने लगा, कितने ही और मल्लाह एकत्र हो गये। अन्त में ३०० रु० में नाव पक्की हो गयी, यह भी तै हो गया कि जिसकी नाव है वही उसे चलाने के लिए नौकर होगा।

सदन घर की ओर चला तो ऐसा प्रसन्न था। मानो अब उसे जीवन में किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है, मानो उसने किसी बड़े भारी सग्राम में विजय पायी है, सारी रात उसकी आँखों में नींद नहीं आयी। वही नाव जो पाल खोले क्षितिज की ओर से चली आती थी उसके नेत्रों के सामने नाचती रही, बड़ी दृश्य उसे दिखायी देते रहे। उसकी कल्पना ने तट पर एक सुन्दर हरी-भरी लताओं से सजा हुआ झोपड़ा बनाया और शाता की मनोहारिणी मूर्ति आ कर उसमें बैठी। झोपड़ा प्रकाशमान हो गया। यहाँ तक कि आनन्द कल्पना ने धीरे-धीरे नदी के किनारे एक सुन्दर भवन बनाया, उसमें एक बाटिका लगवायी और सदन उसकी कुञ्जी में शाता के साथ विहार करने लगा। एक ओर नदी की कल-कल ध्वनि थी, दूसरी ओर पक्षियों का कलरव गान। हमें जिससे प्रेम होता है उसे सदा एक ही अवस्था में देखते हैं, हम उसे जिस अवस्था में स्मरण करते हैं, उसी समय के भाव, उसी समय के वस्त्राभूषण हमारे हृदय पर अंकित हो जाते हैं। सदन शांता को उसी अवस्था में देखता था, जब वह एक सादी साड़ी पहने, सिर झुकाये गंगातट पर खड़ी थी। वह चित्र उसकी आँखों से न उतरता था।

सदन को इस समय ऐसा मालूम होता था कि इस व्यवसाय में लाभ ही लाभ है, हानि की संभावना ही उसके ध्यान से बाहर थी। सबसे विचित्र बात यह थी कि अब तक उसने यह न सोचा था कि रुपये कहाँ से आयेंगे ?

प्रातःकाल होते ही उसे चिंता हुई कि रुपयों का क्या प्रबंध करूँ ? किससे माँगूँ और कौन देगा ? माँगूँ किस बहाने से ? चाचा से कहूँ ? नहीं उनके पास आजकल न होंगे। महीनो से कचहरी नहीं जाते और दादा से माँगना तो पत्थर से तेल निकालना है। क्या करूँ ? यदि इस समय न गया तो चौधरी अपने मन में क्या कहेगा ? वह छत पर झूँट-उधर टहलने लगा। अभिलाषाओं का वह विशाल भवन, अभी थोड़ी देर पहले उसकी कल्पना ने जिसका निर्माण किया था, देखते-देखते गिरने लगा। युवाकाल की आशा पुआल की आग है जिसके जलने और बुझने में देर नहीं लगती।

अकस्मात् सदन को एक उपाय सूझ गया। वह जोर से खिलखिला कर हँसा, जैसे कोई अपने शत्रु को भूमि पर गिरा कर बेहँसी की हँसी हँसता है। वाह ! मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। मेरे संदूक में मोहनमाला रखी हुई है। ३०० रु० से अधिक की होगी। क्यों न उसे बेच डालूँ ? जब कोई माँगेगा, देखा जायगा। कौन माँगता है और किसी ने माँगा भी तो साफ-साफ कह दूँगा कि बेच कर खा गया। जो कुछ

करना होगा, कर लेगा। और अगर उस समय तक हाथ में कुछ रुपए आ गये तो निकालकर फेंक दूंगा। उसने आकर संदूक से माला निकाली और सोचने लगा कि इसे कैसे बेचूँ। बाजार में कोई गहना बेचना अपनी इज्जत बेचने से कम अपमान की बात नहीं है। इसी चिंता में बैठा था कि जीतन कहार कमरे में झाड़ू देने आया। सदन को मलिन देख कर बोला, भैया आज उदास हो, आँखें चढ़ी हुई हैं, रात को सोये नहीं क्या ?

सदन ने कहा, आज नींद नहीं आयी। सिर पर एक चिंता सवार है।

जीतन — ऐसी कौन-सी चिंता है ? मैं भी सुनूँ।

सदन — तुमसे कहूँ तो तुम अभी सारे घर में दोहाई मचाते फिरोगे।

जीतन — भैया, तुम्हीं लोगों की गुनामी में उमिर बीत गयी। ऐसा पेट का हलका होता तो एक दिन न चलता। इससे निसाखातिर रहो।

जिस प्रकार एक निधन किंतु शीलवान मनुष्य के मुँह से बड़ी कठिनता, बड़ी विवशता और बहुत लज्जा के साथ 'नहीं' शब्द निकलता है, उसी प्रकार सदन के मुँह से निकला, मेरे पास एक मोहनमाला है, इसे कहीं बेच दो, मुझे रुपयों का काम है।

जीतन — तो यह कौन बड़ा काम है, इसके लिए क्यों चिंता करते हो ? मुदा रुपये क्या करोगे ? मलकिन से क्यों नहीं माँग लेते हो ? वह कभी नाहीं नहीं करेंगी। हाँ, मालिक से कहोगे तो न मिलेगा। इस घर में मालिक कुछ नहीं है, जो है वह मलकिन है।

सदन — मैं घर में किसी से नहीं माँगना चाहता।

जीतन ने माला ले कर देखी, उसे हाथों से तौला और शाम तक उसे बेच लाने की बात कह कर चला गया। मगर बाजार न जा कर वह सीधे अपनी कोठरी में गया, दोनों किवाड़ बंद कर लिये और अपनी खाट के नीचे की भूमि खोदने लगा। थोड़ी देर में मिट्टी की एक हाँड़ी निकल आयी। यही उसकी सारे जन्म की कमाई थी, सारे जीवन की किरायात, कंजूसी, काट-कपट, बेईमानी, दलाली, गोलमाल, इसी हाँड़ी के अन्दर इन रुपयों के रूप में संचित थी। कदाचित् इसी कारण रुपयों के मुँह पर कालिमा भी लग गयी थी। लेकिन जन्म भर के पापों का कितना सक्षिप्त फल था। पाप कितने सस्ते बिकते हैं !

जीतन ने रुपये गिन कर २०-२० की ढेरियाँ लगायीं। कुल १७ ढेरियाँ हुईं। तब उसने तराजू पर माले को रुपयों से तौला। यह २५ रुपये भर से कुछ अधिक थी। सोने की दर बाजार में चढ़ी हुई थी, पर उसने एक रुपये भर के २५ रु० ही लगाये। फिर रुपयों की २५-२५ की ढेरियाँ बनायीं। १३ ढेरियाँ हुईं और १५ रु० बच रहे। उसके कुल रुपये माला के मूल्य से २८५ रु० कम थे। उसने

मन में कहा, अब यह चीज हाथ से नहीं जाने पायेगी। कह दूँगा माला १३ ही भर थी। १५ और बच जायँगे। चलो मालारानी, तुम इस दरबे में आराम से बैठो।

हाँड़ी फिर धरती के नीचे चली गयी, पापों का आकार और भी सूक्ष्म हो गया।

जीतन इस समय उछला पड़ता था। उसने बात - की - बात में २८५ रु० पर हाथ मारा था। ऐसा सुअवसर उसे कभी नहीं मिला था। उसने आज सोचा, अवश्य किसी भले आदमी का मुँह देख कर उठा था। बिगड़ी हुई आँखों के सदृश बिगड़े हुए ईमान में प्रकाश - ज्योति प्रवेश नहीं करती।

१० बजे जीतन ने ३२५ रु० ला कर सदन के हाथों में दिये। सदन को मानो पड़ा हुआ धन मिला।

रुपया दे कर जीतन ने निःस्वार्थ भाव से मुँह फेरा। सदन ने ५ निकाल कर उसकी ओर बढ़ाये और बोला, यह लो तमाखू पीना।

जीतन ने ऐसा मुँह बनाया, जैसा कोई वृण्णव मदिरा देख कर मुँह बनाता है, और बोला, भैया, तुम्हारा दिया तो खाता हूँ, यह कहाँ पचेगा ?

सदन — नहीं - नहीं, मैं खुशी से देता हूँ। ले लो, कोई हरज नहीं है।

जीतन — नहीं भैया, यह न होगा, ऐसा करता तो अब तक चार पैसे का आदमी हो गया होता, नारायण तुम्हें बनाये रखें।

सदन को विश्वास हो गया कि यह बड़ा सच्चा आदमी है। इसके साथ अच्छा सलूक करूँगा।

संध्या समय सदन की नाव गंगा की लहरों पर इस भाँति चल रही थी जैसे आकाश में मेघ चलते हैं। लेकिन उसके चेहरे पर आनंद - विकास की जगह भविष्य की शंका झलक रही थी, जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद चिंता में ग्रस्त हो जाता है। उसे अनुभव होता है कि वह बाँध जो संसार रूपी नदी की बाढ़ से मुझे बचाये हुए था, टूट गया है और मैं अथाह सागर में खड़ा हूँ। सदन सोच रहा था कि मैंने नाव तो नदी में डाल दी, लेकिन यह पार भी लगेगी ? उसे अब मालूम हो रहा था कि वह पानी गहरा है, हवा तेज है और जीवन - यात्रा इतनी सरल नहीं है, जितनी मैं समझता था। लहर यदि मीठे स्वरों में गाती है तो भयंकर ध्वनि से गरजती है, हवा अगर लहरों को थपकियाँ देती है, तो कभी - कभी उन्हें उछाल भी देती है।

२३

प्रभाकरराव का क्रोध बहुत कुछ तो सदन के लेखों से ही शांत हो गया था और जब पर्दासिंह ने सदन के आग्रह से सुमन का पूरा वृत्तांत उन्हें लिख भेजा, तो वह सावधान हो गये।

म्युनिसिपैलिटी में प्रस्ताव को पास हुए लगभग तीन मास बीत गये; पर उसकी तरमीम के विषय में तेगअली ने जो शंकाएँ प्रकट की थी वह निर्मूल प्रतीत हुई। न दालमंडी के कोठों पर दूकानें ही सजीं और न वेश्याओं ने निकाह - बंधन से ही कोई विशेष प्रेम प्रकट किया। हाँ, कई कोठे खाली हो गये। उन वेश्याओं ने भावी निर्वासन के भय से दूसरी जगह रहने का प्रबंध कर लिया। किसी कानून का विरोध करने के लिए उससे अधिक संगठन की आवश्यकता होती है जितनी उसके जारी करने के लिए। प्रभाकरराव का क्रोध शांत होने का यह एक और कारण था।

पर्दासिंह ने इस प्रस्ताव को वेश्याओं के प्रति घृणा से प्रेरित हो कर हाथ में लिया था, पर अब इस विषय पर विचार करते - करते उनकी घृणा बहुत कुछ दया और क्षमा का रूप धारण कर चुकी थी। इन्हीं भावों ने तरमीम से सहमत होने पर बाध्य किया था। सोचते, यह बेचारी अबलाएँ अपनी इंद्रियों के सुख - भोग में अपना सर्वस्व नाश कर रही है। विलास - प्रेम की लालसा ने उनकी आखें बंद कर रखी है। इस अवस्था में उनके साथ दया और प्रेम की आवश्यकता है। इस अत्याचार से उनकी सुवारक शक्तियाँ और भी निर्बल हो जायेंगी और जिन आत्माओं का हम उपदेश से, प्रेम से, ज्ञान से, शिक्षा से उद्धार कर सकते हैं वे सदा के लिए हमारे हाथ से निकल जायेंगी। हम लोग जो स्वयं माया - मोह के अंधकार में पड़े हुए हैं, उन्हें दंड देने का कोई अधिकार नहीं रखते। उनके कर्म ही उन्हें क्या कम दंड दे रहे हैं कि हम यह अत्याचार करके उनके जीवन को और भी दुःखमय बना दें।

हमारे मन के विचार कर्म के पथदर्शक होते हैं। पर्दासिंह ने शिक्षक और सकोच को त्याग कर कर्म - क्षेत्र में पैर रखा। वही पर्दासिंह जो सुमन के सामने भाग खड़े हुए थे अब दिन दोपहर दालमंडी के कोठों पर बैठे दिखायी देने लगे। उन्हें अब लोकनिंदा का भय न था, मुझे लोग क्या कहेंगे इसकी चिंता न थी, उनकी आत्मा बलवान हो गयी थी, हृदय में सच्ची सेवा का भाव जागृत हो गया था। कच्चा फल पत्थर मारने से भी नहीं गिरता, किंतु पक कर आप - ही - आप धरती की ओर आकर्षित हो जाता है। पर्दासिंह के अंतःकरण में सेवा का — प्रेम का भाव परिपक्व हो गया था।

विठ्ठलदास इस विषय में उनसे पृथक् हो गये। उन्हें जन्म की वेश्याओं के

सुधार पर विश्वास न था। सैयद शफकतअली भी जो इसके जन्मदाता थे, उनसे कन्नौ काट गये और कुँवर साहब को तो अपने साहित्य, संगीत और सत्संग से ही अवकाश न मिलता था, केवल साधु गजानंद ने इस कार्य में पद्मसिंह का हाथ बटाया। उस सदुद्योगी पुरुष में सेवा का भाव पूर्ण रूप से उदय हो चुका था।

२४

एक महीना बीत गया। सदन ने अपने इस नये धंधे की चर्चा घर में किसी से न की। वह नित्य सबेरे उठ कर गंगास्नान के बहाने चला जाता। वहाँ से दस बजे घर आता। भोजन करके फिर चल देता और तब का गया-गया घड़ी रात गये घर लौटता। अब उसकी नाव घाट पर की सब नावों से अधिक सजी हुई, दर्शनीय थी। उस पर दो-तीन मोढ़े रखे रहते थे और एक जाजिम बिछी रहती थी। इसलिए शहर के कितने ही रसिक, विनोदी मनुष्य उस पर सैर किया करते थे। सदन किराये के विषय में खुद बातचीत न करता। यह काम उसका नौकर झींगुर मल्लाह किया करता था। वह स्वयं कभी तो तट पर बैठा रहता और कभी नाव पर जा बैठता था। वह अपने को बहुत समझता कि काम करने में क्या शर्म? मैंने कोई बुरा काम तो नहीं किया है, किसी का गुलाम तो नहीं हूँ, कोई आँख तो नहीं दिखा सकता। लेकिन जब वह किसी भले आदमी को अपनी नाव की ओर आते देखता तो आप-ही-आप उसके कदम पीछे हट जाते और लज्जा से आँखें झुक जातीं। वह एक जमींदार का पुत्र था और एक वकील का भतीजा। उस उच्च पद से उतर कर मल्लाह का उद्यम करने में उसे स्वभावतः लज्जा आती थी, जो तर्क से किसी भाँति न हटती। इस संकोच से उसकी बहुत हानि होती थी। जिस काम के लिए वह सुगमता से एक रुपया ले सकता था, उसी के लिए उसे आधे में ही राजी होना पड़ता था। ऊँची दूकान पकवान फीके होने पर भी बाजार में श्रेष्ठ होती है। यहाँ तो पकवान भी अच्छे थे, केवल एक चतुर सजीले दूकानदार की कमी थी। सदन इस बात को समझता था, पर संकोचवश कुछ कह न सकता था। तिस पर भी डेढ़-दो रुपये नित्य मिल जाते थे और वह समय निकट आता जाता था, जब गंगा-तट पर उसका झोपड़ा बनेगा और आबाद होगा। वह अब अपने बल-बूते पर खड़े होने के योग्य होता जाता था। इस विचार से उसके आत्मसम्मान को अतिशय आनंद होता था। वह बहुधा रात-की-रात इन्हीं अभिलाषाओं की कल्पना में जागता रहता।

इसी समय म्युनिसिपैलिटी ने वेश्याओं के लिए शहर से हट कर मकान बनवाने

का निश्चय किया, लाला भगताराम को इसका ठीका मिला। नदी के इस पार ऐसी जमीन न मिल सकी जहाँ वह पजावे लगाते और चूने के भट्टे बनाते। इसलिए उन्होंने नदी पार जमीन ली थी और वही सब सामान तैयार करते थे। उस पार से ईंटें, चूना आदि लाने के लिए उन्हें एक नाव की जरूरत हुई। नाव तय करने के लिए मल्लाहों के पास आये। सदन से भेंट हो गयी। सदन ने अपनी नाव दिखायी, भगताराम ने उसे पसंद किया। झीगुर से मजूरी तय हुई, दो खेवे रोज लाने की बात ठहरी। भगताराम ने बयाना दिया और चले गये।

रुपये की चाट बुरी होती है। सदन अब वह उड़ाऊ, लुटाऊ युवक नहीं रहा। उसके सिर पर अब चिंताओं का बोझ है, कर्त्तव्य का ऋण है। वह इससे मुक्त होना चाहता है। उसकी निगाह एक-एक पैसे पर रहती है। उसे अब रुपये कमाने और घर बनवाने की धुन है। उस दिन वह घड़ी रात रहे उठ कर नदी के किनारे चला आया और झीगुर को जगा कर नाव खुलवा दी। दिन निकलते-निकलते उस पार जा पहुँचा। लौटती बार उसने स्वयं डाढ़ ले लिया और हँसते हुए दो-चार हाथ चलाये, लेकिन इतने से ही नाव की चाल बढ़ते देख कर उसने जोर-जोर से डाढ़ चलाने शुरू किये। नाव की गति दूनी हो गयी। झीगुर पहले-पहल तो मुसकराता रहा, लेकिन अब चकित हो गया।

आज से वह सदन का दबाव कुछ अधिक मानने लगा। उसे मालूम हो गया कि यह महाशय निरे मिट्टी के लोदे नहीं है। काम पड़ने पर यह अकेले नाव को पार ले जा सकते हैं, और अब मेरा टराना उचित नहीं।

उस दिन दो खेवे हुए, दूसरे दिन एक ही हुआ, क्योंकि सदन को आने में देर हो गयी। तीसरे दिन उसने नौ बजे रात को तीसरा खेवा पूरा किया, लेकिन पसीने में डूबा था। ऐसा थक गया था कि घर तक आना पहाड़ हो गया। इसी प्रकार दो मास तक लगातार उसने काम किया और इसमें उसे अच्छा लाभ हुआ। उसने दो मल्लाह और रख लिये थे।

सदन अब मल्लाहों का नेता था। उसका झोपड़ा तैयार हो गया था। भीतर एक तख्ता था, दो पलंग, दो लैप, कुछ मामूली बर्तन भी। एक कमरा बैठने का था, एक खाना पकाने का, एक सोने का। द्वार पर ईंटों का चबूतरा था। उसके इर्द-गिर्द गमले रखे हुए थे। दो गमलों में लताएँ लगी हुई थीं, जो झोपड़े के ऊपर चढ़ती जाती थीं। यह चबूतरा अब मल्लाहों का अड्डा था। वह बहुधा वहीं बैठे तमाखू पीते। सदन ने उनके साथ बड़ा उपकार किया था, अफसरों से लिखा-पढ़ी करके उन्हें आये दिन की बेगार से मुक्त करा दिया था। इस साहस के काम ने उसका सिक्का जमा दिया था। उसके पास अब कुछ रुपये भी जमा हो गये थे और वह मल्लाहों को बिना सूद के रुपये उधार देता था। उसे अब एक

पेरगाड़ी की फिक्र थी, शौकीन आदमियों के सैर के लिए वह एक सुन्दर बजरा भी लेना चाहता था, और हारमोनियम के लिए तो उसने पत्र डाल ही दिया। यह सब उस देवी के आगमन की तैयारियाँ थी जो एक क्षण के लिए भी उसके ध्यान से न उतरती थी।

सदन की अवस्था अब ऐसी थी कि वह गृहस्थी का बोझ उठा सके, लेकिन अपने चाचा की सम्मति के बिना वह शाता को लाने का साहस न कर सकता था। वह घर पर पद्मसिंह के साथ भोजन करने बैठता तो निश्चय कर लेता कि आज इस विषय को छोड़ कर तय कर लूँगा, पर उसका इरादा कभी पूरा न होता, उसके मुँह से बात ही न निकलती।

यद्यपि उसने पद्मसिंह से इस व्यवसाय की चर्चा न की थी, पर उन्हें लाला भगतराम से सब हाल मालूम हो गया था। वह सदन की उद्योगशीलता पर बहुत प्रसन्न थे। वह चाहते थे कि एक-दो नावे और ठीक कर ली जायँ और कारोबार बढ़ा दिया जाय। लेकिन जब सदन स्वयं कुछ नहीं कहता था तो वह भी इस विषय में चुप रहना ही उचित समझते थे। वह पहले से ही उसकी खातिर करते थे, अब कुछ आदर भी करने लगे और सुभद्रा तो उसे लड़के के समान मानने लगी।

एक दिन रात के समय सदन अपने झोपड़े में बैठा हुआ नदी की तरफ देख रहा था। आज न जाने क्यों नाव के आने में देर हो रही थी। सामने लैम्प जल रहा था। सदन के हाथ में एक समाचार-पत्र था, पर उसका ध्यान पढ़ने में न लगता था। नाव के न आने से उसे किसी अनिष्ट की शंका हो रही थी। उसने पत्र रख दिया और बाहर निकल कर तट पर आया। रेत पर चाँदनी की सुनहरी चादर बिछी हुई थी और चाँद की किरणें नदी के हिंसते हुए जल पर ऐसी मालूम होती थी जैसे किसी झरने से निर्मल जल की धारा क्रमशः चौड़ी होती हुई निकलती है। झोपड़े के सामने चबूतरे पर कई मल्लाह बैठे हुए बातें कर रहे थे कि अकस्मात् सदन ने दो स्त्रियों को शहर की ओर से आते देखा। उनमें से एक ने मल्लाहों से पूछा, हमें उस पार जाना है, नाव ले चलोगे ?

सदन ने शब्द पहचाने। यह सुमनबाई थी। उसके हृदय में एक गुदगुदी-सी हुई; आँखों में एक नशा-सा आ गया। लपक कर चबूतरे के पास आया और सुमन से बोला, बाई जी, तुम यहाँ कहाँ ?

सुमन ने ध्यान से सदन को देखा, मानो उसे पहचानती ही नहीं। उसके साथ वाली स्त्री ने घूँघट निकाल लिया और लालटेन के प्रकाश से कई पग हट कर अँधेरे में चली गयी। सुमन ने आश्चर्य से कहा, कौन ? सदन ?

मल्लाहों ने उठ कर घेर लिया, लेकिन सदन ने कहा, तुम लोग इस समय यहाँ से चले जाओ। ये हमारे घर की स्त्रियाँ हैं, आज यही रहेगी। इसके बाद वह

सुमन से बोला, बाई जी, कुशल समाचार कहिए। क्या माजरा है ?

सुमन — सब कुशल ही है, भाग्य मे जो कुछ लिखा है वही भोग रही हूँ। आज का पत्र तुमने अभी न पढ़ा होगा, प्रभाकरराव ने न जाने क्या छाप दिया कि आश्रम मे हलचल मच गयी। हम दोनो बहनें वहाँ एक दिन भी और रह जातीं तो आश्रम बिलकुल खाली हो जाता। वहाँ से निकल आने मे कुशल थी। अब इतनी कृपा करो कि हमे उस पार ले जाने के लिए एक नाव ठीक कर दो। वहाँ से हम एक्का करके मुगलसराय चली जायेंगी। अमोला के लिए कोई - न - कोई गाड़ी मिल ही जायगी। यहाँ से रात कोई गाड़ी नहीं जाती ?

सदन — अब तो तुम अपने घर ही पहुँच गयीं, अमोला क्यों जाओगी। तुम लोगो को कष्ट तो बहुत हुआ, पर इस समय तुम्हारे आने से मुझे जितना आनंद हुआ, यह वर्णन नहीं कर सकता। मैं स्वयं कई दिन से तुम्हारे पास आने का इरादा कर रहा था; लेकिन काम से छुट्टी ही नहीं मिलती ! मैं तीन - चार महीने से मल्लाह का काम करने लगा हूँ। यह तुम्हारा झोपड़ा है, चलो अंदर चलो।

सुमन झोपड़े मे चली गयी, लेकिन शांता वहीं अँधेरे मे चुपचाप सिर झुकाये रो रही थी। जबसे उसने सदनसिंह के मुँह से वे बातें सुनी थीं, उस दुखिया ने रो - रो कर दिन काटे थे। उसे बार - बार अपने मान करने पर पछतावा होता था। वह सोचती, यदि मैं उस समय उनके पैरो पर गिर पड़ती तो उन्हें मुझ पर अवश्य दया आ जाती। सदन की सूरत उसकी आँखों मे फिरती और उसकी बातें उसके कानों मे गूँजती। बाते कठोर थीं, लेकिन शांता को वह प्रेम-करुणा से भरी हुई प्रतीत होती थीं। उसने अपने मन को समझा लिया था कि यह सब मेरे कुदिन का फल है, सदन का कोई अपराध नहीं। वह वास्तव में विवश हैं। अपने माता - पिता की आज्ञा का पालन करना उनका धर्म है। यह मेरी नीचता है कि मैं उन्हे धर्म के मार्ग से फेरना चाहती हूँ। हा ! मैंने अपने स्वामी से मान किया ! मैंने अपने आराध्यदेव का निरादर किया, मैंने अपने कुटिल स्वार्थ के वश हो कर उनका अपमान किया। ज्यो - ज्यों दिन बीतते थे, शांता की आत्मम्लानि बढ़ती जाती थी। इस शोक, चिंता और विरह - पीड़ा से वह रमणी इस प्रकार सूख गयी थी, जैसे जेठ महीने में नदी सूख जाती है।

सुमन झोपड़े मे चली गयी तो सदन धीरे - धीरे शांता के सामने आया और काँपते हुए स्वर से बोला — शांता !

यह कहते-कहते उसका गला रुँध गया।

शांता प्रेम से गद्गद हो गयी। उसका प्रेम उस विरत दशा को पहुँच गया, जब वह संकुचित स्वार्थ से मुक्त हो जाता है।

उसने मन मे कहा, जीवन का क्या भरोसा है ? मालूम नहीं जीती रहूँ या न

रहूँ, इनके दर्शन फिर हों या न हों, एक बार इनके चरणों पर सिर रख कर रोने की अभिलाषा क्यों रह जाय ? इसका इससे उत्तम और कौन - सा अवसर मिलेगा ? स्वामी ! तुम एक बार अपने हाथों से उठा कर मेरे आँसू पोंछ, दोगे तो मेरा चित्त शांत हो जायगा, मेरा जन्म सफल हो जायगा, मैं जब तक जीऊँगी इस सौभाग्य के स्मरण का आनंद उठाया करूँगी । मैं तो तुम्हारे दर्शनों की आशा ही त्याग चुकी थी, किंतु जब ईश्वर ने यह दिन दिखा दिया तब अपनी मनोकामना क्यों न पूरी कर लूँ ? जीवन रूपी मरुभूमि में यह वृक्ष मिल गया है तो इसकी छाँह में बैठ कर क्यों न अपने दग्ध हृदय को शीतल कर लूँ ।

यह सोच कर शाता रोती हुई सदन के पैरों पर गिर पड़ी किंतु मुरझाया हुआ फूल हवा का झोंका लगते ही बिखर गया । सदन झुका कि उसे उठा कर छाती से लगा ले, चिपटा ले, लेकिन शाता की दशा देख कर उसका हृदय विकल हो गया । जब उसने उसे पहले - पहल नदी के किनारे देखा, तब वह सौंदर्य की एक नयी कोमल कली थी पर आज वह एक सूखी हुई पीली पत्ती थी जो वसंत ऋतु में गिर पड़ी है ।

सदन का हृदय नदी में चमकती हुई चंद्र - किरणों के सदृश थरथराने लगा । उसने काँपते हुए हाथों से उस संज्ञा - शून्य शरीर को उठा लिया । निराश अवस्था में उसने ईश्वर की शरण ली । रोते हुए बोला, प्रभो, मैंने बड़ा पाप किया है, मैंने एक कोमल सतत हृदय को बड़ी निर्दयता से कुचला है, पर उसका यह दंड अमह्य है । इस अमूल्य रत्न को इतनी जल्दी मुझसे मत छीनो । तुम दयामय हो, मुझ पर दया करो ।

शाता को छाती से लगाये हुए सदन झोपड़ी में गया और उसे पलंग पर लिटा कर शोकानुर स्वर से बोला, सुमन, देखो, यह कैसी हुई जाती है । मैं डाक्टर के पास दौड़ा जाता हूँ ।

सुमन ने समीप आ कर बहन को देखा । माथे पर पसीने की बूँदें आ गयी थीं, आँखें पथरायी हुई, नाड़ी का कही पता नहीं । मुख वर्णहीन हो गया था । उसने तुरंत पंखा उठा लिया और झलने लगी । वह क्रोध जो शाता की दशा देख - देख कर महीनों से उसके दिल में जमा हो रहा था, फूट निकला । सदन की ओर तिर-स्कारपूर्ण नेत्रों से देख कर बोली, यह तुम्हारे अत्याचार का फल है, यह तुम्हारी करनी है, तुम्हारे ही निर्दय हाथों ने इस फूल को यों मसला है । तुमने अपने पैरों से इस पौधे को यों कुचला है । लो, अब तुम्हारा गला छूटा जाता है । सदन, जिस दिन से इस दुखिया ने तुम्हारी वह अभिमान भरी बातें सुनीं उसके मुख पर हँसी नहीं आयी, उसके आँसू कभी नहीं थमे । बहुत गला दबाने से दो - चार कौर खा लिया करती थी । और तुमने उसके साथ यह अत्याचार केवल इसलिए किया कि

मे उसकी बहन हूँ, जिसके पैरों पर तुमने बरसों नाक रगड़ी है, जिसके तलुवे तुमने बरसों सहलाये हैं, जिसके कुटिल प्रेम में तुम महीनों मतवाले हुए रहते थे। उस समय भी तो तुम अपने माँ - बाप के आज्ञाकारी पुत्र थे या कोई और थे ? उस समय भी तो तुम वही उच्च - कुल के ब्राह्मण थे या कोई और थे ? तब तुम्हारे दुष्कर्मों से खान-दान की नाक न कटती थी ? आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो ! अंधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं ! यह निरी धूर्तता है, दगाबाजी है। जैसा तुमने इस दुखिया के साथ किया है, उसका फल तुम्हें ईश्वर देगे, इसे जो कुछ भुगतना था वह भुगत चुकी। आज न मरी, कल मर जायगी ; लेकिन तुम इसे याद करके रोओगे। कोई और स्त्री होती तो तुम्हारी बातें सुन कर फिर तुम्हारी ओर आँख उठा कर न देखती, तुम्हें कोसती, लेकिन यह अबला सदा तुम्हारे नाम पर मरती रही। लाओ, थोड़ा ठंडा पानी !

सदन अपराधी की भाँति सिर झुकाये ये बातें सुनता रहा। इससे उसका हृदय कुछ हलका हुआ। सुमन ने यदि उसे गालियाँ दी होतीं तो और भी बोध होता। वह अपने को इस तिरस्कार के सर्वथा योग्य समझता था।

उसने ठंडे पानी का कटोरा सुमन को दिया और स्वयं पंखा झलने लगा। सुमन ने शाता के मुँह पर पानी के कई छीटे दिये। इस पर जब शाता ने आँखें न खोली, तब सदन बोला, जा कर डाक्टर को बुला लाऊँ ?

सुमन — नहीं, घबराओ मत। ठडक पहुँचते ही होश आ जायगा। डाक्टर के पास इसकी दवा नहीं।

सदन को कुछ तसल्ली हुई, बोला, सुमन, चाहे तुम समझो कि मैं बात बना रहा हूँ, लेकिन मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि उसी मनहूस घड़ी से मेरी आत्मा को कभी शांति नहीं मिली। मैं बार - बार अपनी मूर्खता पर पछताता था। कई बार इरादा किया कि चल कर अपना अपराध क्षमा कराऊँ, लेकिन यही विचार उठता कि किस बूते पर जाऊँ ? घरवालों से सहायता की कोई आशा न थी, और मुझे तो तुम जानती ही हो कि सदा कोतल घोड़ा बना रहा। बस इसी चिंता में डूबा रहता था कि किसी प्रकार चार पैसे पैदा करूँ और अपनी झोपड़ी अलग बनाऊँ। महीनो नौकरी की खोज में मारा - मारा फिरा, कहीं ठिकाना न लगा। अंत को मैंने गंगा-माता की शरण ली और अब ईश्वर की दया से मेरी नाव चल निकली है, अब मुझे किसी के सहारे या मदद की आवश्यकता नहीं है। यह झोपड़ी बना ली है, और विचार है कि कुछ रुपये और आ जायँ तो उस पार किसी गाँव में एक मकान बनवा लूँ। क्यों, इनकी तबीयत कुछ सँभलती हुई मालूम होती है ?

सुमन का क्रोध शांत हुआ। बोली, हाँ अब कोई भय नहीं है, केवल मूर्च्छा थी। आँखें बंद हो गयीं और ओठों का नीलापन जाता रहा।

सदन को ऐसा आनंद हुआ कि यदि वहाँ ईश्वर की कोई मूर्ति होती तो उसके पैरों पर सिर रख देता। बोला, सुमन, तुमने, मेरे साथ जो उपकार किया है उसको मैं सदा याद करता रहूँगा। अगर और कोई बात हो जाती तो इस लाश के साथ मेरी लाश भी निकलती।

सुमन — यह कैसी बात मुँह से निकालते हो। परमात्मा चाहेगे तो यह बिना दवा के अच्छी हो जायगी और तुम दोनों बहुत दिनों तक सुख से रहोगे। तुम्ही उसकी दवा हो, तुम्हारा प्रेम ही उसका जीवन है, तुम्हें पा कर अब उसे किसी वस्तु की लालसा नहीं है। लेकिन अगर तुमने भूल कर भी उसका अनादर या अपमान किया तो फिर उसकी यही दशा हो जायगी और तुम्हें हाथ मलना पड़ेगा।

इतने में शाता ने करवट बदली और पानी माँगा। सुमन ने पानी का गिलास उसके मुँह से लगा दिया। उसने दो तीन घूंट पिया और तब फिर चारपाई पर लेट गयी। वह विस्मित नेत्रों से इधर-उधर ताक रही थी, मानो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं है। वह चौक कर उठ बैठी और सुमन की ओर ताकती हुई बोली, क्यों, यही मेरा घर है न? हाँ-हाँ, यही है। और वह कहाँ है मेरे स्वामी; मेरे जीवन के आधार। उन्हें बुलाओ, आ कर मुझे दर्शन दें, बहुत जलाया है, इस दाह को बुझायें। मैं उनसे कुछ पूछूँगी। क्या नहीं आते? तो लो, मैं ही चलती हूँ। आज मेरी उनसे तकरार होगी। नहीं, मैं उनसे तकरार न करूँगी, केवल यही कहूँगी कि अब मुझे छोड़ कर कहीं मत जाओ। चाहे गले का द्वार बना कर रखो, चाहे पैरों की बेड़ी बना कर रखो, पर अपने साथ रखो। वियोग-दुःख अब नहीं सहता जाता। मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो। अच्छा, न सही, तुम मुझे नहीं चाहते, मैं तो तुम्हें चाहती हूँ। अच्छा यह भी न सही, मैं भी तुम्हें नहीं चाहती, मेरा विवाह तो तुमसे हुआ है! नहीं, नहीं हुआ, अच्छा कुछ न सही, मैं तुमसे विवाह नहीं करती, लेकिन मैं तुम्हारे साथ रहूँगी और अगर तुमने फिर आँख फेरी तो अच्छा न होगा, हाँ अच्छा न होगा, मैं संसार में राने के ही लिए नहीं आयी हूँ। प्यारे, रिसाओ मत, यही न होगा दो-चार आदमी हँसेंगे, तानें देंगे, मेरी खातिर उसे सह लेना। क्या माँ-बाप छोड़ देंगे, कैसी बात कहते हो? माँ-बाप अपने लड़के को नहीं छोड़ते। तुम देख लेना, मैं उन्हें खींच लाऊँगी, मैं अपनी सास के पैर धो-धो पीऊँगी, अपने समुद्र के पैर दबाऊँगी, क्या उन्हें मुझ पर दया न आवेगी? यह कहते-कहते शाता की आँखें फिर बंद हो गयीं।

सुमन ने सदन से कहा, अब सो रही है, सोने दो, एक नींद सो लेगी तो उसका जी सँभल जायगा। रात अधिक बीत गयी है, अब तुम भी घर जाओ; शर्मा जी बेंठे घबराते होंगे।

सदन — आज न जाऊँगा।

सुमन — नहीं - नहीं, वे लोग घबरायेंगे । शाता अब अच्छी है । देखो, कैसे सुख से सोती है । इतने दिनों में आज ही मैंने उसे यो सोते देखा है । सदन ने नहीं माना, वहीं बरामदे में आ कर चौकी पर लेट रहा और सोचने लगा ।

२५

बाबू विट्ठलदास न्यायप्रिय सरल मनुष्य थे, जिधर न्याय खींच ले जाता उधर चले जाते थे । इसमें उन्हें लेश-मात्र भी संकोच न होता था । जब उन्होंने पद्मसिंह को न्यायपथ से हटते देखा तो उनका साथ छोड़ दिया और कई महीने तक उनके घर न आये लेकिन प्रभाकरराव ने जब आश्रम पर आक्षेप करना शुरू किया और सुमन बाई के सबध में कुछ गुप्त रहस्यों का उल्लेख किया तो विट्ठलदास का उनसे भी बिगाड़ हो गया । अब सारे शहर में उनका कोई मित्र न था । अब उन्हें अनुभव हो रहा था कि ऐसी संस्था का अध्यक्ष हो कर, जिसका अस्तित्व दूसरे की सहायता और सहानुभूति पर निर्भर है मेरे लिए किसी पक्ष को ग्रहण करना अत्यंत अनुचित है । उन्हें अनुभव हो रहा था कि आश्रम की कुशल इसी में है कि इससे पृथक् रहते हुए भी सबसे मिला रहूँ । यही मार्ग मेरे लिए सबसे उत्तम है । संध्या का समय था, वे बैठे हुए सोच रहे थे कि प्रभाकरराव के आक्षेपों का क्या उत्तर दूँ । बातें कुछ सच्ची हैं, सुमन वास्तव में वेश्या थी, मैं यह जानते हुए उसे आश्रम में लाया, मैंने प्रबंधकारिणी सभा में इसकी कोई चर्चा नहीं की, इसका कोई प्रस्ताव नहीं किया । मैंने वास्तव में आश्रम को अपनी निज की संस्था समझी । मेरा उद्देश्य चाहे कितना ही प्रशंसनीय हो, पर उसे गुप्त रखना सर्वथा अनुचित था ।

विट्ठलदास अभी कुछ निश्चय नहीं करने पाये थे कि आश्रम की अध्यापिका ने आ कर कहा, महाशय, आनंदी, राजकुमारी और गौरी घर जाने को तैयार बेठी है ! मैंने कितना ही समझाया पर वे मानती ही नहीं । विट्ठलदास ने झंझला कर कहा, कह दो चली जायँ, मुझे इसका डर नहीं है । उनके लिए मैं सुमन और शाता को नहीं निकाल सकता ।

अध्यापिका चली गयी और विट्ठलदास फिर सोचने लगे । यह स्त्रियाँ अपने को क्या समझती हैं ? क्या सुमन ऐसी गयी-बीती है कि वह उनके साथ रह भी नहीं सकती ? उनका कहना है कि आश्रम बदनाम हो रहा है और यहाँ रहने में हमारी बदनामी है । हाँ, जरूर बदनामी है, जाओ, मैं तुम्हें नहीं रोकता ।

इसी समय डाकिया चिट्ठियाँ ले कर आया । विट्ठलदास के नाम पाँच चिट्ठियाँ थीं ।

एक मे लिखा था कि मैं अपनी कन्या (विद्यावती) को आश्रम मे रखना उचित नहीं समझता । मैं उसे लेने आऊँगा । दूसरे महाशय ने धमकाया था कि अगर वेश्याओं को आश्रम से न निकाला जायगा तो वह चंदा देना बंद कर देंगे । तीसरे पत्र का भी यही आशय था । शेष दोनों पत्रों को विठ्ठलदास ने नहीं खोला । इन धमकियों ने उन्हें भयभीत नहीं किया, बल्कि हठ पर दृढ़ कर दिया । ये लोग समझते होंगे, मैं इनकी गीदड़ भभकियों से काँपने लगूँगा ! यह नहीं समझते कि विठ्ठलदास किसी की परवाह नहीं करता । आश्रम भले ही टूट जाय, शांता और सुमन को मैं कदापि अलग नहीं कर सकता । विठ्ठलदास के अहंकार ने उनकी सद्-बुद्धि को परास्त कर दिया । सदुत्साह और दुस्साहस दोनों का स्रोत एक ही है । भेद केवल उनके व्यवहार मे है ।

सुमन देख रही थी कि मेरे ही कारण यह भगदड़ मची हुई है । उसे दुःख हो रहा था कि मैं यहाँ क्यों आयी ? उसने कितनी श्रद्धा से इन विधवाओं की सेवा की थी, पर उसका यह फल निकला ! वह जानती थी, विठ्ठलदास कभी उसे वहाँ से न जाने देंगे, इसलिए उसने निश्चय किया कि क्यों न मैं चुपके से चली जाऊँ ? तीन स्त्रियाँ चली गयी थी, दो - तीन महिलाएँ तैयारियाँ कर रही थीं और कई अन्य देवियों ने अपने-अपने घरों पर पत्र भेजे थे । केवल वही चुपचाप बैठी थी, जिनका कही ठिकाना नहीं था । पर वह भी सुमन से मुँह चुराती फिरती थीं । सुमन यह अपमान न सह सकी । उसने शाता से सलाह की । शाता बड़ी दुविधा मे पड़ी । पद्मसिंह की आज्ञा के बिना वह आश्रम से निकलना अनुचित समझती थी । केवल यही नहीं कि आशा का एक पतला सूत उसे यहाँ बाँधे हुए था ; बल्कि इसे वह धर्म का बंधन समझती थी ; वह सोचती थी, जब मैंने अपना सर्वस्व पद्मसिंह के हाथों मे रख दिया, तब अब स्वेच्छा - पथ पर चलने का मुझे कोई अधिकार नहीं है । लेकिन जब सुमन ने निश्चित रूप से कह दिया कि तुम रहती हो तो रहो, पर मैं किसी भाँति यहाँ न रहूँगी, तो शाता को वहाँ रहना असम्भव - सा प्रतीत होने लगा । जंगल मे भटकते हुए उस मनुष्य की भाँति जो दूसरे को देख कर उसके साथ केवल इसलिए हो लेता है कि एक से दो हो जायेंगे, शाता अपनी बहिन के साथ चलने को तैयार हो गयी ।

सुमन ने पूछा — और जो पद्मसिंह नाराज हों ?

शाता — उन्हें एक पत्र द्वारा समाचार लिख दूँगी ।

सुमन — और जो सदनसिंह बिगड़े ?

शाता — जो दड देंगे सह लूँगी ।

सुमन — सब सोच लो, ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े ।

शाता — रहना तो मुझे यही चाहिए, पर तुम्हारे बिना मुझसे रहा न जायगा ।

हाँ, यह बता दो कि कहाँ चलोगी ?

सुमन — तुम्हें अमोला पहुँचा दूँगी ।

शाता — और तुम ?

सुमन — मेरे नारायण मानिक है । कहीं तीर्थ यात्रा करने चली जाऊँगी ।

दोनों बहनों में बहुत देर तक बातें हुई । फिर दोनों मिल कर रोयीं । ज्यो ही आज आठ बजे और विट्ठलदास भोजन करने के लिए अपने घर गये, दोनों बहनों सबकी आँख बचा कर चल खड़ी हुई ।

रात - भर किसी को खबर न हुई । सबेरे चौकीदार ने आ कर विट्ठलदास से यह समाचार कहा । वह घबराये और लपके हुए सुमन के कमरे में गये । सब चीजे पड़ी हुई थीं, केवल दोनों बहनों का पता न था । बेचारे बड़ी चिंता में पड़े । पद्मसिंह को कैसे मुँह दिखाऊँगा ? उन्हें उस समय सुमन पर क्रोध आया । यह सब उसी की करतूत है, वही शाता को बहका कर ले गयी है । एकाएक उन्हें सुमन की चारपाई पर एक पत्र पड़ा हुआ दिखायी दिया । लपक कर उठा लिया और पढ़ने लगे । यह पत्र सुमन ने चलते समय लिख कर रख दिया था । इसे पढ़ कर विट्ठलदास को कुछ धैर्य हुआ । लेकिन इसके साथ ही उन्हें यह दुःख हुआ कि सुमन के कारण मुझे नीचा देखना पड़ेगा । उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मैं अपने धमकी देनेवालों को नीचा दिखाऊँगा ; पर यह अवसर उनके हाथ से निकल गया । अब लोग यही समझेंगे कि मैं डर गया । यह सोच कर उन्हें बहुत दुःख हुआ ।

आखिर वह कमरे से निकले । दरवाजे बंद कराये और सीधे पद्मसिंह के घर पहुँचे ।

शर्मा जी ने यह समाचार सुना तो सन्नाटे में आ गये । बोले, अब क्या होगा ?

विट्ठल — वे अमोला पहुँच गयी होगी ।

शर्मा — हाँ, सम्भव है ।

विट्ठल — सुमन इतनी दूर सफर तो मजे में कर सकती है ।

शर्मा — हाँ ऐसी नासमझ तो नहीं है ।

विट्ठल — सुमन तो अमोला गयी न होगी ।

शर्मा — कौन जाने, दोनों कही डूब मरी हों ।

विट्ठल — एक तार भेज कर पूछ क्यों न लीजिए ।

शर्मा — कौन मुँह ले कर पूछूँ ? जब मुझसे इतना भी न हो सका कि शांता की रक्षा करता, तो अब उसके विषय में कुछ पूछ - ताछ करना मेरे लिए लज्जाजनक है । मुझे आपके ऊपर विश्वास था । अगर जानता कि आप ऐसी लापरवाही करेंगे तो उसे मैंने अपने ही घर में रखा होता ।

विट्ठल — आप तो ऐसी बातें कर रहे हैं, मानो मैंने जान - बूझ कर उन्हें

निकाल दिया हो ।

शर्मा — आप उन्हें तसल्ली देते रहते तो वह कभी न जातीं । आपने मुझसे भी अब कहा है, जब अवसर हाथ से निकल गया ।

विठ्ठल — आप सारी जिम्मेदारी मुझी पर डालना चाहते हैं ।

पद्म — और किस पर डालूं ? आश्रम के संरक्षक आप ही है या कोई और ?

विठ्ठल — शांता को वहाँ रहते तीन महीने से अधिक हो गये, आप कभी भूल कर भी आश्रम की ओर गये ? अगर आप कभी भी वहाँ जा कर उसका कुशल समाचार पूछते रहते तो उसे धैर्य रहता । जब आपने उसकी कभी बात तक न पूछी तो वह किस आधार पर वहाँ पड़ी रहती ? मैं अपने दायित्व को स्वीकार करता हूँ, पर आप भी दोष से नहीं बच सकते ।

पद्मसिंह आजकल विठ्ठलदास से चिढ़े हुए थे । उन्होंने उन्हीं के अनुरोध से वेश्या सुधार के काम में हाथ डाला था, पर अतः जब काम करने का अवसर पड़ा तो वह साफ निकल गये । उधर विठ्ठलदास भी वेश्याओं के प्रति उनकी सहानुभूति देख कर उन्हें संदिग्ध दृष्टि से देखते थे । वह इस समय अपने-अपने हृदय की बात न कह कर एक दूसरे पर दोषारोपण करने की चेष्टा कर रहे थे । पद्मसिंह उन्हें खूब आड़े हाथों लेना चाहते थे, पर यह प्रत्युत्तर पा कर उन्हें चुप हो जाना पड़ा । बोले — हाँ, इतना दोष मेरा अवश्य है ।

विठ्ठल — नहीं, आपको दोष देना मेरा आशय नहीं है । दोष सब मेरा ही है । आपने जब उन्हें मेरे सुपुर्द कर दिया तो आपका निश्चित हो जाना स्वाभाविक ही था ।

शर्मा — नहीं, वास्तव में यह सब मेरी कायरता और आलस्य का फल है । आप उन्हें जबर्दस्ती नहीं रोक सकते थे ।

पद्मसिंह ने अपना दोष स्वीकार करके बाजी पलट दी थी । हम आप झुका कर दूसरे को झुका सकते हैं, पर तन कर किसी को झुकाना कठिन है ।

विठ्ठल — शायद सदनसिंह को कुछ मालूम हो । जरा उन्हें बुलाइए ।

शर्मा — वह तो रात से ही गायब है । उसने गंगा के किनारे एक झोपड़ा बनवा लिया है, कई मल्लाह लगा लिये हैं और एक नाव चलाता है, शायद रात वहीं रह गया ।

विठ्ठल — संभव है, दोनों बहने वहीं पहुँच गयी हों, कहिए तो जाऊँ ?

शर्मा — अजी नहीं, आप किस भ्रम में हैं ? वह इतना लिबरल नहीं है । उनके साथे से भागता है ।

अकस्मात् सदन ने उनके कमरे में प्रवेश किया । पद्मसिंह ने पूछा, तुम रात कहाँ रह गये ? सारी रात तुम्हारी राह देखी ।

सदनसिंह ने धरती की ओर ताकते हुए कहा, मैं स्वयं लज्जित हूँ। ऐसा काम पड़ गया कि मुझे विवश हो कर रुकना पड़ा। इतना समय भी न मिला कि आ कर कह जाता। मैंने आपसे शर्म के मारे कभी चर्चा नहीं की लेकिन इधर कई महीने से मैंने एक नाव चलाना शुरू किया है। वही नदी के किनारे एक झोपड़ा बनवा लिया है। मेरा विचार है कि इस काम को जम कर करूँ, इसलिए आपसे उस झोपड़े में रहने की आज्ञा चाहता हूँ।

शर्मा — इसकी चर्चा तो लाला भगतराम ने एक बार मुझसे की, लेकिन खेद यह है कि तुमने अब तक मुझसे इसे छिपाया; नही तो मैं भी कुछ सहायता करता। खैर, मैं इसे बुरा नहीं समझता, बल्कि तुम्हें इस अवस्था में देख कर मुझे बड़ा आनंद हो रहा है। लेकिन मैं यह कभी न मानूँगा कि तुम अपना घर रहते हुए अपनी हाँड़ी अलग चढ़ाओ। क्या एक नाव का और प्रबंध हो तो अधिक लाभ हो सकता है ?

सदन — जो हाँ, मैं स्वयं इसी फ़िक्र में हूँ। लेकिन इसके लिए मेरा घाट पर रहना जरूरी है।

शर्मा — भाई, यह शर्तें तुम बुरी लगाते हो। शहर में रह कर तुम मुझसे अलग रहो, यह मुझे पसंद नहीं। इसमें चाहे तुम्हें कुछ हानि भी हो, लेकिन मैं न मानूँगा।

सदन — नहीं चाचा, आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए; मैं बहुत मजबूर हो कर आपसे यह कह रहा हूँ।

शर्मा — ऐसी क्या बात है जो तुम्हें मजबूर करती है ? तुम्हें जो संकोच हो वह साफ - साफ क्यों नहीं कहते ?

सदन — मेरे इस घर में रहने से आपकी बदनामी होगी। मैंने अब अपने उस कर्तव्य के पालन करने का संकल्प कर लिया है, जिसे मैं कुछ दिनों तक अपने अज्ञान और कुछ समय तक अपनी कायरता और निंदा के भय से टालता आता था। मैं आपका लड़का हूँ। जब मुझे कोई कष्ट होगा, आपका आश्रय लूँगा, कोई जरूरत पड़ेगी तो आपको सुनाऊँगा, लेकिन रहूँगा अलग और मुझे विश्वास है कि आप मेरे प्रस्ताव को पसंद करेंगे।

विठ्ठलदास बात की तह तक पहुँच गये। पूछा, कल सुमन और शांता से तुम्हारी मुलाकात नहीं हुई ?

सदन के चेहरे पर लज्जा की लालिमा छा गयी, जैसे किसी रमणी के मुख पर से घूँघट हट जाय। दबी जवान से बोना, जी हाँ।

पद्मसिंह बड़े धर्म - संकट में पड़े। न 'हाँ' कह सकते थे, न 'नहीं' कहते बनता था। अब तक वह शांता के संबंध में अपने को निर्दोष समझते थे। उन्होंने इस

अन्याय का सारा भार अपने भाई के सिर डाल दिया था और सदन तो उनके विचार में काठ का पुतला था। लेकिन अब इस जाल में फँसकर वह भाग निकलने की चेष्टा करते थे। संसार का भय तो उन्हें नहीं था, भय था कि कहीं भैया यह न समझ लें कि यह सब मेरे सहारे से हुआ है, मैंने ही सदन को बिगाड़ा है। कहीं यह संदेह उनके मन में उत्पन्न हो गया तो फिर वह कभी मुझे क्षमा न करेंगे।

पच्चासिह कई मिनट तक इस उलझन में पड़े रहे। अंत में वह बोले, सदन यह समस्या इतनी कठिन है कि मैं अपने भरोसे पर कुछ नहीं कर सकता। भैया की राय लिये बिना 'हाँ' या 'नहीं' कैसे कहूँ? तुम मेरे सिद्धांत को जानते हो। मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ और प्रसन्न हूँ कि ईश्वर ने तुम्हें सद्बुद्धि दी। लेकिन मैं भाई साहब की इच्छा को सर्वोपरि समझता हूँ। यह हो सकता है कि दोनों बहनों के अलग रहने का प्रबंध कर दिया जाय जिससे उन्हें कोई कष्ट न हो। बस यहीं तक। इसके आगे मेरी कुछ सामर्थ्य नहीं है। भाई साहब की जो इच्छा हो वही करो।

सदन — क्या आपको मालूम नहीं कि वह क्या उत्तर देगे ?

पद्म — हाँ, यह भी मालूम है।

सदन — तो उनसे पूछना व्यर्थ है। माता - पिता की आज्ञा से मैं अपनी जान दे सकता हूँ, जो उन्हीं की दी हुई है, लेकिन किसी निरपराध की गर्दन पर तलवार नहीं चला सकता।

पद्म — तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है, कि दोनों बहनें एक अलग मकान में ठहरा दी जायें।

सदन ने गर्म हो कर कहा, ऐसा तो मैं तब करूँगा, जब मुझे छिपाना हो। मैं कोई पाप करने नहीं जा रहा हूँ, जो उसे छिपाऊँ। वह मेरे जीवन का परम कर्तव्य है, उसे गुप्त रखने की आवश्यकता नहीं है। अब तक विवाह के जो संस्कार नहीं पूरे हुए हैं कल गंगा के किनारे पूरे किये जायेंगे। यदि आप वहाँ आने की कृपा करेंगे तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा, नहीं तो ईश्वर के दरबार में गवाहों के बिना भी प्रतिज्ञा हो जाती है।

यह कहता हुआ सदन उठा और घर में चला गया। सुभद्रा ने कहा, वाह खूब गायब होते हो, सारी रात जी लगा रहा। कहाँ रह गये थे ?

सदन ने रात का वृत्तांत चाची से कहा। चाची से बातचीत करने में उसे वह झिझक न होती थी जो शर्मा जी से होती थी। सुभद्रा ने उसके साहस की बड़ी प्रशंसा की। बोली, माँ - बाप के डर से कोई अपनी व्याहता को थोड़े ही छोड़ देता है। दुनिया हँसेगी तो हँसा करे। उसके डर से अपने घर के प्राणी की जान ले लें ? तुम्हारी अम्मा से डरती हूँ, नहीं तो उसे यहीं रखती।

सदन ने कहा, मुझे अम्मा - दादा की परवाह नहीं है।

सुभद्रा — बहुत परवाह तो की । इतने दिनों तक बेचारी को घुला घुला के मार डाला । कोई दूसरा लड़का होता तो पहले दिन ही फटकार देता । तुम्हीं हो कि इतना सहते हो ।

सुभद्रा, यही बातें यदि तुमने पवित्र भाव से कही होनीं तो हम तुम्हारा कितना आदर करते ! किंतु तुम इस समय ईर्ष्या - द्वेष के वश में हो, तुम सदन को उभार कर अपनी जेठानी को नीचा दिखाना चाहती हो, तुम एक माता के पवित्र हृदय पर आघात करके उसका आनंद उठा रही हो ।

सदन के चले जाने पर विट्ठलदास ने पद्मसिंह से कहा, यह तो आपके मन की बात हुई । आप इतना आगा - पीछा क्यों करते है ? शर्मा जी ने उत्तर नहीं दिया ।

विट्ठलदास फिर बोले, यह प्रस्ताव आपको स्वयं करना चाहिए था, लेकिन आप अब उसे स्वीकार करने में भी इतना संकोच कर रहे है ।

शर्मा जी ने इसका भी उत्तर नहीं दिया ।

विट्ठलदास — अगर वह अपनी स्त्री के साथ अलग रहे तो क्या हानि है ? आप न अपने साथ रखेंगे, न अलग रहने देंगे, यह कौन - सी नीति है ?

पद्मसिंह ने व्यंग के भाव से कहा, भाई साहब, जब अपने ऊपर पड़ती है तभी आदमी जानता है । जैसे मुझे आप राह दिखा रहे है, इसी प्रकार मैं भी दूसरों को राह दिखाता रहता हूँ । आप ही कभी वेश्याओं का उद्धार करने के लिए कैसी लम्बी - चौड़ी बातें करते थे, लेकिन जब काम करने का समय आया तो कभी काट गये । इसी तरह दूसरों को भी समझ लीजिए । मैं सब कुछ कर सकता हूँ, पर अपने भाई को नाराज नहीं कर सकता । मुझे कोई सिद्धांत इतना प्यारा नहीं है जो मैं उनकी इच्छा पर न्यौछावर न कर सकूँ ।

विट्ठल — मैंने आपसे यह कभी नहीं कहा कि जन्म की वेश्याओं को देवियाँ बना दूँगा । क्या आप समझते है कि उस स्त्री में जो अपने घरवालों के अन्याय या दुर्जनों के बहकाने से पतित हो जाती है और जन्म की वेश्याओं में कोई अंतर नहीं है ? मेरे विचार में इनमें इतना ही अंतर है जितना साध्य और असाध्य रोग में है । जो आग अभी लगी है और अदर तक नहीं पहुँचने पायी उसे आप शांत कर सकते है, लेकिन ज्वालामुखी पर्वत को शांत करने की चेष्टा पागल करे तो करे, बुद्धिमान कभी नहीं कर सकता ।

शर्मा — कम - से - कम आपको मेरी सहायता तो करनी चाहिए थी । आप अगर एक घंटे के लिए मेरे साथ दालमंडी चलें तो आपको मालूम हो जायगा कि जिसे आप ज्वालामुखी पर्वत समझ बैठे है वह केवल बुझी हुई आग का ढेर है । अच्छे और बुरे आदमी सब जगह होते है । वेश्याएँ भी इस नियम से बाहर नहीं

हैं। आपको यह देख कर आश्चर्य होगा कि उनमें कितनी धार्मिक श्रद्धा, पाप जीवन से कितनी घृणा, अपने जीवनोद्धार की कितनी अभिलाषा है। मुझे स्वयं इस पर आश्चर्य होता है। उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है जिसे पकड़ कर वह बाहर निकल आयें। पहले तो वह मुझसे बात तक न करती थीं, लेकिन जब मैंने उन्हें समझाया कि मैंने वह प्रस्ताव तुम्हारे उपकार के लिए किया है जिससे तुम दुराचारियों, दुष्टों तथा कुमार्गियों की पहुँच से बाहर रह सको, तो उन्हें मुझ पर कुछ-कुछ विश्वास होने लगा। नाम तो न बताऊँगा लेकिन कई धनी वेश्याएँ धन से मेरी सहायता करने को तैयार हैं। कई अपनी लड़कियों का विवाह करना चाहती हैं। लेकिन अभी उन औरतों की संख्या बहुत है जो भोग-विलास के इस जीवन को छोड़ना नहीं चाहती हैं। मुझे आशा है कि स्वामी गजानंद के उपदेश का कुछ-न-कुछ फल अवश्य होगा। खेद यही है कि कोई मेरी सहायता करनेवाला नहीं है। हाँ, मजाक उड़ानेवाले ढेरों पड़े हैं। इस समय एक ऐसे अनाथालय की आवश्यकता है, जहाँ वेश्याओं की लड़कियाँ रखी जा सकें और उनकी शिक्षा का उत्तम प्रबंध हो। पर मेरी कौन सुनता है?

विठ्ठलदास ने ये बातें बड़े ध्यान से सुनीं। पद्मसिंह ने जो कुछ कहा था, वह उनका अनुभव था, और अनुभवपूर्ण बातें सदैव विश्वासोत्पादक हुआ करती हैं। विठ्ठलदास को ज्ञात होने लगा कि मैं जिस कार्य को असाध्य समझता था वह वास्तव में ऐसा नहीं है। बोले, अनिरुद्धसिंह से आपने इस विषय में कुछ नहीं कहा?

शर्मा — वहाँ लच्छेदार बातों और तीव्र समालोचनाओं के सिवा और क्या रखा है?

२६

सदनसिंह का विवाह संस्कार हो गया। झोपड़ा खूब सजाया गया था। वही मंडप का काम दे रहा था, लेकिन कोई भीड़-भाड़ न थी।

पद्मसिंह उसी दिन घर चले गये और मदनसिंह से सब समाचार कहा। वह यह सुनते ही आग हो गये, बोले, मैं उस छोकरे का सिर काट लूँगा, वह अपने को समझता क्या है? भामा ने कहा, मैं आज ही जाती हूँ, उसे समझा कर अपने साथ लिवा लाऊँगी। अभी नादान लड़का है। उस कुटनी सुमन की बातों में आ गया है। मेरा कहना वह कभी न टालेगा।

लेकिन मदनसिंह ने भामा को डाँटा और धमका कर कहा, अगर तुमने उधर जाने का नाम लिया तो मैं अपना और तुम्हारा गला एक साथ ही घोट दूँगा। वह

आग में कूदता है कूदने दो । ऐसा दूध पीता नादान बच्चा नहीं । यह सब उसकी जिद है । बच्चू को भीख मँगा कर न छोड़ूँ तो कहना । सोचते होंगे, दादा मर जायँगे तो आनंद करूँगा । मुँह धो रखे, यह कोई मौलसी जायदाद नहीं है । यह मेरी अपनी कमाई है । सब - की - सब कृष्णापण कर दूँगा । एक फूटी कौड़ी तो मिलेगी नहीं ।

गाँव में चारों ओर बतकहाव होने लगा । लाला बेजनाथ को निश्चय हो गया कि संसार से धर्म उठ गया । जब लोग ऐसे - ऐसे नीच कर्म करने लगे तो धर्म कहाँ रहा ? न हुई नवाबी, नहीं तो आज बच्चू की धज्जियाँ उड़ जाती । अब देखें कौन मुँह ले कर गाँव में आते है ।

पद्मसिंह रात को बहुत देर तक भाई के साथ बैठे रहे, लेकिन ज्यों ही वह सदन का कुछ जिक्र छेड़ते, मदनसिंह उनकी ओर ऐसी आग्नेय दृष्टि से देखते कि उन्हें बोलने की हिम्मत न पड़ती । अंत में जब वह सोने चले तो पद्मसिंह ने हताश हो कर कहा, भैया सदन आपसे अलग रहे तब भी आपका लड़का ही कहलायेगा । वह जो कुछ नेक - बद करेगा उसकी बदनामी हम सब पर आयेगी । जो लोग इस अवस्था को भली - भाँति जानने है, वह चाहे हम लोगों को निर्दोष समझे, लेकिन जनता सदन में और हममें कोई भेद नहीं कर सकती । तो इससे क्या फायदा कि माँप भी न मरे और लाठी भी टूट जाय । एक ओर दो बुराइयाँ हैं, बदनामी भी होती है और लड़का भी हाथ से जाता है । दूसरी ओर एक ही बुराई है, बदनामी होगी लेकिन लड़का अपने हाथ में रहेगा । इसलिए मुझे तो यही उचित जान पड़ता है कि हम लोग सदन को समझावें और यदि वह किसी तरह न माने तो.....

मदनसिंह ने बात काट कर कहा, तो उस चुड़ैल से उसका विवाह ठान दें ? क्यों यही न कहना चाहते हो ? यह मुझसे न होगा । एक बार नहीं, हजार बार नहीं ।

यह कह कर वह चुप हो गये । एक क्षण के बाद पद्मसिंह को लाछित करके बोले, आश्चर्य यह है कि यह सब कुछ तुम्हारे सामने हुआ और तुम्हें जरा भी खबर न हुई । उसने नाव ली, झोपड़ा बनाया, दोनों चुड़ैलो से साँठ - गाँठ की और तुम आँखें बंद किये बैठे रहे । मैंने तो उसे तुम्हारे ही भरोसे भेजा था । यह क्या जानता था कि तुम कान में तेल डाले बैठे रहते हो । अगर तुमने जरा भी चतुराई से काम लिया होता तो यह नौबत न आती । तुमने इन बातों की सूचना तक मुझे न दी, नहीं तो मैं स्वयं जा कर उसे किसी उपाय से बचा लाता । अब जब सारी गोटियाँ पिट गयी, सारा खेल बिगड़ गया तो चले हो वहाँ से मुझसे सलाह लेने । मैं साफ - साफ कहता हूँ कि तुम्हारी आनाकानी से मुझे तुम्हारे ऊपर भी संदेह होता है । तुमने जान - बूझ कर उसे आग में गिरने दिया । मैंने तुम्हारे साथ बहुत बुरा -

इयाँ की थी, उनका तुमने बदला लिया । खैर, कल प्रातःकाल एक दान - पत्र लिख दो । तीन पाई जो मौरूसी जमीन है उसे छोड़ कर मैं अपनी सब जायदाद कृष्णार्पण करता हूँ । यहाँ न लिख सको तो वहाँ से लिख कर भेज देना । मैं दस्तखत कर दूँगा और उसकी रजिस्ट्री हो जायगी ।

यह कह कर मदनसिंह सोने चले गये । लेकिन पद्मसिंह के मर्म - स्थान पर ऐसा वार कर गये कि वह रात - भर तड़पते रहे । जिस अपराध से बचने के लिए उन्होंने अपने सिद्धांतों की भी परवाह न की और अपने सहवर्गियों में बदनाम हुए, वह अपराध लग ही गया । इतना ही नहीं, भाई के हृदय में उनकी ओर से मैल पड़ गयी । अब उन्हें अपनी भूल दिखायी दे रही थी । निःसंदेह अगर उन्होंने बुद्धिमानी से काम लिया होता तो यह नौबत न आती । लेकिन इस वेदना में इस विचार से कुछ सतोष होता था कि जो कुछ हुआ सो हुआ एक अबला का उद्धार तो हो गया ।

प्रातःकाल जब वह घर से चलने लगे तो भामा रोती हुई आयी और बोली, भैया, इनका हठ तो देख रहे हो, लड़के की जान ही लेने पर उतारू है, लेकिन तुम जरा सोच समझ कर काम करना । भूल - चूक तो बड़े - बड़ों से हो जाती है, वह बेचारा तो अभी नादान लड़का है । तुम उसकी ओर से मन न मोड़ा करना । उसे किसी की टेढ़ी निगाह भी सहन नहीं है । ऐसा न हो, कहीं देश - विदेश की राह ले तो मैं कहीं की न रहूँ । उसकी सुध लेते रहना । खाने - पीने की तकलीफ न होने पाये । यहाँ रहता था तो एक भैंस का दूध पी जाता था । उसे दाल में घी अच्छा नहीं लगता; लेकिन मैं उससे छिपा कर लोदे - के - लोंदे दाल में डाल देती थी । अब इतना सेवा - जतन कौन करेगा ? न जाने बेचारा कैसे होगा ? यहाँ घर पर कोई खाने वाला नहीं, वहाँ वह इन्हीं चीजों के लिए तरसता होगा । क्यों भैया, क्या अपने हाथ से नाव चलाता है ?

पद्म — नहीं, दो मल्लाह रख लिये हैं ।

भामा — तब भी दिन - भर दौड़ - धूप तो करनी ही पड़ती होगी । मजूर बिना देखे - भाले थोड़े ही काम करते हैं । मेरा तो यहाँ कुछ बस नहीं है, उसे तुम्हें सौपती हूँ । उसे अनाथ समझ कर खोज - खबर लेते रहना ! मेरा रोआँ - रोआँ तुम्हें आशीर्वाद देगा । अबकी कार्तिक - स्नान में मैं उसे जरूर से देखने जाऊँगी । कह देना, तुम्हारी अम्मा तुम्हें बहुत याद करती थीं, बहुत रोती थीं । यह सुन कर उसे ढाढ़स हो जायगा । उसका जी बड़ा कच्चा है । मुझे याद करके रोज रोता होगा । यह थोड़े - से रुपये हैं ; लेते जाओ, उसके पास भिजवा देना ।

पद्म — इसकी क्या जरूरत है ? मैं तो वहाँ हूँ ही, मेरे देखते उसे किसी बात की तकलीफ न होने पायेगी ।

भामा — नहीं भैया, लेते जाओ, क्या हुआ ? इस हाँडी में थोड़ा - सा घी है, यह भी भेजवा देना । बाजारू घी घर के घी को कहाँ पाता है, न वह सुगंध, न वह स्वाद । उसे अमावट की चटनी अहुत अच्छी लगती है, मैं थोड़ी - सी अमावट भी रखे देती हूँ । मीठे - मीठे आम चुन कर रस निकाला था । समझा कर कह देना, वेटा, कोई चिंता मत करो । जब तक तुम्हारी माँ जीती है, तुमको कोई कष्ट न होने पायेगा । मेरे तो वही एक अघे की लकड़ी है । अच्छा है तो बुरा है तो, अपना ही है । संसार की लाज से आँखों से चाहे दूर कर दूँ, लेकिन मन से थोड़े ही दूर कर सकती हूँ ।

२७

जैसे सुंदर भाव के समावेश से कविता में जान पड़ जाती है और सुंदर रंगों से चित्र में, उसी प्रकार दोनों बहनों के आने से झोपड़ी में जान आ गयी है । अंधी आँखों में पुतलियाँ पड़ गयी हैं ।

मुरझायी हुई कली शांता अब खिल कर अनुपम शोभा दिखा रही है । सूखी हुई नदी उमड़ पड़ी है । जैसे जेठ - बैसाख की तपन की मारी हुई गाय सायन में निखर जाती है और खेतों में किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार विरह की सतायी हुई रमणी अब निखर गयी है, प्रेम में मग्न है ।

नित्यप्रति प्रातःकाल इस झोपड़े से दो तारे निकलते हैं और जा कर गंगा में डूब जाते हैं । उनमें से एक बहुत दिव्य और द्रुतगामी है, दूसरा मध्यम और मन्द । एक नदी में थिरकता है, नाचता है, दूसरा अपने वृत्त से बाहर नहीं निकलता । प्रभात की सुनहरी किरणों में इन तारों का प्रकाश मंद नहीं होता, वे और भी जगमगा उठते हैं ।

शांता गाती है, सुमन खाना पकाती है । शांता अपने केशों को सँवारती है, सुमन कपड़े सीती है । शांता भूखे मनुष्य के समान भोजन के थाल पर टूट पड़ती है, सुमन किसी रोगी के सदृश सोचती है कि मैं अच्छी हूँगी या नहीं ।

सदन के स्वभाव में भी अब कायापलट हो गया है । वह प्रेम का आनंदभोग करने में तन्मय हो रहा है । वह अब दिन चढ़े उठता है, घंटों नहाता है, बाल सँवारता है, कपड़े बदलता है, सुगंध मलता है । नौ बजे से पहले वह अपनी बैठक में नहीं आता और आता भी है तो जम कर बैठता नहीं, उसका मन कहीं और रहता है । एक - एक पल में भीतर जाता है और अगर बाहर किसी से बात करने में देर हो जाती है, तो उकताने लगता है । शांता ने उसपर वशीकरण मंत्र डाल

दिया है ।

सुमन घर का सारा काम भी करती है और बाहर का भी । वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान-पूजा के बाद सदन के लिए जलपान बनाती है । फिर नदी के किनारे आ कर नाव खुलवाती है । नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है । ग्यारह बजे तक यहाँ से छुट्टी पा कर वह कोई-न-कोई काम करने लगती है । नौ बजे रात को जब लोग सोने चले जाते हैं, तो वह पढ़ने बैठ जाती है, तुलसी की विनय - पत्रिका और रामायण से उसे बहुत प्रेम है । कभी भक्तमाल पढ़ती है, कभी विवेकानंद के व्याख्यान और कभी रामतीर्थ के लेख । वह विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित्रों को बड़े चाव से पढ़ती है । मीरा पर उसे असीम श्रद्धा है । वह बहुधा धार्मिक ग्रंथ ही पढ़ती है लेकिन ज्ञान की अपेक्षा भक्ति में उसे अधिक शांति मिलती है ।

मल्लाहों की स्त्रियों में उसका बड़ा आदर है, वह उनके झगड़े चुकाती है, किसी के बच्चे के लिए कुर्ता टोपी सीती है, किसी के लिए अंजन या घुट्टी बनाती है । उनमें कोई बीमार पड़ता है तो उसके घर जाती है और दवा - दारू की फिक्र करती है । वह अपनी गिरी दीवाल को उठा रही है । उस बस्ती के सभी नर - नारी उसकी प्रशंसा करते हैं और उसका यश गाते हैं । हाँ अगर आदर नहीं है तो अपने घर में । सुमन इस तरह जो तोड़ कर घर का सारा बोझ सँभाले हुए है, लेकिन सदन के मुँह से कृतज्ञता का एक शब्द भी नहीं निकलता । शांता भी उसके इस परिश्रम का कुछ मूल्य नहीं समझती । दोनों के - दोनों उसकी ओर से निश्चित है, मानों वह घर की लौड़ी है और चक्की में जुते रहना ही उसका धर्म है ! कभी - कभी उसके सिर में दर्द होने लगता है, कभी दौड़-धूप से बुखार चढ़ आता है, तब भी वह घर का सारा काम रीत्यानुसार करती रहती है । वह भी कभी-कभी एकांत में अपनी इस दीन दशा पर घंटों रोती रहती है, पर कोई ढाढस देनेवाला, कोई आँसू पोछने-वाला नहीं ।

सुमन स्वभाव से ही मानिनी, सगर्वा स्त्री थी । वह जहाँ कहीं रही थी रानी बन कर रही थी । अपने पति के घर वह सब कष्ट झेल कर भी रानी थी । विलास नगर में वह जब तक रही उसी का सिक्का चलता रहा । आश्रम में वह सेवा-धर्म पालन करके सर्वमान्य बनी हुई थी । इसलिए अब यहाँ इस हीनावस्था में रहना उसे असह्य था । अगर सदन कभी-कभी उसकी प्रशंसा कर दिया करता, कभी उससे सलाह लिया करता, उसे अपने घर की स्वामिनी समझा करता या शांता उसके पास बैठ कर उसकी हाँ - में हाँ मिलाती, उसका मन बहलाती तो सुमन इससे भी अधिक परिश्रम करती और प्रसन्न-चित्त रहती । लेकिन उन दोनों प्रेमियों को अपनी तरंग में और कुछ न सूझता था । निशाना मारते समय दृष्टि केवल एक ही वस्तु पर रहती है । प्रेमासक्त मनुष्य का भी यही हाल होता है ।

लेकिन शाता और सदन की यह उदासीनता प्रेम-लिप्सा के ही कारण थी, इसमें संदेह है। सदन इस प्रकार सुमन से बचता था, जैसे हम कुष्ठ-रोगी से बचते हैं, उस पर दया करते हुए भी उसके समीप जाने की हिम्मत नहीं रखते। शाता उसपर अविश्वास करती थी, उसके रूप लावण्य से डरती थी। कुशल यही थी कि सदन स्वयं सुमन से आँखें चुराता था, नहीं तो शाता इससे जल ही जाती। अतएव दोनों चाहते थे कि यह आस्तीन का साँप आँखों से दूर हो जाय, लेकिन सकोचवश वह आपस में भी इस विषय को छेड़ने से डरते थे।

सुमन पर यह रहस्य शनैः - शनैः खुलता जाता था।

एक बार जीतन कहार शर्मा जी के यहाँ से सदन के लिए कुछ सौगात लाया था। इसके पहले भी वह कई बार आया था, लेकिन उसे देखते ही सुमन छिप जाया करती थी। अब की जीतन की निगाह उस पर पड़ गयी। फिर क्या था, उसके पेट में चूहे दौड़ने लगे। वह पत्थर खा कर पचा सकता था, पर कोई बात पचाने की शक्ति उसमें न थी। मल्लाहों के चौधरी के पास चिलम पीने के बहाने गया और सारी रामकहानी सुना आया। अरे ! यह तो कस्बीन है, खसम ने घर से निकाल दिया तो हमारे यहाँ खाना पकाने लगी, वहाँ से निकाली गयी तो चौक में हरजाई-पन करने लगी, अब देखता हूँ तो यहाँ विराजमान है। चौधरी सत्ताटे में आ गया, मल्लाहिनों में भी इशारे - बाजियाँ होने लगीं। उस दिन से कोई मल्लाह सदन के घर का पानी न पीता, उनकी स्त्रियों ने सुमन के पास आना - जाना छोड़ दिया। इसी तरह एक बार लाला भगतराम इंटों की लदाई का हिसाब करने आये। प्यास मालूम हुई तो मल्लाह से पानी लाने को कहा। मल्लाह कुँए से पानी लाया। सदन के घर में बैठे हुए बाहर से पानी मँगा कर पीना सदन की छाती में छुरी मारने से कम न था।

अतः दूसरा साल जाते - जाते यहाँ तक नौबत पहुँची कि सदन जरा - जरा - सी बात पर सुमन से झूझला जाता और चाहे कोई लागू बात न कहे, पर उसके मन के भाव झलक ही पड़ते थे।

सुमन को मालूम हो रहा था कि अब मेरा निर्वाह यहाँ न होगा। उसने समझा था कि यहाँ बहन - बहनोई के साथ जीवन समाप्त हो जायगा। उनकी सेवा करूँगी, एक टुकड़ा खाऊँगी और एक कोने में पड़ी रहूँगी। इसके अतिरिक्त जीवन में अब उसे कोई लालसा नहीं थी, लेकिन हा शोक ! यह तबूता भी उसके पैरों के नीचे से सरक गया और अब वह निर्दयी लहरो की गोद में थी।

लेकिन सुमन को अपनी परिस्थिति पर दुःख चाहे कितना ही हुआ हो, उसे सदन या शाता से कोई शिकायत न थी। कुछ तो धार्मिक प्रेम और कुछ अपनी अवस्था के वास्तविक ज्ञान ने उसे अत्यंत नम्र, विनीत बना दिया था। वह बहुत

सोचती कि वहाँ जाऊँ जहाँ अपनी जान - पहचान का कोई आदमी न हो, लेकिन उसे ऐसा कोई ठिकाना न दिखायी देता। अभी तक उसकी निर्बल आत्मा कोई अवलम्ब चाहती थी। बिना किसी सहारे के ससार में रहने का विचार करके उसका कलेजा काँपने लगता था। वह अकेली, असहाय, संसार - संग्राम में आने का साहस न कर सकती थी। जिस संग्राम में बड़े - बड़े कुशल, धर्मशील, दृढ़ संकल्प मनुष्य मुँह की खाते हैं, वहाँ मेरी क्या गति होगी ? कौन मेरी रक्षा करेगा ? कौन मुझे संभालेगा ? निरा - दार होने पर भी यह शंका उसे यहाँ से निकलने न देती थी।

एक दिन सदन दस बजे कहीं से घूम कर आया और बोला, भोजन में अभी कितनी देर है, जल्दी करो। मुझे पंडित उमानाथ से मिलने जाना है, चाचा के यहाँ आये हुए हैं।

शांता ने पूछा, वह यहाँ कैसे आये ?

सदन — अब यह मुझे क्या मालूम ? अभी जीतन आ कर कह गया है कि वह आये हुए हैं और आज ही चले जायँगे। यहाँ आना चाहते थे, लेकिन (सुमन की ओर इशारा करके) किसी कारण से नहीं आये।

शांता — तो जरा बैठ जाओ; यहाँ अभी एक घंटे की देर है।

सुमन ने झुंझला कर कहा, देर क्या है सब कुछ तो तैयार है। आसन बिछा दो, पानी रख दो, मैं थाली परसती हूँ।

शांता — अरे, तो जरा ठहर ही जायँगे तो क्या होगा ? कोई डाकगाड़ी छूटी जाती है ? कच्चा - पक्का खाने का क्या काम ?

सदन — मेरी समझ में नहीं आता कि दिन - भर क्या होता रहता है ? जरा सा भोजन बनाने में इतनी देर हो जाती है।

सदन जब भोजन करके चला गया, तब सुमन ने शांता से पूछा, क्यों शांता सच बता, तुझे मेरा यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता ? तेरे मन में जो कुछ है वह मैं जानती हूँ, लेकिन तू जब तक अपने मुँह से मुझे दुत्कार न देगी, मैं जाने का नाम न लूँगी। मेरे लिए कहीं ठिकाना नहीं है।

शांता — बहन, कैसी बात कहती हो, तुम रहती हो तो घर संभला हुआ है, नहीं तो मेरे किये क्या होता ?

सुमन — यह मुँह देखी बातें मत करो, मैं ऐसी नादान नहीं हूँ। मैं तुम दोनों आदमियों को अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ पाती हूँ।

शांता — तुम्हारी आँखों की क्या बात है, वह तो मन तक की बात देख लेती है।

सुमन — आँखें सीधी करके बोलो, क्या जो कुछ मैं कहती हूँ, झूठ है ?

शांता — जब तुम जानती हो तो पूछती क्यों हो ?

सुमन — इसलिए कि सब कुछ देख कर भी आँखों पर विश्वास नहीं आता । संसार मुझे चाहे कितना ही नीच समझे, मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है, वह मेरे मन का हाल नहीं जानता, लेकिन तुम सब कुछ देखते हुए भी मुझे नीच समझती हो, इसका आश्चर्य है । मैं तुम्हारे साथ लगभग दो वर्ष से हूँ, इतने दिनों में तुम्हें मेरे चरित्र का परिचय अच्छी तरह हो गया होगा ।

शांता — नहीं बहन, परमात्मा से कहती हूँ, यह बात नहीं है । हमारे ऊपर इतना बड़ा कलंक मत लगाओ । तुमने मेरे साथ जो उपकार किये हैं, वह मैं कभी न भूलूँगी । लेकिन बात यह है कि उनकी बदनामी हो रही है । लोग मनमानी बातें उड़ाया करते हैं । वह (सदनसिंह) कहते थे कि सुभद्रा जी यहाँ आने को तैयार थीं, लेकिन तुम्हारे रहने की बात सुन कर नहीं आयी और बहन, बुरा न मानना, जब संसार में यही प्रथा चल रही है तो हम लोग क्या कर सकते हैं ?

सुमन ने विवाद न किया । उसे आज्ञा मिल गयी । अब केवल एक रुकावट थी । शांता थोड़े ही दिनों में बच्चे की माँ बननेवाली थी । सुमन ने अपने मन को समझाया ; इस समय छोड़ कर जाऊँगी तो इसे कष्ट होगा । कुछ दिन और सह लूँ, जहाँ इतने दिन कटे हैं, महीने - दो - महीने और सही । मेरे ही कारण यह इस विपत्ति में फँसे हुए है । ऐसी अवस्था में इन्हें छोड़ कर जाना मेरा धर्म नहीं है ।

सुमन का यहाँ एक - एक दिन एक - एक साल की तरह कटता था, लेकिन सब्र किये पड़ी हुई थी ।

पखहीन पक्षी पिंजरबद्ध रहने में ही अपनी कुशल समझता है ।

२८

पंडित पद्मसिंह के चार - पाँच मास के सदुद्योग का यह फल हुआ कि २०-२५ वेश्याओं ने अपनी लड़कियों को अनाथालय में भेजना स्वीकार कर लिया । तीन वेश्याओं ने अपनी सारी सम्पत्ति अनाथालय के निमित्त अर्पण कर दी, पाँच वेश्याएँ निकाह करने पर राजी हो गयी । सच्ची हिताकांक्षा कभी निष्फल नहीं होती । अगर समाज को विश्वास हो जाय कि आप उसके सच्चे सेवक हैं, आप उसका उद्धार करना चाहते हैं, आप निःस्वार्थ हैं तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है । लेकिन यह विश्वास सच्चे सेवाभाव के बिना कभी प्राप्त नहीं होता । जब तक अंतःकरण दिव्य और उज्ज्वल न हो, वह प्रकाश का प्रतिबिम्ब दूसरो पर नहीं डाल सकता । पद्मसिंह में सेवाभाव का उदय हो गया था । हममें कितने ही ऐसे सज्जन हैं जिनके मस्तिष्क

मे राष्ट्र की कोई सेवा करने का विचार उत्पन्न होता है, लेकिन बहुधा वह विचार ख्यातिलाभ की आकांक्षा से प्रेरित होता है। हम वह काम करना चाहते हैं जिसमे हमारा नाम प्राणि - मात्र की जिह्वा पर हो, कोई ऐसा लेख अथवा ग्रन्थ लिखना चाहते हैं, जिसकी लोग मुक्त - कंठ से प्रशंसा करें, और प्रायः हमारे इस स्वार्थ - प्रेम का कुछ - न - कुछ बदला भी हमको मिल जाता है, लेकिन जनता के हृदय मे हम घर नहीं कर सकते। कोई मनुष्य, चाहे वह कितने ही दुःख मे हो, उस व्यक्ति के सामने अपना शोक प्रकट नहीं करना चाहता जिसे वह अपना सच्चा मित्र न सम - ज्ञता हो ?

पद्मसिंह को अब दालमंडी मे जाने का बहुत अवसर मिलता था और वह वेश्याओं के जीवन का जितना ही अनुभव करते थे उतना ही उन्हें दुःख होता था। ऐसी - ऐसी सुकोमल रमणियों को भोगविलास के लिए अपना सर्वस्व गँबाते देख कर उनका हृदय करुणा से विह्वल हो जाता था, उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ते थे। उन्हें अब ज्ञात हो रहा था कि ये स्त्रियाँ विचारशून्य नहीं, भावशून्य नहीं, बुद्धिहीन नहीं, लेकिन माया के हाथों मे पड़ कर उनकी सारी सद्बृत्तियाँ उल्टे मार्ग पर जा रही हैं, तृष्णा ने उनकी आत्माओं को निर्बल, निश्चेष्ट बना दिया है। पद्मसिंह इस मायाजाल को तोड़ना चाहते थे, वह उन भूली हुई आत्माओ को सचेत किया चाहते थे, वह उनको इस अज्ञानावस्था से मुक्त किया चाहते थे, पर माया - जाल इतना दृढ़ था और अज्ञान - बंधन इतना पुष्ट तथा निद्रा इतनी गहरी थी कि पहले छह महीनों मे उससे अधिक सफलता न हो सकी, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। शराब के नशे मे मनुष्य की जो दशा हो जाती है वही दशा इन वेश्याओं की हो गयी थी।

उधर प्रभाकरराव और उनके मित्रों ने उस प्रस्ताव के शेष भागों को फिर बोर्ड मे उपस्थित किया। उन्होंने केवल पद्मसिंह से द्वेष हो जाने के कारण उन मंतव्यो का विरोध किया था, पर अब पद्मसिंह का वेश्यानुराग देख कर वह उन्ही के बनाये हुए हथियारो से उन पर आघात कर बैठे। पद्मसिंह उस दिन बोर्ड नहीं गये, डाक्टर श्यामाचरण नैनीताल गये हुए थे अतएव वे दोनों मतव्य निर्विघ्न पास हो गये।

बोर्ड की ओर से अलईपुर के निकट वेश्याओ के लिए मकान बनाये जा रहे थे। लाला भगतराम दत्तचित्त हो कर काम कर रहे थे। कुछ कच्चे घर थे, कुछ पक्के, कुछ दुर्गमजिले, एक छोटा - सा बाजार, एक छोटा - सा औषधालय और एक पाठशाला भी बनायी जा रही थी। हाजी हाशिम ने एक मसजिद बनवानी आरम्भ की थी और सेठ चिम्मनलाल की ओर से एक मंदिर बन रहा था। दीनानाथ तिवारी ने एक बाग की नींव डाल दी थी। आशा तो थी कि नियत समय के अंदर

भगतराम काम समाप्त कर देंगे, मिस्टर दत्त और पंडित प्रभाकरराव तथा मिस्टर शाकिरबेग उन्हें चैन न लेने देते थे। लेकिन काम बहुत था, और बहुत जल्दी करने पर भी एक साल लग गया। बस इसी की देर थी। दूसरे ही दिन वेश्याओं को दालमंडी छोड़ कर इन नये मकानों में आबाद होने का नोटिस दे दिया गया।

लोगों को शंका थी कि वेश्याओं की ओर से इसका विरोध होगा, पर उन्हें यह देख कर आनंदपूर्ण आश्चर्य हुआ कि वेश्याओं ने प्रसन्नतापूर्वक इस आज्ञा का पालन किया। सारी दालमंडी एक दिन में खाली हो गयी। जहाँ निशि-वासर एक श्री-सी बरसती थी, वहाँ संध्या होते सन्नाटा छा गया।

महबूबजान एक धनसम्पन्न वेश्या थी। उसने अपना सर्वस्व अनाथालय के लिए दान कर दिया था। संध्या समय सब वेश्याएँ उसके मकान पर एकत्रित हुईं, वहाँ एक महती सभा हुई। शाहजादी ने कहा, बहनो, आज हमारी जिंदगी का एक नया दौर शुरू होता है। खुदाताला हमारे इरादे में बरकत दे और हमें नेक रास्ते पर ले जाय। हमने बहुत दिन बेशर्मी और जिल्लत की जिंदगी बसर की, बहुत दिन शैतान की कैद में रही। बहुत दिन तक अपनी रूह (आत्मा) और ईमान का खून किया और बहुत दिनों तक मस्ती और ऐशपरस्ती में भूली रही। इस दालमंडी की जमीन हमारे गुनाहों से सियाह हो रही है। आज खुदाबद करीम ने हमारी हालत पर रहम करके हमें कैदेगुनाह से निजात (मुक्ति) दी है, इसके लिए हमें उसका शुक्र करना चाहिए। इसमें शक नहीं, कि हमारी कुछ बहनों को यहाँ से जलावतन होने का कलक होता होगा, और इसमें भी शक नहीं है कि उन्हें आनेवाले दिन तारीक नजर आते होंगे। उन बहनों से मेरा यही इल्तमास है कि खुदा ने रिज्क (जीविका) का दरवाजा किसी पर बंद नहीं किया है। आपके पास वह हुनर है कि उसके कदरदाँ हमेशा रहेगें। लेकिन अगर हमको आइंदा तकलीफें भी हों तो हमको साबिर व शाकिर (शात) रहना चाहिए। हमें आइंदा जितनी ही तकलीफें होगी उतना ही हमारे गुनाहों का बोझ हलका होगा। मैं फिर खुदा से दुआ करती हूँ कि वह हमारे दिलों को अपनी रोशनी से रोशन करे। और हमें राहें नेक पर लाने की तौफीक (सामर्थ्य) दे।

रामभोली बाई बोली, हमें पर्दासिंह शर्मा को हृदय से धन्यवाद देना चाहिए, जिन्होंने धर्म-मार्ग दिखाया है। उन्हें परमात्मा सदा सुखी रखे।

जोहरा जान बोली, मैं अपनी बहनों से यही कहना चाहती हूँ कि वह आइंदा से हलाल-हराम का ख्याल रखें। गाना बजाना हमारे लिए हलाल है। इसी हुनर में कमाल हासिल करो। बदकार रईसों के शुहबत (कामातुरता) का खिलौना बनना छोड़ना चाहिए। बहुत दिनों तक गुनाह की गुलामी की। अब हमें अपने को आजाद करना चाहिए। हमको खुदा ने क्या इसलिए पैदा किया है कि

अपना हुस्न, अपनी जवानी, अपनी रूह, अपना ईमान, अपनी गैरत, अपनी हया, हरामकार शुहबत - परस्त आदमियों की नजर करें ? जब कोई मनचला नौजवान रईस हमारे ऊपर दीवाना हो जाता है तो हमको कितनी खुशी होती है । हमारी नायका फूली नहीं समाती । सफरदाई बगले बजाने लगते हैं और हमें तो ऐसा मालूम होता है गोया सोने की चिड़िया फँस गयी लेकिन बहनों, यह हमारी हिमाकत है । हमने उसे अपने दाम में नहीं फँसाया, बल्कि उसके खुद दाम में फँस गयी । उसने सोने और चाँदी से हमको खरीब लिया । हम अपनी अस्मत (पवित्रता) जैसी बेबहा (अमूल्य) जिस खो बैठी । आइंदा से हमारा यह बतीरा (ढग) होना चाहिए कि अगर अपने में से किसी को बुराई करते देखे तो उसे उसी वक्त बिरादरी से खारिज कर दें ।

सुदरबाई ने कहा, जोहरा बहन ने यह बहुत अच्छी तजबीज की है । मैं भी यही चाहती हूँ । अगर हमारे यहाँ किसी की आमदरफ्त होने लगे तो पहले यह देखना चाहिए कि वह कैसा आदमी है । अगर उसे हमसे मुहब्बत हो और अपना दिल भी उस पर आ जाय तो शादी करनी चाहिए । लेकिन वह शादी न करके महज शुहबतपरस्ती के इरादे से आता हो तो उसे फौरन दुत्कार देना चाहिए । हम अपनी इज्जत कौड़ियों पर न बेचनी चाहिए ।

रामप्यारी ने कहा, स्वामी गजाधर ने हमें एक किताब दी है, जिसमें लिखा है कि सुंदरता हमारे पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का फल है; लेकिन हम अपने पूर्व जन्म की कमाई भी इस जन्म में नष्ट कर देती हैं । जो बहनें जोहरा की बात को पसंद करती हों वे हाथ उठा दें ।

इस पर बीस-पच्चीस वेश्याओं ने हाथ उठाये ।

रामप्यारी ने फिर कहा, जो इसे पसंद न करती हो वह भी हाथ उठा दें ।

इस पर एक भी हाथ न उठा ।

रामप्यारी — कोई हाथ नहीं उठा ? इसका यह आशय है कि हमने जोहरा की बात मान ली । आज का दिन मुबारक है ।

धृद्धा महबूब जान बोली, मुझे कहते हुए यही डर लगता है कि तुम लोग कहोगी, सत्तर चूहे खाकर के बिल्ली चली हज को, पर आज के सातवें दिन मैं सचमुच हज करने चली जाऊँगी । मेरी जिंदगी तो जैसे कटी, वैसे कटी, पर इस वक्त तुम्हारी यह नीयत देख कर मुझे कितनी खुशी हो रही है, वह मैं जाहिर नहीं कर सकती । खुदाएपाक तुम्हारे इरादों को पूरा करे ।

कुछ वेश्याएँ आपस में कानाफूसी कर रही थीं । उनके चेहरे से मालूम होता था कि ये बातें उन्हें पसंद नहीं आतीं, लेकिन उन्हें कुछ बोलने का साहस न होता था । छोटे विचार पवित्र भावों के सामने दब जाते हैं ।

इसके बाद यह सभा समाप्त हुई और वेश्याओं ने पैदल अलईपुर की ओर प्रस्थान किया, जैसे यात्री किसी धाम का दर्शन करने जाते हों।

दालमंडी में अँधेरा छाया हुआ था। न तबलो की थाप थी न सारंगियों की अलाप, न मधुर स्वरो का गाना; न रसिक जनों का आना-जाना। अनाज कट जाने पर खेत की जो दशा हो जाती है, यही दालमंडी की हो रही थी।

२६

पंडित मदनसिंह की कई महीने तक यह दशा थी कि जो कोई उनके पास आता उसी से सदन की बुराई करते, कपूत है, भ्रष्ट है, शोहदा है, लुच्चा है, एक कानी कौड़ी तो दूँगा नहीं, भीख माँगता फिरेगा तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। पंडितसिंह को दानपत्र लिखाने के लिए कई बार लिखा। भामा कभी सदन की चर्चा करती तो उससे बिगड़ जाते, घर से निकल जाने की धमकी देते, कहते, जोगी हो जाऊँगा, लेकिन उस छोकरे का मुँह न देखूँगा।

इसके पश्चात् उनकी मानसिक अवस्था में एक परिवर्तन हुआ। उन्होंने सदन की चर्चा ही करना छोड़ दी। यदि कोई उनकी बुराई करता तो कुछ अनमने-से हो जाते; कहते, भाई, अब क्यों उसे कोसते हो? जैसा उसने किया, वैसा आप भुगतोगा, अच्छा है, या बुरा है, मेरे पास से दूर है। अपने चार पैसे कमाता है, खाता है, पडा है, पडा रहने दो। लाला बैजनाथ बहुत मुँह लगे थे। एक दिन वह खबर लाये कि उमानाथ ने सदन को कई हजार रुपये दिये हैं, अब नदी पार मकान बना रहा है, एक बगीचा लगवा रहा है। चूना पीसने की एक कल ली है, खूब रुपया कमाता है और उड़ाता है। मदनसिंह ने झुंझला कर कहा, तो क्या चाहते हो कि वह भीख माँगे, दूसरों की रोटियाँ तोड़े। उमानाथ उसे रुपया क्या देंगे, अभी एक का चदे से ब्याह किया है, आप टके-टके को मुहताज हो रहे हैं। सदन ने जो कुछ किया होगा अपनी कमाई से किया होगा। वह लाख बुरा हो, निकम्मा नहीं है; अमाहिज नहीं है। अभी जवान है, शौकीन है, अगर कमाता है और उड़ाता है तो किसी को क्यों बुरा लगे? तुम्हारे इस गाँव में कितने लौंडे हैं जो एक पैसा नहीं कमाते लेकिन घर से रुपये चुराकर ले जाते हैं और चमारियों का पेट भरते हैं। सदन उनसे तो अच्छा है! मुंशी बैजनाथ लज्जित हो गये।

कुछ काल के उपरांत मदनसिंह की मनोवृत्ति पर प्रतिक्रिया का आधिपत्य हुआ। सदन की सूरत आँखों में फिरने लगी, उसकी बातें याद आया करतीं, कहते, देखो तो कैसा निर्दयी है, मुझसे रुठने चला है, मानो मैं यह जगह, जमीन, माल,

असबाब सब अपने माथे पर लाद कर ले जाऊँगा। एक बार यहाँ आते नहीं बनता, पैरो मे मेहदी रचाये बैठा है ! पापी कही का, मुझसे घमंड करता है, कुढ़ - कुढ़ कर मर जाऊँगा तो बैठा मेरे नाम को रोयेगा, तब भले वहाँ से दौड़ा आयेगा, अभी नहीं आते बनता ; अच्छा, देखें तुम कहीं भाग कर जाते हो, वही चल कर तुम्हारी खबर लेता हूँ ।

भोजन करके जब विश्राम करते तो भामा से सदन की बातें करने लगते । यह लौड़ा लड़कपन मे भी जिद्दी था । जिस वस्तु के लिए अड़ जाता था, उसे ले कर ही छोड़ता था । तुम्हे याद आता होगा, एक बार मेरी पूजा की झोली के वास्ते कितना महनामथ मचाया और उसे ले कर ही चुप हुआ । बड़ा हठी है, देखो तो उसकी कठोरता । एक पत्र भी नहीं भेजता, चुपचाप कान मे तेल डाले बैठा है, मानो हम लोग मर गये है । भामा यह बातें सुनती और रोती । मदनसिंह के अत्माभिमान ने पुत्र - प्रेम के आगे सिर झुका दिया था ।

इस प्रकार एक वर्ष के ऊपर हो गया । मदनसिंह बार - बार सदन के पास जाने का विचार करते, पर उस विचार को कार्य रूप मे न ला सकते, एक बार असबाब बँधवा चुके थे, पर थोड़ी देर पीछे उसे खुलवा दिया । एक बार स्टेशन से लौट आये । उनका हृदय मोह और अभिमान का खिलौना बना हुआ था ।

अब गृहस्थी के कामों मे उनका जी न लगता । खेतो मे समय पर पानी नहीं दिया गया और फसल खराब हो गयी । असामियों से लगान नही वसूल किया गया, वह बेचारे रुपया ले कर आते, लेकिन मदनसिंह को रुपया ले कर रसीद देना भारी था । कहते भाई, अभी जाओ, फिर आना । गुड़ घर मे धराधरा पसीज गया, उसे बेचने का प्रबन्ध न किया । भामा कुछ कहती तो झुंझला कर कहते चूल्हे मे जाय घर और द्वार, जिसके लिए सब कुछ करता था, जब वही नहीं है तो यह गृहस्थी मेरे किस काम की है ? अब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरा सारा जीवन, सारी धर्म - निष्ठा, सारी कर्मशीलता, सारा आनंद केवल एक आधार पर अवलंबित था और वह आधार सदन का था ।

इधर कई दिनों से पद्मसिंह भी नहीं आये थे । एक बड़ा काम सम्पादन करने के उपरांत चित्त पर जो शिथिलता छा जाती है वही अवस्था उनकी हो रही थी । मदनसिंह उनके पास भी पत्र न भेजते थे । हाँ, उनके पत्र आते तो बड़े शोक से पढ़ते, लेकिन सदन का कुछ समाचार न पा कर उदास हो जाते ।

एक दिन मदनसिंह दरवाजे पर बैठे हुए प्रेमसागर पढ़ रहे थे । कृष्ण की बाल-लीला मे उन्हें बच्चों का - सा आनंद आ रहा था । संघ्या हो गयी थी । अक्षर सूझ न पड़ते थे, पर उनका मन ऐसा लगा हुआ था कि उठने की इच्छा न होती थी । अकस्मात् कुत्तों के भूँकने ने किसी नये आदमी के गाँव में आने की सूचना दी । मदन-

सिंह की छाती धड़कने लगी। कहीं सदन तो नहीं आ रहा है। किताब बंद करके उठे तो पद्मसिंह को आते देखा। पद्मसिंह ने उनके चरण छुए, फिर दोनों भाइयों में बातचीत होने लगी।

मदन — सब कुशल है।

पद्म — जी हाँ, ईश्वर की दया है।

मदन — भला उस बेईमान की भी कुछ खोज-खबर मिली है ?

पद्म — जी हाँ, अच्छी तरह है। दसवें-पाँचवें मेरे यहाँ आया करता है। मैं कभी कभी हाल-चाल पुछवा लेता हूँ। कोई चिंता की बात नहीं है।

मदन — भला वह पाप कभी हम लोगो की भी चर्चा करता है या बिलकुल मरा समझ लिया ? क्या यहाँ आने की कसम खा ली है ? क्या हम लोग मर जायेंगे तभी आयेगा ? अगर उसकी यही इच्छा है तो हम लोग कहीं चले जायें। अपना घर-द्वार ले, अपना घर सँभाले। सुनता हूँ, वहाँ मकान बनवा रहा है। वह तो वहाँ रहेगा ? और यहाँ कौन रहेगा ? यह मकान किसके लिए छोड़े देता है ?

पद्म — जी नहीं, मकान-वकान कहीं नहीं बनवाता, यह आपने किसी ने झूठ कह दिया। हाँ, चूने की कन खड़ों कर ली है और यह भी मालूम हुआ है कि नदी पार थोड़ी सी जमीन भी लेना चाहता है।

मदन — तो उससे कह देना, पहले आ कर इस घर में आग लगा जाय तब वहाँ जगह-जमीन ले।

पद्म — यह आप क्या कहते हैं, वह केवल आप लोगों की अप्रसन्नता के भय से नहीं आता। आज उसे मालूम हो जाय कि आपने उसे क्षमा कर दिया तो सिर के बल दौड़ा आये। मेरे पास आता है तो घंटों आप ही की बातें करना रहता है। आपकी इच्छा हो तो कल ही चला आये।

मदन — नहीं, मैं उसे बुलाता नहीं। हम उसके कौन होते हैं जो यहाँ आयेगा ? लेकिन यहाँ आये तो कह देना जरा पीठ मजबूत कर रखे। उसे देखते ही मेरे सिर पर शैतान सवार हो जायगा और मैं डंडा ले कर पिल पड़ूँगा। मूर्ख मुझसे रूठने चला है। तब नहीं रूठा था जब पूजा के समय पोथी पर राल टपकाता था, खाने की थाली के पास पेशाब करता था। उसके मारे कपड़े साफ न रहने पाते थे। उजले कपड़ों को तरस के रड़ जाता था। मुझे साफ कपड़े पहने देखता तो बदन में धूल-मिट्टी लपेटे आ कर सिर पर सवार हो जाता। तब क्यों नहीं रूठा था ? आज रूठने चला है। अब की पाऊँ तो ऐसी कनेठी दूँ कि छठी का दूध याद आ जायगा।

दोनों भाई घर गये। भामा बैठी गाय को भूसा खिना रही थी और सदन की दोनों बहनें खाना पकाती थीं। भामा देवर को देखते ही खड़ी हो गयी और बोली, भला तुम्हारे दर्शन तो हुए। चार पग पर रहते हो और इतना भी नहीं

होता कि महीने में एक बार तो जा कर देख आभें — घरवाले मरे कि जीते है । कहो, कुशल से तो रहे ?

पद्म — हॉ, सब तुम्हारा आशीर्वाद है । कहो, खाना क्या बन रहा है ? मुझे इस वक्त खीर, हलुवा और मलाई खिलाओ तो वह सुख - संवाद सुनाऊँ कि फडक जाओ । पोता मुबारक हो ।

भामा के मलिन मुख पर आनंद की लालिमा छा गयी और आँखों की पुतलियाँ पुष्प के समान खिल उठी । बोली, चलो, घी - शक्कर के मटके में डुबा दूँ, जितना बने खाओ ।

मदनसिंह ने मुँह बनाकर कहा, यह तो तुमने बुरी खबर सुनाई । क्या ईश्वर के दरबार में उल्टा न्याय होता है ? मेरा बेटा छिन जाय और उसे बेटा मिल जाय । अब वह एक से दो हो गया, मैं उससे कैसे जीत सकूँगा ? हारना पड़ा । वह मुझे अवश्य खींच ले जायगा । मेरे तो कदम अभी से उखड़ गये । सचमुच ईश्वर के यहाँ बुराई करने पर भलाई होती है । उल्टी बात है कि नहीं ? लेकिन अब मुझे चिंता नहीं है । सदन जहाँ चाहे जाय, ईश्वर ने हमारी सुन ली । कै दिन का हुआ है ?

पद्म — आज चौथा दिन है, मुझे छुट्टी नहीं मिली नहीं तो पहिले ही दिन आता ।

मदन — क्या हुआ, छठी तक पहुँच जायेंगे, धूमधाम से छठी मनायेंगे । बस कल चलो ।

भामा फूली न समाती थी । हृदय पुलकित हो रहा था । जी चाहता था कि किससे क्या दे दूँ ? क्या लुटा दूँ ? जी चाहता था घर में सोहर उठे, दरवाजे पर शहनाई बजे, पडोसिने बुलायी जायँ । गाने - बजाने की मंगल ध्वनि से गाँव गूँज उठे । उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था, मानो आज संसार में कोई असाधारण बात हो गयी है, मानो सारा संसार संतानहीन है और एक मैं ही पुत्र - पौत्रवती हूँ ।

एक मजदूर ने आ कर कहा, भौजी एक साधु द्वार पर आये है । भामा ने तुरंत इतनी जिन्स भेज दी जो चार साधुओं के खाने से भी न चुकती ।

ज्यों ही लोग भोजन कर चुके, भामा अपनी दोनों लड़कियों के साथ ढोल ले कर बैठ गयी और आधी रात तक गाती रही ।

३०

जिस प्रकार कोई मनुष्य लोभ के वश हो कर आभूषण चुरा लेता है, पर विवेक होने पर उसे देखने में भी लज्जा आती है, उसी प्रकार सदन भी सुमन से बचता फिरता था। इतना ही नहीं, वह उसे नीची दृष्टि से देखता था और उसकी उपेक्षा करता था। दिन-भर काम करने के बाद संध्या को उसे अपना यह व्यवसाय बहुत अखरता, विशेष कर के चूने के काम में उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। वह सोचता, इसी सुमन के कारण मैं यों घर से निकाला गया हूँ। इसी ने मुझे यह बन-वास दे रखा है। कैसे आराम से घर पर रहता था। न कोई चिंता थी न कोई झझट, चैन से खाता था और मौज करता था। इसीने मेरे सिर यह मुसीबत ढा दी। प्रेम की पहली उमंग में उसने उसका बनाया हुआ भोजन खा लिया था, पर अब उसे बड़ा पछतावा होता था। वह चाहता था कि किसी प्रकार इससे गला छूट जाय। यह वही सदन है जो सुमन पर जान देता था, उसकी मुस्कान पर, मधुर बातों पर, कृपाकटाक्ष पर अपना जीवन तक न्योछावर करने को तैयार था। पर सुमन आज उसकी दृष्टि में इतनी गिर गयी है। वह स्वयं अनुभव करके भी भूल जाता था कि मानव-प्रकृति कितनी चंचल है !

सदन ने इधर वर्षों से लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था और जब से चूने की कल ली, तो वह दैनिक पत्र भी पढ़ने का अवकाश न पाना था। अब वह समझता था कि यह उन लोगो का काम है, जिन्हें कोई काम नहीं है, जो सारे दिन पड़े पड़े मक्खियाँ मारा करते हैं। लेकिन उसे बालों को सँवारने, हारमोनियम बजाने के लिए न मालूम कैसे अवकाश मिल जाता था।

कभी-कभी पिछली बातों का स्मरण करके वह मन में कहता मैं उस समय कैसा मूर्ख था, इसी सुमन के पीछे लटू हो रहा था ? वह अब अपने चरित्र पर घमंड करता था। नदी के तट पर वह नित्य स्त्रियो को देखा करता था, पर कभी उसके मन में कुभाव न पैदा होते थे। सदन इसे अपना चरित्रबल समझता था।

लेकिन जब गर्भिणी शांता के प्रसूति का समय निकट आया, और वह बहुधा अपने कमरे में बंद, मलिन, शिथिल पड़ी रहने लगी तो सदन को मालूम हुआ कि मैं बहुत धोखे में था। जिसे मैं चरित्रबल समझता था, वह वास्तव में मेरी तृष्णाओं के संतुष्ट होने का फाँसा था। अब वह काम पर से लौटता तो शांता मधुर मुस्कान के साथ उसका स्वागत न करती, वह अपनी चारपाई पर पड़ी रहती। कभी उसके सिर में दर्द होता, कभी शरीर में, कभी ताप चढ़ आता, कभी मतली होने लगती, उसका मुखचंद्र कांति हीन हो गया था, मालूम होता था शरीर में रक्त ही

नहीं है। सदन को उसकी यह दशा देख कर दुःख होता, वह घंटों उसके पास बैठ कर उसका दिल बहलाता रहता, लेकिन उसके चेहरे से मालूम होता था कि उसे वहाँ बैठना अखर रहा है। वह किसी - न - किसी बहाने से जल्द ही उठ जाता। उसकी विलास - तृष्णा ने मन को फिर चंचल करना शुरू किया, कुवासनाएँ उठने लगीं। वह युवती मल्लाहिनो से हँसी करता, गंगा - तट पर जाता तो नहानेवाली स्त्रियों को कुदृष्टि से देखता। यहाँ तक कि एक दिन इस वासना से विह्वल हो कर वह दालमंडी की ओर चला। वह कई महीनों से इधर नहीं आया था। आठ बज गये थे। काम - भोग की प्रबल इच्छा उसे बढ़ाये लिये जाती थी। उसका ज्ञान और विवेक इस समय इस आवेग के नीचे दब गया था। वह कभी दो पग आगे चलता, कभी चुपचाप खड़ा हो कर कुछ सोचता और पीछे फिरता, लेकिन दो - चार कदम चल कर वह फिर लौट पड़ता। इस समय उसकी दशा उस रोगी - सी हो रही थी, जो मीठे पदार्थ को सामने देख कर उस पर टूट पड़ता है और पथ्यापथ्य का विचार नहीं करता।

लेकिन जब वह दालमंडी में पहुँचा तो गली में वह चहल - पहल न देखी जो पहले दिखायी देती थी। पानवालों की दूकानें दो - चार थी, लेकिन नानवाइयों और हलवाइयों की दूकानें बंद थी। कोठों पर वेश्याएँ झाँकती हुई दिखायी न दी, न सारंगी और तबले की ध्वनि सुनायी दी। अब उसे याद आया कि वेश्याएँ यहाँ से चली गयी। उसका मन खिन्न हो गया, लेकिन एक क्षण में उसे एक विचित्र आनंद का अनुभव हुआ। उसने अपनी कामप्रवृत्ति पर विजय पा ली, मानो वह किसी कठोर सिपाही के हाथ से छूट गया। वह सिपाही उसे खींचे लिये जाता था, उसके पंजे से अपने को छुड़ा लेने की उसमें सामर्थ्य न थी, पर थाने में पहुँच कर सिपाही ने देखा कि थाना बंद है, न थानेदार है, न कोई कान्स्टेबल, न चौकी - दार। सदन को अब अपने मन की दुर्बलता पर लज्जा आयी। उसे अपने मनोबल पर जो घमंड था, वह चूर - चूर हो गया।

वह लौटना चाहता था पर जी में आया कि आया हूँ तो अच्छी तरह से सैर क्यों न कर लूँ ? आगे बढ़ा तो वह मकान दिखायी दिया जिसमें सुमन रहती थी। वहाँ गाने की मधुर ध्वनि उसके कान में आयी। उसने आश्चर्य से ऊपर देखा तो एक बड़ा साइन बोर्ड दिखायी दिया। उस पर लिखा था 'संगीत - पाठशाला'। सदन ऊपर चढ़ गया। इसी कमरे में वह महीनों सुमन के पास बैठा था, उसके मन में कितनी ही पुरानी स्मृतियाँ आने लगी। वह एक बेंच पर बैठ गया और गाना सुनने लगा। बीस - पचीस मनुष्य बैठे हुए गाने - बजाने का अभ्यास कर रहे थे। कोई सितार बजाता था, कोई सारंगी, कोई तबला और एक वृद्ध पुरुष उन सबको बारी - बारी से सिखा रहा था। वह गान विद्या में निपुण मालूम होता था, सदन

का गाना सुनने में ऐसा मन लगा कि वह पंद्रह मिनट तक वहाँ बैठा रहा । उसके मन में बड़ी उत्कठा हुई कि मैं भी यहाँ गाना सीखने आया करता, पर एक तो उसका मकान यहाँ से बहुत दूर था, दूसरे स्त्रियों को अकेली छोड़ कर रात को आना कठिन था । वह उठना ही चाहता था कि इतने में उसी गायनाचार्य ने सितार-पर यह गाना शुरू किया—

दयामयि भारत को अपनाओ ।

तव वियोग से व्याकुल है मा, सत्वर धैर्य धराओ ।

प्रिय लालन कह कर पुचकारो, हँस कर गले लगाओ ॥

दयामयि भारत को अपनाओ ।

सोये आर्य जाति के गौरव, जननि ! फेर जगाओ ।

दुखड़ा पराधीनता रूपी बेड़ी काट बहाओ ॥

दयामयि भारत को अपनाओ ।

इस पद ने सदन के हृदय में उच्च भावों का स्रोत - सा खोल दिया । देशोपकार, जाति - सेवा तथा राष्ट्रीय गौरव की पवित्र भावनाएँ उसके हृदय में गूँजने लगी । यह बाह्य ध्वनि उसके अंतर में भी एक विशाल ध्वनि पैदा कर रही थी । जगज्जननी की दयामयी मूर्ति उसके हृदय नेत्रों के सम्मुख खड़ी हो गयी । एक दरिद्र, दुखी, दीन, क्षीण बालक दीन भाव से देवी की ओर ताक रहा था, और अपने दोनों हाथ उठाये, सजल आँखों से देखता हुआ कह रहा था, 'दयामयि भारत को अपनाओ ।' उसने कल्पनाओं में अपने को दीन कृषको की सेवा करते हुए देखा । वह जमींदारों के कारिंदों से विनय कर रहा था कि इन दीन जनों पर दया करो ! कृषकगण उसके पैरों पर गिर पड़ते थे, उनकी स्त्रियाँ उसे आशीर्वाद दे रही थी । स्वयं इस कल्पित बारात का दूल्हा बना हुआ सदन यहाँ से जाति - सेवा का सकल्प करके उठा और नीचे उतर आया । वह अपने विचारों में ऐसा लीन हो रहा था कि किसी से कुछ न बोला । थोड़ी ही दूर चला था कि उसे सुंदर बाई के भवन के सामने बहुत से मनुष्य दिखायी दिये । उसने एक आदमी से पूछा, यह कैसा जमघट है ? मालूम हुआ कि आज कुँवर अनिरुद्धसिंह यहाँ एक 'कृषि सहायक सभा' खोलनेवाले हैं । सभा का उद्देश्य होगा, किसानों को जमींदारों के अत्याचार से बचाना । सदन के मन में अभी - अभी कृषको के प्रति जो सहानुभूति प्रकट हुई थी वह मंद पड़ गयी । वह जमींदार था और कृषकों पर दया करना चाहता था, पर उसे मजूर न था कि कोई उसे दबाये और किसानों को भड़का कर जमींदारों के विरुद्ध खड़ा कर दे । उसने मन में कहा, यह लोग जमींदारों के सत्त्वों को मिटाना चाहते हैं । द्वेष भाव से ही प्रेरित हो कर इन लोगों ने यह संस्था खोलने का विचार किया है, तो हम लोगों को भी सतर्क हो जाना चाहिए, हमको अपनी रक्षा करनी चाहिए ।

मानव प्रकृति को दबाव से कितनी घृणा है। सदन ने यहाँ ठहरना व्यर्थ समझा। नौ बज गये थे। वह घर को लौटा।

३१

संध्या का समय है। आकाश पर लालिमा छायी हुई है और मंद वायु गंगा की लहरो पर क्रीड़ा कर रही है, उन्हे गुदगुदा रही है। वह अपने करुण नेत्रों से मुस्कराती है और कभी-कभी खिलखिला कर हँस पड़ती है, तब उसके मोती के दाँत चमक उठते हैं। सदन का रमणीय झोपड़ा आज फूलों और लताओं से सजा हुआ है। दरवाजों पर मल्लाहों की भीड़ है। अंदर उनकी स्त्रियाँ बैठी सोहर गा रही हैं। आँगन में भट्ठी खुदी हुई है और बड़े-बड़े हंडे चढ़े हुए हैं। आज सदन के नवजात पुत्र की छठी है, यह उसी का उत्सव है।

लेकिन सदन बहुत उदास दिखायी देता है। वह सामने के चबूतरे पर बैठा हुआ गंगा की ओर देख रहा है। उसके हृदय में भी विचार की लहरें उठ रही हैं। ना ! वह लोग न आयेंगे। आना होता तो आज छह दिन बीत गये, आ न जाते ? यदि मैं जानता कि वे न आयेंगे तो मैं चाचा से भी यह समाचार न कहता। उन्होंने मुझे मरा हुआ समझ लिया है, वह मुझसे कोई सरोकार नहीं रखना चाहते, मेरी जीऊँ या मरूँ उन्हें परवाह नहीं है। लोग ऐसे अवसर पर अपने शत्रुओं के घर भी जाते हैं। प्रेम से न आते, दिखावे के ही लिए आते, व्यवहार के तौर पर आते — मुझे मालूम तो हो जाता कि संसार में मेरा कोई है। अच्छा न आयें, इस काम से छुट्टी मिली तो एक बार मैं स्वयं जाऊँगा और सदा के लिए निपटारा कर आऊँगा। लड़का कितना सुंदर है, कैसे लाल लाल ओठ हैं, बिल्कुल मुझी को पड़ा है, हाँ आँखें शांता की हैं। मेरी ओर कैसे ध्यान से टुक-टुक ताकता था। दादा को तो मैं नहीं कहता, लेकिन अम्माँ उसे देखें तो एक बार गोद में अवश्य ही ले लें। एकाएक सदन के मन में यह विचार हुआ, अगर मैं मर जाऊँ तो क्या हो ? इस बालक का पालन कौन करेगा ? कोई नहीं। नहीं, मैं मर जाऊँ तो दादा को अवश्य उस पर दया आवेगी। वह इतने निर्दय नहीं हो सकते। जरा देखूँ, सेविंग बैंक में मेरे कितने रुपये हैं। अभी एक हजार भी पूरे नहीं। ज्यादा नहीं, अगर ५० ६० महीना भी जमा करता जाऊँ तो सालभर में ६०० ६० हो जायेंगे। ज्यों ही दो हजार पूरे हो जायेंगे घर बनवाना शुरू कर दूँगा। दो कमरे सामने, पाँच कमरे भीतर, दरवाजे पर मेहराबदार सायबान, पटाव के ऊपर दो कमरे हों तो मकान अच्छा हो। कुरसी ऊँची रहने से घर की शोभा बढ़ जाती है। मैं कम-से-

कम पाँच फुट की कुरसी दूँगा ।

सदन इन्ही कल्पनाओं का आनंद ले रहा था । चारों ओर अँधेरा छाने लगा था कि इतने में उसने सड़क की ओर से एक गाड़ी आती देखी । उसकी दोनों लालटेनें विल्ली की आँखों की तरह चमक रही थी । कौन आ रहा है ? चाचा साहब के सिवा और कौन होगा ? मेरा और है ही कौन ? इतने में गाड़ी निकट आ गयी और उसमें से मदनसिंह उतरे । इस गाड़ी के पीछे एक और गाड़ी थी । सुभद्रा और भामा उसमें से उतरी । सदन की दोनों बहनें भी थी । जीतन कोच बक्स पर से उतर कर लालटेन दिखाने लगा । सदन इतने आदमियों को उतरते देख कर समझ गया कि घर के लोग आ गये पर वह उनसे मिलने के लिए नहीं दौड़ा । वह समय बीत चुका था, जब वह उन्हें मनाने जाता । अब उसके मान करने का समय आ गया था । वह चवूतरे पर से उठ कर झोपड़े में चला गया, मानो उसने किसी को देखा ही नहीं । उसने मन में कहा, ये लोग समझते होंगे कि इनके बिना मैं बेहाल हुआ जाता हूँ, पर उन्हें जैसे मेरी परवाह नहीं, उसी प्रकार मैं भी इनकी परवाह नहीं करता ।

सदन झोपड़े में जा कर ताक रहा था कि देखे यह लोग क्या करते हैं । इतने में उसने जीतन को दरवाजे पर आ कर पुकारते हुए देखा । कई मल्लाह इधर-उधर से दौड़े । सदन बाहर निकल आया और दूर से ही अपनी माता को प्रणाम करके किनारे खड़ा हो गया ।

मदनसिंह बोले, तुम तो इस तरह खड़े हो मानो हमें पहचानते ही नहीं । मेरे न सही, पर माता के चरण छू कर आशीर्वाद तो ले लो ।

सदन — मेरे छू लेने से आपका धर्म बिगड़ जायगा ।

मदनसिंह ने भाई की ओर देख कर कहा, देखते हो इसकी बात । मैं तो तुमसे कहता था कि वह हम लोगों को भूल गया होगा, लेकिन तुम खीच लाये । अपने माता-पिता को द्वार पर खड़े देख कर भी इसे दया नहीं आती ।

भामा ने आगे बढ़ कर कहा, बेटा सदन ! दादा के चरण छुओ, तुम बुद्धिमान हो कर ऐसी बातें करते हो !

सदन अधिक मान न कर सका । आँखों में आँसू भरे पिता के चरणों पर गिर पड़ा । मदनसिंह रोने लगे ।

इसके बाद वह माता के चरणों पर गिरा । भामा ने उठ कर छाती से लगा लिया और आशीर्वाद दिया ।

प्रेम, भक्ति और क्षमा का कैसा मनोहर, कैसा दिव्य, कैसा आनंदमय दृश्य है ! माता-पिता का हृदय प्रेम से पुलकित हो रहा है और पुत्र के हृदयसागर में भक्ति की तरंगें उठ रही हैं । इसी प्रेम और भक्ति की निर्मल ज्योति से हृदय की

अँधेरी कोठरियाँ प्रकाश पूर्ण हो गयी है। मिथ्याभिमान और लोकलज्जा या भयरूपी कीट-पतंग वहाँ से निकल गये हैं। अब वहाँ न्याय, प्रेम और सद्ब्यवहार का निवास है।

आनंद के मारे सदन के पैर जमीन पर नहीं पड़ते। वह अब मल्लाहों को कोई - न - कोई काम करने का हुक्म दे कर दिखा रहा है कि मेरा यहाँ कितना रोब है। कोई चारपाई निकालने जाता है। कोई बाजार दौड़ा जाता है। मदनसिंह फूले नहीं समाते और अपने भाई के कानो में कहते हैं, सदन तो बड़ा चतुर निकला। मैं तो समझता था, किसी तरह पड़ा दिन काट रहा होगा, पर यहाँ तो बड़ा ठाठ है।

इधर भामा और सुभद्रा भीतर गयीं। भामा चारों ओर चकित हो कर देखती थी। कौंसी सफाई है! सब चीजें ठिकाने से रखी हुई हैं। बहन गुणवान मालूम होती है।

वह सौरीशूह में गयी तो शाता ने अपनी दोनों सासों के चरण स्पर्श किये। भामा ने बालक को गोद में ले लिया। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो वह कृष्ण का ही अवतार है। उसकी आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे।

थोड़ी देर में उसने मदनसिंह से आ कर कहा, और जो कुछ हो पर तुमने बहू बड़ी रूपवती पायी है। गुलाब का फूल है और बालक तो साक्षात् भगवान् का अवतार ही है।

मदन — ऐसा तेजस्वी न होता तो मदनसिंह को खींच कैसे लाता ?

भामा — बहू बड़ी सुशीला मालूम होती है।

मदन — तभी तो सदन ने उसके पीछे मा - बाप को त्याग दिया था।

सब लोग अपनी - अपनी धुन में मग्न थे, पर किसी को सुधि न थी कि अभागिनी सुमन कहाँ है।

सुमन गंगा तट पर सध्या करने गयी थी। जब वह लौटी तो उसे झोपड़े के द्वार पर गाड़ियाँ खड़ी दिखायी दीं। दरवाजे पर कई आदमी बैठे थे। पचासिंह को पहचाना। समझ गयी कि सदन के माता - पिता आ गये। वह आगे न बढ़ सकी। उसके पैरों में बेड़ी - सी पड़ गयी। उसे मालूम हो गया कि अब यहाँ मेरे लिए स्थान नहीं है, अब यहाँ से मेरा नाता टूटता है। वह मूर्तिबत खड़ी सोचने लगी कि कहाँ जाऊँ ?

इधर एक मास से शाता और सुमन में बहुत मनमुटाव हो गया था। वही शाता जो विधवा आश्रम में दया और शांति की मूर्ति बनी हुई थी, अब सुमन को जलाने और रूलाने पर तत्पर रहती थी। उम्मेदबारी के दिनों में हम जितने विनय-शील और कर्तव्य - परायण होते हैं, उतने ही अगर जगह पाने पर बने रहें तो

हम देवतुल्य हो जायँ । उस समय शांता को सहानुभूति की जरूरत थी, प्रेम की आकांक्षा ने उसके चित्त को उदार, कोमल, नम्र बना दिया था, पर अब अपना प्रेमरत्न पा कर किसी दरिद्र से धनी हो जानेवाले मनुष्य की भाँति उसका हृदय कठोर हो गया था । उसे यह भय खाये जाता था सदन कहीं सुमन के जाल में न फँस जाय । सुमन के पूजा - पाठ, श्रद्धाभक्ति का उसकी दृष्टि में कुछ भी मूल्य न था । वह इसे पाखंड समझती थी । सुमन सिर में तेल मलने या साफ कपड़ा पहनने के लिए तरस जाती थी, शांता इसे समझती थी । वह सुमन के आचार - व्यवहार को बड़ी तीव्र दृष्टि से देखती रहती थी । सदन से जो कुछ कहना होता सुमन शांता से कहती, यहाँ तक कि शांता भोजन के समय भी रसोई में किसी - न - किसी बहाने आ बैठती थी । वह अपने प्रसवकाल के पहले सुमन को किसी भाँति वहाँ से टालना चाहती थी, क्योंकि सौरीगृह में बन्द हो कर वह सुमन की देख - भाल न कर सकेगी । उसे और सब कष्ट सहना मंजूर था, पर यह दाह न सही जाती थी ।

लेकिन सुमन सब कुछ देखते हुए भी देखती न थी, सब कुछ सुनते हुए भी कुछ न सुनती थी । नदी में डूबते हुए मनुष्य के समान वह इस तिनके के सहारे को भी छोड़ न सकती थी । वह अपना जीवन मार्ग स्थिर न कर सकती थी, पर इस समय सदन के माता - पिता को यहाँ देख कर उसे यह सहारा छोड़ना पड़ा, इच्छा-शक्ति जो कुछ न कर सकती थी वह इस अवस्था में कर दिखाया ।

वह पाँव दबाती हुई धीरे - धीरे झोपड़े के पिछवाड़े आयी और कान लगा कर सुनने लगी कि देखूँ यह लोग मेरी कुछ चर्चा तो नहीं कर रहे हैं ? आध घंटे तक वह इसी प्रकार खड़ी रही । भामा और सुभद्रा इधर - उधर की बातें कर रही थी । अंत में भामा ने कहा, क्या अब इसकी बहन यहाँ नहीं रहती ?

सुभद्रा — रहती क्यों नहीं, वह कहाँ जानेवाली है ?

भामा — दिखायी नहीं देती ।

सुभद्रा — किसी काम से गयी होगी । घर का सारा काम तो वही सँभाले हुए है ?

भामा — आये तो कह देना कि कहीं बाहर लेट रहे, सदन उसी का बनाया खाता होगा ?

शांता सौरीगृह में से बोली, नहीं अभी तक तो मैं ही बनाती रही हूँ, आजकल वह अपने हाथ से बना लेते हैं ।

भामा — तब भी घड़ा - बरतन तो वह छूती ही रही होगी । यह घड़ा फेंकवा दो, बरतन फिर से धुल जायँगे ।

सुभद्रा — बाहर कहाँ सोने की जगह है ?

भामा — हो चाहे न हो, लेकिन यहाँ मैं उसे सोने न दूँगी । वैसे स्त्री का

क्या विश्वास ?

सुमन — नहीं दीदी, वह अब वेसी नहीं है । वह प्रेम - धरम से रहती है ।

भामा — चलो, वह बड़ी नेम धरम से रहनेवाली है ! सात घाट का पानी पीके आज नेमवाली बनी है । देवता की मूर्त टूट कर फिर नहीं जुड़ती । वह अब देवी बन जाय तब भी मैं उसका विश्वास न करूँ ।

सुमन इससे ज्यादा न सुन सकी । उसे ऐसा मालूम हुआ मानो किसी ने लोहा लाल करके उसके हृदय में चुभा दिया । उल्टे पाँव लौटी और उसी अधिकार में एक ओर चल पड़ी ।

अँधेरा खूब छाया था, रास्ता भी अच्छी तरह न सूझता था, पर सुमन गिरती - पड़ती चली जाती थी, मालूम नहीं कहाँ, किधर ? वह अपने होश में न थी । लाठी खा कर घबराये हुए कुत्ते के समान वह मूर्खावस्था में लुढ़कती जा रही थी । सँभलना चाहती थी, पर सँभल न सकती थी । यहाँ तक कि उसके पैरों में एक बड़ा - सा काँटा चुभ गया । वह पैर पकड़ कर बैठ गयी । चलने की शक्ति न रही ।

उसने बेहोशी के बाद होश में आनेवाले मनुष्य के समान इधर - उधर चौंक कर देखा । चारों ओर सन्नाटा था, गहरा अंधकार छाया हुआ था, केवल सियार अपना राग अलाप रहे थे । यहाँ मैं अकेली हूँ, यह सोच कर सुमन के रोएँ खड़े हो गये । अकेलापन किसे कहते हैं, यह उसे आज मालूम हुआ । लेकिन यह जानते हुए भी कि यहाँ कोई नहीं है, मैं ही अकेली हूँ, उसे अपने चारों ओर, नीचे ऊपर नाना प्रकार के जीवन आकाश में चन्ते हुए दिखायी देते थे । यहाँ तक कि उसने घबड़ा कर आँखें बंद कर लीं । निर्जनता कल्पना को अतृप्त रचनाशील बना देती है ।

सुमन सोचने लगी, मैं कैसी अभागिन हूँ । और तो और अपनी सगी बहन भी अब मेरी सूरत नहीं देखना चाहती । उसे कितना अपनाना चाहा, पर वह अपनी न हुई । मेरे सिर कलंक का टीका लग गया और वह अब धोने से नहीं धुल सकता । मैं उसको या किसी को दोष क्यों दूँ ? यह सब मेरे कर्मों का फल है । आह ! एड़ी में कैसी पीड़ा हो रही है । यह काँटा कैसे निकलेगा ? भीतर उसका एक टुकड़ा टूट गया है । कैसा टपक रहा है । नहीं, मैं किसी को दोष नहीं दे सकती । बुरे कर्म तो मैंने किये हैं, उनका फल कौन भोगेगा ? विलास - लालसा ने मेरी यह दुर्गति की । मैं कैसी अंधी हो गयी थी, केवल इंद्रियों के सुखभोग के लिए अपनी आत्मा का नाश कर बैठी । मुझे कष्ट अवश्य था । मैं गहने - कपड़े को तरसती थी, अच्छे भोजन को तरसती थी, प्रेम को तरसती थी । उस समय मुझे अपना जीवन दुःखमय दिखायी देता था, पर वह अवस्था भी तो मेरे पूर्व जन्म

के कर्मों का ही फल थी। और क्या ऐसी स्त्रियाँ नहीं हैं जो उससे कहीं अधिक कष्ट झेल कर भी अपनी आत्मा की रक्षा करती है? दमयंती पर कैसे - कैसे दुःख पड़े, सीता को रामचंद्र ने घर से निकाल दिया, वह बरसों जंगलों में नाना प्रकार के क्लेश उठाती रही, सावित्री ने कैसे - कैसे दुःख सहे, पर वह धर्म पर दृढ़ रही। उतनी दूर क्यों जाऊँ, मेरे ही पड़ोस में कितनी स्त्रियाँ रो - रो कर दिन काट रही थी। अमोला में वह बेचारी अहीरिन कैसी विपत्ति झेल रही थी। उसका पति परदेश से बरसों न आता था, बेचारी उपवास करके पड़ी रहती थी। हाय, इसी सुदरता ने मेरी मिट्टी खराब की। मेरे सौदम्य के अभिमान ने मुझे यह दिन दिखाया।

हा प्रभो ! तुम सुदरता दे कर मन को चंचल क्यों बना देते हो ? मैंने सुदर स्त्रियों को प्रायः चंचल ही पाया। कदाचित् ईश्वर इस मुक्ति से हमारी आत्मा की परीक्षा करते हैं, अथवा जीवन - मार्ग में सुदरता रूपी बाधा डाल कर हमारी आत्मा को बलवान, पुष्ट बनाना चाहते हैं। सुदरता रूपी आग में आत्मा को डाल कर उसे चमकाना चाहते हैं। पर हा ! अज्ञानवश हमें कुछ नहीं सूझता, यह आग हमें जला डालती है, यह बाधा हमें विचलित कर देती है।

यह कैसे बद हो, न जाने किस चीज का काँटा था। जो कोई आके मुझे पकड़ ले तो यहाँ चिल्लाऊँगी तो कौन सुनेगा ? कुछ नहीं, यह न विलास - प्रेम का दोष है, न सुदरता का दोष है, यह सब मेरे अज्ञान का दोष है, भगवान् ! मुझे ज्ञान दो ! तुम्हीं अब मेरा उद्धार कर सकते हो। मैंने भूल की कि विधवाश्रम में गयी। सदन के साथ रह कर भी मैंने भूल की। मनुष्यों से अपने उद्धार की आशा रखना व्यर्थ है। ये आप ही मेरी तरह अज्ञानता में पड़े हुए हैं। ये मेरा उद्धार क्या करेंगे ? मैं उसी की शरण में जाऊँगी। लेकिन कैसे जाऊँ ? कौन - सा मार्ग है, दो साल से धर्म - ग्रंथों को पढ़ती हूँ, पर कुछ समझ में नहीं आता। ईश्वर, तुम्हें कैसे पाऊँ ? मुझे इस अंधकार से निकालो। तुम दिव्य हो, ज्ञानमय हो, तुम्हारे प्रकाश में संभव है यह अंधकार विच्छिन्न हो जाय। यह पत्तियाँ क्यों खड़खड़ा रही हैं ? कोई जानवर तो नहीं आता ; नहीं कोई अवश्य आता है।

सुमन खड़ी हो गयी, उसका चित्त दृढ़ था। वह निर्भय हो गयी थी।

सुमन बहुत देर तक इन्हीं विचारों में मग्न रही। इससे उसके हृदय को शांति न होती थी। आज तक उसने इस प्रकार कभी आत्म - विचार नहीं किया था। इस संकट में पड़ कर उसकी सद्बुद्धि जागृत हो गयी थी।

रात बीत चुकी थी। वसंत की शीतल वायु चलने लगी, सुमन ने साड़ी समेट ली और घुटनों पर सिर रख लिया। उसे वह दिन याद आया, जब इसी

ऋतु मे इसी समय वह अपने पति के द्वार पर बैठी हुई सोच रही थी कि कहाँ जाऊँ ? उस समय वह विलास की आग मे जल रही थी । आज भक्ति की शीतल छाया ने उसे आश्रय दिया था ।

एकाएक उसकी आँखें झपक गयी । उसने देखा कि स्वामी गजानन्द मृग-चर्म धारण किये उसके सामने खड़े दयापूर्ण नेत्रों से उसकी ओर ताक रहे हैं । सुमन उनके चरणों पर गिर पड़ी और दीन भाव से बोली, स्वामी ! मेरा उद्धार कीजिए ।

सुमन ने देखा कि स्वामी जी ने उसके सिर पर दया से हाथ फेरा और कहा, ईश्वर ने मुझे इसी लिए तुम्हारे पास भेजा है, बोलो, क्या चाहती हो, धन ?

सुमन — नहीं, महाराज, धन की इच्छा नहीं ।

स्वामी — सम्मान ?

सुमन — नहीं महाराज, सम्मान की भी इच्छा नहीं ।

स्वामी — भोग - विलास ?

सुमन — महाराज, इसका नाम न लीजिए, मुझे ज्ञान दीजिए ।

स्वामी — अच्छा तो सुनो, सत्युग मे मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता मे सत्य से, द्वापर मे भक्ति से, पर इस कलियुग मे इसका केवल एक ही मार्ग है, और वह है सेवा । इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा । जो लोग तुमसे भी दीन, दुःखी, दलित हैं, उनकी शरण मे जाओ और उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा । कलियुग मे परमात्मा इसी दुःखसागर मे वास करते हैं ।

सुमन की आँखें खुल गयीं । उसने इधर - उधर देखा, उसे निश्चय था कि मे जागती थी । इतनी जल्दी स्वामी जी कहाँ अदृश्य हो गये । अकस्मात् उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने पेड़ों के नीचे स्वामी जी लालटेन लिये खड़े हैं । वह उठ कर लँगड़ाती उनकी ओर चली । उसने अनुमान किया था कि वृक्ष - समूह सौ गज के अंतर पर होगा, पर वह सौ के बदले दो सौ, तीन सौ, चार सौ गज चली गयी और वह वृक्ष पुंज और उनके नीचे स्वामी जी लालटेन लिये हुए उतनी ही दूर खड़े थे ।

सुमन को भ्रम हुआ, मैं सो तो नहीं रही हूँ ? यह कोई स्वप्न तो नहीं है ? इतना चलने पर भी वह उतनी ही दूर है ! उसने जोर से चिल्ला कर कहा — महाराज, आती हूँ, आप ज़रा ठहर जाइए ।

उसके कानों में शब्द सुनायी दिये, चली आओ मैं खड़ा हूँ ।

सुमन फिर चली, पर दो सौ कदम चलने पर वह थक कर बैठ गयी । वह वृक्ष - समूह और स्वामी जी ज्यों - के - त्यों सामने सौ गज की दूरी पर

खड़े थे ।

भय से सुमन के रोएँ खड़े हो गये । उसकी छाती धड़कने लगी और पैर थर-थर काँपने लगे । उसने चिल्लाना चाहा, पर आवाज न निकली ।

सुमन ने सावधान हो कर विचार करना चाहा कि यह क्या रहस्य है, मैं कोई प्रेत - लीला तो नहीं देख रही हूँ, लेकिन कोई अज्ञात शक्ति उसे उधर खींचे लिये जाती थी, मानो इच्छा - शक्ति मन को छोड़ कर उसी रहस्य के पीछे दौड़ी जाती है ।

सुमन फिर चली । अब वह शहर के निकट आ गयी थी, उसने देखा कि स्वामी जी एक छोटी - सी झोपड़ी में चले गये और वृक्ष - समूह अदृश्य हो गया । सुमन ने समझा, यही उनकी कुटी है । उसे बड़ा धीरज हुआ । अब स्वामी जी से अवश्य भेंट होगी । उन्हीं से यह रहस्य खुलेगा ।

उसने कुटी के द्वार पर जाकर कहा, स्वामी जी मैं हूँ सुमन ।

यह कुटी गजानंद की ही थी पर वह सोये हुए थे । सुमन को कुछ जवाब न मिला ।

सुमन ने साहस करके कुटी में झाँका । आग जल रही थी और गजानंद कम्बल ओढ़े सो रहे थे । सुमन को अचम्भा हुआ कि यह अभी तो चले आते हैं, इतनी जल्दी सो कैसे गये और वह लालटेन कहाँ चली गयी ? जोर से पुकारा, स्वामी जी !

गजानंद उठ बैठे और विस्मित नेत्रों से सुमन को देखा । वह एक मिनट तक ध्यानपूर्वक सुमन को देखते रहे । तब बोले, कौन सुमन ?

सुमन — हाँ महाराज, मैं हूँ ।

गजानंद — मैं अभी - अभी तुम्हें स्वप्न में देख रहा था ।

सुमन ने चकित हो कर कहा, आप तो अभी - अभी कुटी में आये हैं ।

गजानंद — नहीं, मुझे सोये बहुत देर हुई, मैं तो कुटी से निकला नहीं । अभी स्वप्न में तुम्हीं को देख रहा था ।

सुमन — और मैं आप ही के पीछे - पीछे गंगा किनारे से चली आ रही हूँ । आप लालटेन लिये मेरे सामने चले आते थे ।

गजानंद ने मुस्करा कर कहा, तुम्हें धोखा हुआ ।

सुमन — धोखा होता तो मैं बिना देखे - सुने यहाँ कैसे पहुँच जाती ? मैं नदी किनारे अकेले सोच रही थी कि मेरा उद्धार कैसे होगा ? मैं परमात्मा से विनय कर रही थी कि मुझपर दया करो और अपनी शरण में लो । इतने में आप वहाँ पहुँचे और मुझे सेवा धर्म का उपदेश दिया । मैं आपसे कितनी ही बातें पूछना चाहती थी, पर आप अदृश्य हो गये । किंतु एक क्षण में मैंने आपको लालटेन लिये थोड़ी

दूर पर खड़े देखा। बस, आपके पीछे दौड़ी। यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। कृपा करके मुझे समझाइए।

गजानंद — संभव है, ऐसा ही हुआ हो, पर ये बातें अभी तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी।

मुमन — कोई देवता तो नहीं थे, जो आपका भेष धारण करके मुझे आपकी शरण में लाये हों ?

गजानंद — यह भी संभव है। तुमने जो कुछ कहा वही मैं स्वप्न में देख रहा था और तुम्हें सेवाधर्म का उपदेश कर रहा था। मुमन, तुम मुझे भलीभाँति जानती हो, तुमने मेरे हाथों बहुत दुःख उठाये हैं, बहुत कष्ट सहे हैं। तुम जानती हो, मैं कितनी नीच प्रकृति का अधम जीव हूँ, लेकिन अपनी उन नीचताओं का स्मरण करता हूँ तो मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। तुम आदर के योग्य थीं, मैंने तुम्हारा निरा-दर किया। यह हमारी दुरवस्था का, हमारे दुःखों का मूल कारण है। ईश्वर वह दिन कब लावेगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा। स्त्री मैले - कुचैले, फटे - पुराने वस्त्र पहन कर, आभूषण - विहीन हो कर, आधे पेट सूखी रोटी खा कर, झोपड़े में रह कर, मेहनत मजदूरी कर, सब कष्टों को सहने हुए भी आनंद से जीवन व्यतीत कर सकती है। केवल घर में उसका आदर होना चाहिए, उससे प्रेम होना चाहिए। आदर या प्रेम - विहीन महिला महलों में भी मुख से नहीं रह सकती, पर मैं अज्ञान, अविद्या के अंधकार में पड़ा हुआ था। अपना उद्धार करने का साधन मेरे पास न था। न ज्ञान था, न विद्या थी, न भक्ति थी, न कर्म की सामर्थ्य थी। मैंने अपने बंधुओं की सेवा करने का निश्चय किया। यही मार्ग मेरे लिए सबसे सरल था। तब से मैं यथाशक्ति इसी मार्ग पर चल रहा हूँ और अब मुझे अनुभव हो रहा है कि आत्मोद्धार के मार्गों में केवल नाम का अंतर है। मुझे इस मार्ग पर चल कर शांति मिली है और मैं तुम्हारे लिए भी यही मार्ग सबसे उत्तम समझता हूँ। मैंने तुम्हें आश्रम में देखा, सदन के घर में देखा, तुम सेवाव्रत में मग्न थी। तुम्हारे लिए ईश्वर से यही प्रार्थना करता था। तुम्हारे हृदय में दया है, प्रेम है, सहानुभूति है और सेवा - धर्म के यही मुख्य साधन हैं। तुम्हारे लिए उसका द्वार खुला है। वह तुम्हें अपनी ओर बुला रहा है। उसमें प्रवेश करो, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।

मुमन को गजानंद के मुखारविंद पर एक विमल ज्योति का प्रकाश दिखायी दिया। उसके अंतःकरण में एक अद्भुत श्रद्धा और भक्ति का भाव उदय हुआ। उसने सोचा, इनकी आत्मा में कितनी दया और प्रेम है। हाय ! मैंने ऐसे नर - रत्न का तिरस्कार किया। इनकी सेवा में रहती तो मेरा जीवन सफल हो गया होता। बोली, महाराज, आप मेरे लिए ईश्वर रूप हैं, आपके ही द्वारा मेरा उद्धार हो सकता है। मैं अपना तन - मन आपकी सेवा में अर्पण करती हूँ। यही प्रतिज्ञा

एक बार मैंने की थी, पर अज्ञानतावश उसका पालन न कर सकी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय से न निकली थी। आज मैं सच्चे मन से यह प्रतिज्ञा करती हूँ। आपने मेरी बाँह पकड़ी थी, अब यद्यपि मैं पतित हो गयी हूँ, पर आप ही अपनी उदारता से मुझे क्षमादान कीजिए और मुझे सन्मार्ग पर ले जाइए।

गजानन्द को इस समय सुमन के चेहरे पर प्रेम और पवित्रता की छटा दिखायी दी। वह व्याकुल हो गये। वह भाव, जिन्हें उन्होंने बरसों से दबा रक्खे थे, जाग्रत होने लगे। सुख और आनन्द की नवीन भावनाएँ उत्पन्न होने लगी। उन्हें अपना जीवन शुष्क, नीरस, आनन्द-विहीन जान पड़ने लगा। वह इन कल्पनाओं से भयभीत हो गये। उन्हें शका हुई कि यदि मेरे मन में यह विचार ठहर गये तो मेरा संयम, वैराग्य और सेवान्वत इसके प्रवाह में तृण के समान बह जायेंगे। वह बोल उठे, तुम्हें मालूम है कि यहाँ एक अनाथालय खोला गया है ?

सुमन — हाँ इसकी कुछ चर्चा सुनी तो थी।

गजानन्द — इस अनाथालय में विशेषकर वही कन्याएँ हैं जिन्हें वेश्याओं ने हमें सौंपा है। कोई ५० कन्याएँ होंगी।

सुमन — यह आपके ही उपदेशों का फल है ?

गजानन्द — नहीं, ऐसा नहीं है। इसका सम्पूर्ण श्रेय पंडित पद्ममिह को है, मैं तो केवल उनका सेवक हूँ। इस अनाथालय के लिए एक पवित्र आत्मा की आवश्यकता है और तुम्हीं वह आत्मा हो। मैंने बहुत ढूँढा, पर कोई महिला न मिली जो यह काम प्रेम-भाव से करे, जो कन्याओं का माता की भाँति पालन करे और अपने प्रेम से अकेली उनकी माताओं का स्थान पूरा कर दे। वह बीमार पड़ें तो उनकी सेवा करे, उनके फोड़े-फुन्सियाँ, मल-मूत्र देख कर घृणा न करे और अपने व्यवहार से उनमें धार्मिक भावों का संचार कर दे कि उनके गिच्छले कुसस्कार मिट जायें और उनका जीवन सुख से कटे। वात्सल्य के बिना यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। ईश्वर ने तुम्हें ज्ञान और विवेक दिया है, तुम्हारे हृदय में दया है, करुणा है, धर्म है और तुम्हीं इस कर्तव्य का भार सँभाल सकती हो। मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी ?

सुमन की आँखें सजल हो गयीं। मेरे विषय में एक ज्ञानीमहात्मा का यह विचार है, यह सोच कर उसका चित्त गद्गद हो गया। उसे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी कि उस पर इतना विश्वास किया जायगा और उसे सेवा का महान् गौरव प्राप्त होगा। उसे निश्चय हो गया कि परमात्मा ने गजानन्द को यह प्रेरणा की है। अभी थोड़ी देर पहले वह किसी बालक को कीचड़ लपेटे देखती तो उसकी ओर से मुँह फेर लेती पर गजानन्द ने उस पर विश्वास करके उस घृणा को जीत लिया था, उसमें प्रेम संचार कर दिया था ! हम अपने ऊपर विश्वास करनेवालों को कभी निराश नहीं

करना चाहते और ऐसे बोझों को उठाने को तैयार हो जाते हैं जिन्हें हम असाध्य समझते थे। विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है। सुमन ने अत्यंत विनीत भाव से कहा, आप लोग मुझे इस योग्य समझते हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं किसी के कुछ काम आ सकूँ, किसी की सेवा कर सकूँ, यह मेरी परम लालसा थी। आपके बताये हुए आदर्श तक मैं पहुँच न सकूँगी, पर यथाशक्ति मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। यह कहते-कहते सुमन चुप हो गयी। उसका सिर झुक गया और आँखें डबडबा आयीं। उसकी वाणी से जो कुछ न हो सका वह उसके मुख के भाव ने प्रकट कर दिया। मानो वह कह रही थी, यह आपकी असीम कृपा है, जो आप मुझ पर ऐसा विश्वास करते हैं! कहाँ मुझ जैसी नीच, दुश्चरित्रा और कहाँ यह महान् पद! पर ईश्वर ने चाहा तो आपको इस विश्वासदान के लिए पञ्चनाना न पड़ेगा।

गजानंद ने कहा, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।

यह कह कर गजानंद उठ खड़े हुए। पौ फट रही थी, पगीहे की ध्वनि मुनायी दे रही थी। उन्होंने अपना कमंडल उठाया और गंगा-स्नान करने चले गये।

सुमन ने कुटी के बाहर निकल कर देखा, जैसे हम नींद से जाग कर देखते हैं। समय कितना सुहावना है, कितना शान्तिमय, कितना उत्साह-पूर्ण! क्या उसका भविष्य भी ऐसा ही होगा? क्या उसके भविष्य जीवन का भी प्रभात होगा? उसमें भी कभी उषा की झलक दिखाई देगी। कभी सूर्य का प्रकाश होगा? हाँ, होगा और यह सुहावना शान्तिमय प्रभात आने वाले दिन रूपी जीवन का प्रभात है।

३२

एक साल बीत गया। पंडित मदनगिह पहले तीर्थयात्रा पर उधार खाये बैठे थे, जान पड़ता था सदन के घर आते ही वह एक दिन भी न ठहरेंगे, सीधे बद्रीनाथ पहुँच कर दम लेगे, पर जब से सदन आ गया है, उन्होंने भूल कर भी तीर्थयात्रा का नाम नहीं लिया। पोते को गोद में लिये असामियों का हिसाब करते हैं, खेतों की निगरानी करते हैं। माया ने और भी जकड़ लिया है। हाँ भामा अब कुछ निश्चित हो गयी है। पड़ासियों से वार्तालाप करने का कर्त्तव्य उसने अपने सिर से नहीं हटाया। शेष कार्य उसने शाता पर छोड़ दिये हैं।

पंडित पद्मसिंह ने वकालत छोड़ दी। अब वह म्युनिसिपैलिटी के प्रधान कर्म-चारी है। इस काम से उन्हें बहुत रुचि है, शहर दिनोदिन उन्नति कर रहा है। साल के भीतर ही कई नयी सड़कें, नये बाग तैयार हो गये हैं। अब उनका इरादा है कि इनके और गाड़ीवालों के लिए शहर के बाहर एक महल्ला बनवा दें। शर्मा जी

के कई पहले के मित्र अब उनके विरोधी हो गये हैं और पहले के कितने ही विरोधियों से मेल हो गया है, किंतु महशय विट्ठलदास पर उनकी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती जाती है। वह बहुत चाहते हैं कि महाशय जी को म्युनिसिपैलिटी में कोई अधिकार दें, पर विट्ठलदास राजी नहीं होते। वह निःस्वार्थ कर्म की प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ना चाहते। उनका विचार है कि अधिकारी बन कर वह इतना हित नहीं कर सकते जितना पृथक् रह कर कर सकते हैं। उनका विधवाश्रम इन दिनों बहुत उन्नति पर है और म्युनिसिपैलिटी से उसे विशेष सहायता मिलती है। आजकल वह कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं जिससे किसानों को बीज और रुपये नाम-मात्र सूद पर उधार दिये जा सकें। इस सत्कार्य में सदन बाबू विट्ठलदास का दाहिना हाथ बना हुआ है।

सदन का अपने गाँव में मन नहीं लगा। वह शाता को वहाँ छोड़ कर फिर गंगा किनारे के झोपड़े में आ गया है और उस व्यवसाय को खूब बढ़ा रहा है। उसके पास अब पाँच नावें हैं और सैकड़ों रुपये महीने का लाभ हो रहा है। वह अब एक स्टीमर मोल लेने का विचार कर रहा है।

स्वामी गजानंद अधिकतर देहातो में रहते हैं। उन्होंने निधनों की कन्याओं का उद्धार करने के निमित्त अपना जीवन अर्पण कर दिया है। शहर में आते हैं, तो दो - एक दिन से अधिक नहीं ठहरते।

३३

कार्तिक का महीना था। पचासिह सुभद्रा को गंगा - स्नान कराने ले गये थे। लौटती बार वे अलईपुर की ओर से आ रहे थे। सुभद्रा गाड़ी की खिड़की से बाहर झाँकती चली आती थी और सोचती थी कि यहाँ सम्राटे में लोग कैसे रहते हैं? उनका मन कैसे लगता है। इतने में उसे एक सुंदर भवन दिखायी पड़ा, जिसके फाटक पर मोटे अक्षरों में लिखा था — सेवासदन।

सुभद्रा ने शर्मा जी से पूछा, क्या यही सुमन बाई का सेवासदन है?

शर्मा जी ने कुछ उदासीन भाव से कहा, हाँ। वह पछुता रहे थे कि इस रास्ते से क्यों आये? यह अब अवश्य ही इस आश्रम को देखेगी। मुझे भी जाना पड़ेगा, बुरे फँसे? शर्मा जी ने अब तक एक बार भी सेवासदन का निरीक्षण नहीं किया था। गजानंद ने कितनी ही बार चाहा कि उन्हें लामें, पर वह कोई - न - कोई बहाना कर दिया करते थे। वह सब कुछ कर सकते थे, पर सुमन के सम्मुख आना उनके लिए अत्यंत कठिन था। वह सुमन से इसलिए भागते थे कि उन्हें लज्जा आती

थी। उनके चित्त से यह विचार कभी दूर न होता था कि वह स्त्री जो इतनी साध्वी तथा सच्चरित्रा हो सकती है, केवल मेरे कुसंस्कारों के कारण कुमार्गगामिनी बनी — मैंने ही उसे कुएँ में गिराया !

सुभद्रा ने कहा, जरा गाड़ी रोक लो, इसे देखूँगी।

पद्मसिंह — आज बहुत देर होगी ; फिर कभी आ जाना।

सुभद्रा — साल - भर से तो आ रही हूँ पर आज तक कभी न आ सकी। यहाँ से जा कर फिर न जाने कब फुरसत हो।

पद्मसिंह — तुम आप ही नहीं आयीं। कोई रोकता था ?

सुभद्रा — भला जब नहीं आयी तब नहीं आयी। अब तो आयी हूँ। अब क्यों नहीं चलते ?

पद्म — चलने से मुझे इनकार थोड़े ही है, केवल देर हो जाने का भय है। नौ बजते होंगे।

सुभद्रा — यहाँ कौन बहुत देर लगेगी, दस मिनट में लौट आयेंगे।

पद्म — तुम्हारी हठ करने की बुरी आदत है। कह दिया कि इस समय मुझे देर होगी, लेकिन मानती नहीं हो।

सुभद्रा — जरा धोड़े को तेज कर देना, कसर पूरी हो जायगी।

पद्म — अच्छा तो तुम जाओ, अब से संध्या तक जब जी चाहे घर लौट आना। मैं चलता हूँ। गाड़ी छोड़े जाता हूँ। रास्ते में कोई सवारी किराये की कर लूँगा।

सुभद्रा — तो इसकी क्या आवश्यकता है ? तुम यहीं बैठे रहो, मैं अभी लौट आती हूँ।

पद्म — (गाड़ी से उतर कर) मैं चलता हूँ, तुम्हारा जब जी चाहे आना।

सुभद्रा इस हीले - हवाले का कारण समझ गयी। उसने 'जगत' में कितनी ही बार 'सेवासदन' की प्रशंसा पढ़ी थी। पंडित प्रभाकरराव की इन दिनों सेवासदन पर बड़ी दया - दृष्टि थी। अतएव सुभद्रा को इस आश्रम से प्रेम - सा हो गया था और सुमन के प्रति उसके हृदय में भक्ति उत्पन्न हो गयी थी। वह सुमन को इस नयी अवस्था में देखना चाहती थी। उसको आश्चर्य होता था कि सुमन इतने नीचे गिर कर कैसे ऐसी विदुषी हो गयी कि पत्रों में उसकी प्रशंसा छपती है। उसके जी में तो आया कि पंडित जी को खूब आड़े हाथों ले, पर साईं खड़ा था, इसलिए कुछ न बोल सकी। गाड़ी से उतर कर आश्रम में दाखिल हुई।

वह ज्यों ही बरामदे में पहुँची कि एक स्त्री ने भीतर जा कर सुमन को उसके आने की सूचना दी और एक क्षण में सुभद्रा ने सुमन को आते देखा। वह उस केश - हीना, आभूषणविहीना सुमन को देख कर चकित हो गयी। उसने न वह कोमलता थी,

न वह चपलता, न वह मुस्कराती हुई आँखें, न हँसते हुए हँठ । रूप लावण्य की जगह पवित्रता की ज्योति झलक रही थी ।

सुमन निकट आ कर सुभद्रा के पैरों पर गिर पड़ी और सजल नयन हो कर बोली, बहू जी, आज मेरे धन्य भाग्य है कि आपको यहाँ देख रही हूँ ।

सुभद्रा की आँखें भर आयीं । उसने सुमन को उठा कर छाती से लगा लिया और गद्गद स्वर से कहा — बाई जी, आने का तो बहुत जी चाहता था, पर आलस्यवश अब तक न आ सकी थी ।

सुमन — शर्मा जी भी हैं या आप अकेली ही आयी है ?

सुभद्रा — साथ तो थे, पर उन्हें देर होनी थी, इसलिए वह दूसरी गाड़ी करके चले गये ।

सुमन ने उदास हो कर कहा, देर तो क्या होनी थी, वह यहाँ आना ही नहीं चाहते थे । मेरा अभाग्य । दुःख केवल यह है कि जिन आश्रम के वह स्वयं जन्म-दाता है, उससे मेरे कारण उन्हें इतनी घृणा है । मेरी हृदय से अभिलाषा थी कि एक बार तुम और वह दोनों यहाँ आने । आधी तो आज पूरी हुई, शेष भी कभी-न-कभी पूरी ही होगी । वह मेरे उद्धार का दिन होगा ।

यह कह कर सुमन ने सुभद्रा को आश्रम दिखाना शुरू किया । भवन में पाँच बड़े कमरे थे । पहले कमरे में लगभग तीस बालिकाएँ बैठी हुई कुछ पढ़ रही थीं । उनकी अवस्था १२ वर्ष से १५ वर्ष तक की । अध्यापिका ने सुभद्रा को देखते ही आ कर उससे हाथ मिलाया । सुमन ने दोनों का परिचय कराया । सुभद्रा को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह महिमा मिस्टर रुस्सम भाई बैरिस्टर की सुयोग्य पत्नी है । नित्य दो घंटे के लिए आश्रम में आ कर इन युवतियों को पढ़ाया करती थी ।

दूसरे कमरे में भी इतनी कन्याएँ थीं । उनकी अवस्था ८ से लेकर १२ वर्ष तक थी । उनमें कोई कपड़े काटती थी, कोई सीढ़ी की और कोई अपने पासवाली लड़की को चिकोटी काटती थी । यहाँ कोई अध्यापिका न थी । एक बूढ़ा दरजी काम कर रहा था । सुमन ने कन्याओं के तैयार किये हुए कुरते, जाकेट आदि सुभद्रा को दिखाये ।

तीसरे कमरे में १५ — २० छोटी-छोटी बालिकाएँ थीं, कोई ५ वर्ष से अधिक की न थी । उनमें कोई गुड़िया खेलती थी, कोई दीवार पर लटकती हुई तस्वीरें देखती थी । सुमन आप ही इस कक्षा की अध्यापिका थी ।

सुभद्रा यहाँ से सामने वाले बगीचे में आ कर इन्हीं लड़कियों के लगाए हुए फून-पत्ते देखने लगी । कई कन्याएँ वहाँ आलू-गोभी की बगारियों में पानी दे रही थीं । उन्होंने सुभद्रा को सुन्दर फूनों का एक गुलदस्ता भेंट किया ।

भोजनालय में कई कन्याएँ बैठी भोजन कर रही थीं। सुमन ने सुभद्रा को इन कन्याओं के बनाये हुए अचार, मुरब्बे आदि दिखाये।

सुभद्रा को यहाँ का सुप्रबध, शांति और कन्याओं का शील - स्वभाव देख कर बड़ा आनंद हुआ। उसने मन में सोचा, सुमन इतने बड़े आश्रम को अकेले कैसे चलाती होगी, मुझसे तो कभी न हो सकता। कोई लड़की मजिन या उदास नहीं दिखायी देती।

सुमन ने कहा, मैंने यह भार अपने ऊपर ले तो लिया, पर मुझमें उसके संभालने की शक्ति नहीं है। लोग जो सलाह देते हैं, वही मेरा आधार है। आपको भी जो कुछ त्रुटि दिखायी दे, वह कृपा करके बता दीजिए। इससे मेरा उपकार होगा।

सुभद्रा ने हँस कर कहा, बाई जी, मुझे लज्जित न करो, मैंने तो जो कुछ देखा है उसी से चकित हो रही हूँ, तुम्हें सलाह क्या दूँगी, बस इतना ही कह सकती हूँ कि ऐसा अच्छा प्रबन्ध विधवा आश्रम का भी नहीं है।

सुमन — आप संकोच कर रही है।

सुभद्रा — नहीं, सत्य कहती हूँ। मैंने जैसा सुना था इसे उससे कहीं बढ़ कर पाया। हाँ, तो बताओ, इन बालिकाओं की माताएँ इन्हें देखने आती हैं या नहीं?

सुमन — आती है, पर मैं यथासाध्य इस मेल - मिलाप को रोकती हूँ।

सुभद्रा — अच्छा इनका विवाह कहाँ होगा?

सुमन — यह तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्तव्य यह है कि इन कन्याओं को चतुर गृहिणी बनने के योग्य बना दें। उनका आदर समाज करेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकती।

सुभद्रा — बैरिस्टर साहब की पत्नी को इस काम से बड़ा प्रेम है।

सुमन — यह कहिए कि आश्रम की स्वामिनी वही है। मैं तो केवल उनकी आज्ञाओं का पालन करती हूँ।

सुभद्रा — क्या कहूँ, मैं किसी योग्य नहीं, नहीं तो मैं भी यहाँ कुछ काम किया करती।

सुमन — आते - आते तो आप आज आयी हैं, उस पर शर्मा जी को नाराज करके। शर्मा जी फिर इधर आने तक न देंगे।

सुभद्रा — नहीं, अब की इतवार को मैं उन्हें अवश्य खींच लाऊँगी। बस, मे लड़कियों को पान लगाना और खाना सिखाया करूँगी।

सुमन — (हँस कर) इस काम में आप कितनी ही लड़कियों को अपने से भी निपुण पायेंगी।

इतने में १० लड़कियाँ सुन्दर वस्त्र पहने हुए आयीं और सुभद्रा के सामने खड़ी हो कर मधुर स्वर में गाने लगीं :—

हे जगत पिता, जगत प्रभु,
मुझे अपना प्रेम और प्यार दे।
तेरी भक्ति में लगे मन मेरा,
विषय कामना को बिसार दे।

सुभद्रा यह गीत सुन कर बहुत प्रसन्न हुई और लड़कियों को ५ रु० इनाम दिया।

जब वह चलने लगी तो सुमन ने करुण स्वर से कहा — मैं इसी रविवार को आप की राह देखूंगी।

सुभद्रा — मैं अवश्य आऊंगी।

सुमन — शांता तो कुशल से है ?

सुभद्रा — हाँ, पत्र आया था। सदन तो यहाँ नहीं आये ?

सुमन — नहीं, पर २ रु० मासिक चंदा भेज दिया करते हैं।

सुभद्रा — अब आप बैठिए, मुझे आज्ञा दीजिए।

सुमन — आपके आने से मैं कृतार्थ हो गयी। आपकी भक्ति, आपका प्रेम, आपकी कामकुशलता, किस - किस की बड़ाई करूँ। आप वास्तव में स्त्री - समाज का शृङ्गार हैं। (सजल नेत्रों से) मैं तो अपने को आपकी दासी समझती हूँ। जब तक जीऊँगी आप लोगो का यश मानती रहूँगी। मेरी बाँह पकड़ी और मुझे डूबने से बचा लिया। परमात्मा आप लोगों का सदैव कल्याण करें।

टिप्पणियाँ

मौलूद = इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हज़रत मोहम्मद साहब की जयंती का उत्सव ।

इंतज़ाब = चुनाव । अंबोह = भोड़ । अज़रूए ईमान = ईमान से । बे-बहा = अमूल्य । फ़ैज़ = लाभ । पारसाई = सदाचार ।

बदज़न = संदिग्ध । नजात = मुक्ति । फ़ज़ल = कृपा । सरीह = स्पष्ट । उर्स = किसी मुस्लिम सन्त को निधन-तिथि पर मनाया जाने वाला धार्मिक उत्सव । मजमुई = सम्मिलित । अज़ो = अंग । सरका = चोरी । रहज़नी = बटमारी । चिराग़पा = औंधा । ख़ित्ता = प्रदेश । मकरूह—घृणित । मरकज़ = मध्य भाग । अक्रायद = विश्वास । ज़रायम = अपराध । राहे-रास्त = ठीक मार्ग । गेसू = बालों की लट, जुल्फ़ । तसकीन = संतोष । मुअत्तर = इत्र में बसा हुआ । क़वत = सामर्थ्य । नादिम—लज्जित । ख़ासा = स्वभाव । बेसूद = व्यर्थ । दामे मुहब्बत = प्रेम का जाल । रास्तबाज़ = ईमानदार । इसलाह = सुधार । इख़राज = निर्वासन । तहरीक = आंदोलन, प्रस्ताव । इख़लाक़ी = नीति-सम्बंधी । बंदा-नवाज़ = दीनदयालु । कुफ़्र = इस्लाम की आज्ञाओं के विरुद्ध आचरण । फ़तवा = मुसलमानों के धर्मशास्त्रानुसार व्यवस्था, जो मौलवी आदि किसी कर्म के धर्म-संगत या धर्म-विरुद्ध होने के विषय में देते हैं । सादिर = जारी । मुहसिन = उपकार करने वाला । नाख़ुदा = कर्णधार । तान-तंज़ = बोलो-ठोली । अमल = व्यवहार । मसलहत = हितकर सलाह । शाहिदान तच्चाज़ = वेश्याएँ । निज़ाम तमद्दुन = नगर-व्यवस्था । तामीर = निर्माण । बदरौर = नाली । नुमायाँ = जो स्पष्ट दिखाई पड़ता हो । गोशा = कोना । पुरफ़िज़ा = सुंदर और शोभायुक्त स्थान । इत्तहाद = एकता । आलमो बेदारी = जागृत अवस्था । ताईद = समर्थन । बावर = विश्वास । बेदार = जागृत । मुतलक़ = तनिक भी । तारोक = अंधकारपूर्ण । मुस्तहक़ = पात्र । वस्त = मध्य भाग । मतानत = दृढ़ता । एहतमाम = व्यवस्था । आरास्ता = सुसज्जित । जानिब = ओर । ख़ुशनुदी मिज़ाज = तबोयत की प्रसन्नता । परवाना = आज्ञा-पत्र । अता = प्रदान । मुहर्रिर = वक्ता । वफ़ात = मृत्यु । लहद—क्रब । दिलपज़ार = सुंदर । नग़मा = मधुर गीत । वज़ाएक़ = वह वृत्तियाँ जो विद्वानों, छात्रों या त्यागियों को दी

जाती हैं । हाफ़िज़ा = स्मरण-शक्ति । तलव्वुन = स्वभाव की अस्थिरता ।
 बेहबूदी = भलाई । तवक्क़ा = आशा । मिल्लत = मज़हब । इमकान = सामर्थ्य ।

ईसार = त्याग और तपस्या । सरूर = प्रसन्नता । ख़ादिम = सेवक ।
 कजफ़हम = हर बात का उलटा अर्थ लगाने वाला । कजरौ = टेढ़ा-मेढ़ा चलने
 वाला । कजर्वी = वक्र-गति । रिया = छल । मसदरे बरकात = कृपाओं का
 उद्गम-स्थान । मलायक = फरिश्ते, देवदूत । नाज़िल = उतरने या नीचे आने
 वाला । पाकनफ़सी = पवित्र आचरण । मस्तूरात = भले घर की स्त्रियाँ ।
 उजलत = शीघ्रता । निसार = निछावर । तफ़रोक़ = अन्तर, बँटवारा । मशकूर
 = कृतज्ञ ।

अज़ीमुश्शान = बहुत शानदार ।

इत्तफ़ाक़ = सहमति । तरमीम = संशोधन । तसलीम = स्वीकार ।
 अल्फ़ाज़ = शब्द । बइस्तसनाय = सिवाय । फ़ौत = नष्ट । बालाख़ाना = मकान
 का ऊपर का कमरा । ख़सलत = स्वभाव । बेइल्मी = अज्ञान । इज़हार = प्रकट
 करना । ख़बीस = दुष्ट । मक़सद = अभिप्राय । रहीम = दयालु । हरदिल-
 अज़ीज़ = सर्वप्रिय ।
